॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला
२७८

सचित्र-

दुर्गासप्तशती

'सर्वमङ्गला' हिन्दीव्याख्योपेता

[सप्तशत्यङ्गषट्कपूजाविधि-मन्त्रकोश-नवचण्डी-नवदुर्गा-शतचण्डी-सहस्रचण्डी-विधानैः सनाथीकृता]

सम्पादकोऽनुवादकश्च

पं० श्री हरेकान्तमिश्रशास्त्री

भूमिकालेखकः

श्रीसत्कारिशर्मा वङ्गीयः

व्याकरण-न्याय-वेदान्त-काव्यतीर्थः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

१९७६

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०३३

मूल्य : ८-००

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 8, Varanasi-221001 (India)

1976

Phone : 63145

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १३८, वाराणसी-२२१००१

(भारत)

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

आस्तिक और नास्तिक सभी भारतीय दर्शन एक सिद्धान्त पर सहमत होते हैं कि यह जगत् दुःखमय है। जब तक यहाँ रहना पड़ेगा और जागतिक विषयों के साथ सम्पर्क रखना होगा तब तक किसी न किसी प्रकार का दुःख प्राणियों के लिए अनिवार्य ही है। वस्तुतः दुःखों के स्वरूप का निर्णय और उनके परिहार के उपाय का निर्णय ही तत्त्वचिन्तन का लक्ष्य है। जैसा कि सांख्यकारिकाकार कहते हैं—

"दुःखत्रयाभिघाताज् जिज्ञासा तदवघातके हेतौ।"

—सांख्यकारिका १।१।

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्रीवाचस्पतिमिश्र ने उपर्युक्त कारिका की टीका में इसी तत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है—"एवं हि शास्त्रविषयो न जिज्ञास्येत यदि दुःखं नाम जगति न स्यात्।"[1]

इस विषय पर बौद्ध-सिद्धान्त भी आर्ष-सिद्धान्त के साथ सम्पूर्णतया सहमत है, जहाँ 'दुःख' को एक आर्यसत्य अर्थात् पारमार्थिक सत्य की मान्यता दी है।[2]

अवश्य ही, दुःखों के स्वरूप तथा उनके परिहार के उपाय के बारे में विभिन्न सिद्धान्तों में आपात-प्रतीयमान मतभेद है। आर्षशास्त्रों के अनुसार मूलतः दुःख के तीन प्रकार होते हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।[3] बौद्धशास्त्र दुःखों के प्रकार भेद नहीं बतलाकर विविध दुःखों

---

१. तत्त्वकौमुदी, निर्णयसागर सं०, पृ० ९।

२. धम्मपद, गाथा संख्या १९१। महावग्गं, धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त, नालन्दा सं० पृ० १३।

३. (१) दुःखमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकं च।

—योगसूत्रव्यासभाष्य. १।३१।

(२) 'दुःखानां त्रयं दुःखत्रय तत् खलु त्रिविधम्. आध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकं च।'—तत्त्वकौमुदी, निर्णयसागर सं० पृ० १२।

का परिसंख्यान करता है, जैसे कि, जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु, अप्रियों के साथ संयोग तथा प्रियों से वियोग—ये सब दुःखों के वास्तविक स्वरूप हैं।[1]

दुःखों का सबसे बड़ा स्वरूप है संसार अर्थात् जन्मजरादि-दुःखों से परिपूर्ण इस जगत् में पुनः-पुनः आवागमन। इस संसाररूप दुःख के कारण निर्णय तथा उसके निरोध के प्रति स्वभावतः शास्त्रों की प्रवृत्ति हुई।

इस प्रवृत्ति की तुलना चिकित्सा-व्यवस्था के साथ दी गई है। जैसे कि रोगनिर्णय, रोग का कारणनिर्णय, आरोग्य की निश्चयता और औषधविधान—चिकित्सा के ये चार अङ्ग होते हैं। दुःखनिवारण में प्रवृत्त शास्त्रीय विचार के भी वैसे चार अंग होते हैं।[2]

दुःख के नाश तथा सुख के लाभ के लिए अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रयास करना जीवमात्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, किन्तु अन्य जीवों से मनुष्यों का अन्तर है। जब अन्य जीव जागतिक उपाय से ही उक्त-रूप प्रयास करते हैं तब मनुष्यों के लिए भगवती श्रुति अलौकिक उपाय का निर्धारण कर देती हैं।[3] इसीलिए अपौरुषेय श्रुति में इष्टापूर्तों का उपदेश किया गया है,

---

१. जाति पि दुक्खा, जरा पि दुक्खा, व्याधि पि दुक्खो, मरणं पि दुक्खं, अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो।

—महावग्ग, धम्मचक्कप्पवत्तनसूत्त, पृ० १३।

२. 'यथा चिकित्साशास्त्रं चतुर्व्यूहं रोगो रोगहेतुरारोग्यं भैषज्यमिति। एवमिदमपि शास्त्रं चतुर्व्यूहमेव। तद्यथा संसारः, संसारहेतुर्मोक्षो मोक्षोपाय इति।

—योगसूत्रव्यासभाष्य, २.१५।

बौद्धशास्त्र भी प्रायः अक्षरशः इस वर्णन की प्रतिध्वनि कर रहा है—

'दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं॥

—धम्मपद, गाथा १९१।

३. चतुर्वेद-भाष्यकार श्री सायणाचार्य के मतानुसार इष्टप्राप्ति और दुःख-रूप अनिष्ट के परिहार का उपाय बतलाना ही वेद का प्रयोजन है। 'इष्ट-प्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः।'

—तैत्तिरीयसंहिताभाष्यभूमिका।

ताकि मनुष्य एक ओर देवताओं के उद्देश में द्रव्यत्याग रूप याग में, तथा दूसरी ओर मनुष्यादि के हित में, धनविनियोग के माध्यम से 'आहार-निद्रादि' प्राणिसामान्य धर्मों से बाहर अपनी भावना को प्रवृत्त कर सके, और उसी के फलस्वरूप इहलोक में ऐश्वर्य और परलोक में सुखमय स्वर्ग को प्राप्त कर दुःख से छुटकारा पा सके। वस्तुतः सभी भारतीय कर्मकाण्ड-परक धर्म इसी इष्टापूर्त-भावना के ऊपर आधारित हैं।

कर्ममूलक यह धर्म-मार्ग (अर्थात् चोदनालक्षण धर्म), जिसका फल इहलौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदयमात्र है, सब के लिए समान रूप से आकर्षक नहीं हो सका क्योंकि कर्म के द्वारा दुःखों का जो नाश होता है—वह ऐकान्तिक और आत्यन्तिक नहीं होता—चाहे वह कर्म शास्त्रविहित क्यों न हो।[1] जागतिक अभ्युदय का क्षणिकत्व तो प्रत्यक्षानुभव-सिद्ध ही है। यह अभ्युदय केवल सामान्य पुरुषों के लिए ही नहीं, बल्कि अवतारों के लिए भी क्षणिक है। अतः 'यदुपतेः क्व गता मथुरापुरी रघुपतेः क्व गतोत्तरकोशला।' इत्यादि वचनों की प्रसिद्धि हुई है।

पारलौकिक स्वर्गादि फल भी आत्यन्तिक सुख का कारण नहीं होता है। यह बात सही है कि क्षुधा, तृष्णा, व्याधि, जरा आदि आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दुःख स्वर्ग लोक में नहीं है[2] किन्तु मनुष्य कर्म द्वारा ब्रह्मलोक को भी प्राप्त करें फिर भी वहाँ से उसे दुःखमय संसार में लौटना ही पड़ेगा[3] अक्षय स्वर्गलाभ अर्थवाद मात्र है।

जैसे इस संसार में जमा किया हुआ धन खर्च हो जाने के बाद वित्तवान् मनुष्य दरिद्र बन जाते हैं वैसे ही कर्मजात, जमा किया हुआ पुण्य समाप्त हो

---

१. दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः। —सांख्यकारिका, २।

२. स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनयापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥
—कठोपनिषद्, १।१।१२।

३. आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।—श्रीमद्भगवद्गीता, ८।१६

जाने से मनुष्य मर्त्यलोक में जन्म लेते हैं।[1] यज्ञादि कर्मों का यह सीमित स्वरूप साक्षात् भगवती श्रुति ही बतला देती है—

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यान्ति ॥[2]

अतः मातृवत् कल्याणकारिणी श्रुति अभ्युदयप्रद कर्मकाण्ड के साथ ही साथ निःश्रेयसप्रद मोक्षमार्ग का भी उपदेश करती है। उपनिषदों में उसी मार्ग को 'श्रेयः' कहा गया है। विवेकी पुरुष को 'प्रेयः' को छोड़कर 'श्रेयः' का आश्रय लेना चाहिए—यह भी श्रुति का ही उपदेश है।[3] उसी से त्रिविध दुःखों का आत्यन्तिक नाश हो जाता है।

कुछ आधुनिक विद्वानों (पल डायसन, विन्तार्नित्स आदि) का कहना है कि वेद केवल अभ्युदयफलक कर्ममार्ग का उपदेश देता है और उपनिषद् आदि वेदान्त शास्त्रों में उपदिष्ट मोक्षमार्ग वेदविरोधियों का दर्शन है। ऐसा कहना नासमझी का ही फल है। उभय मार्ग श्रुतिमूलक है। इस मार्गभेद का कारण है अधिकारि-भेद। एक ही भोजन सभों के लिए हितकर नहीं हो सकता—इसलिए स्नेहमयी माँ अपने बच्चों के लिए अलग-अलग भोजन बना देती है। जननीकल्पा श्रुति भी पुरुषों की शक्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न अधिकार समझकर उनके लिए भिन्न-भिन्न मार्ग बतला देती है। इस सिद्धान्त का बहुत सुन्दर एक उदाहरण ईशावास्योपनिषद् के प्रथम और द्वितीय मंत्र में मिलता है।

---

१. ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
—श्रीमद्भगवद्गीता, ९।२२।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ॥
—मुण्डकोपनिषद्, १।२।१०।

२. मुण्डकोपनिषद्, १।२।७।

३. श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते ॥
—कठोपनिषद्, १।२।२।
'तयोः श्रेय आददानस्य साधुर्भवति।' —वहीं, १।२।१।

वहाँ 'ईशावास्यमिद्' आदि मन्त्रों में एषणात्यागरूप निवृत्ति मार्ग का उपदेश किया गया है, फिर भी 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' आदि मन्त्रों में कर्म-मार्ग का उपदेश मिलता है। इस आपात-विरोध का समाधान भगवान् शङ्कराचार्य ने बहुत सुन्दर ढंग से किया है।[1] यह बात अवश्य ही माननी चाहिए कि प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग दोनों ही वेदोक्त हैं।[2]

यहाँ तक देखा गया कि निवृत्तिमूलक मोक्षमार्ग ही दुःखों के आत्यन्तिक विनाश का एकमात्र उपाय है, एवं मोक्षमार्ग वेद ही के द्वारा उपदिष्ट है। किन्तु यह बात भी स्मरण-योग्य है कि मोक्षमार्ग सामान्य लोगों के लिए दुरधिगम है। उपनिषद् में भी कहा गया है—'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति।[3] जीवों की इन्द्रियाँ स्वभाव से ही बहिर्मुखी हैं, ये तत्त्वदर्शन में हर प्रकार से अनुपयुक्त हैं,[4] और विद्वान पुरुषों के भी चित्त को विषयों की ओर प्रेरित करती हैं।[5] उसी बहिर्मुखता के कारण अधिक से अधिक संख्या में लोग जागतिक सुखभोग और परलोक में स्वर्ग-प्राप्ति के लिए ही उत्सुक रहते हैं—अतः बहुत ही अल्पसंख्यक व्यक्ति परतत्त्व को प्राप्त कर सकते हैं[6]।

---

१. इमौ द्वावेव पन्थानौ अनुनिष्क्रान्ततरौ भवतः क्रियापथश्चैव पुरस्तात् संन्यासश्चोत्तरेण। निवृत्तिमार्गेण एषणात्रयस्य त्यागः।—शाङ्करभाष्य।

२. द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तिश्च विभावितः॥
—महाभारत, शान्तिपर्व, २४२।६।

३. कठोपनिषद्, १।३।१४।

४. 'पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
—वहीं, २।१।१।

५. यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥'
—श्रीमद्भगवद्गीता, २।६०, द्रष्टव्य शाङ्करभाष्य।

६. 'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥
—श्रीमद्भगवद्गीता, ७।३।

सर्वविध दुःखों के आत्यन्तिक-नाश-स्वरूप 'मोक्ष' नामक पुरुषार्थ का तत्त्व वेदों के ज्ञानकाण्ड में उपदिष्ट है। वह तत्त्व वैदिक ज्ञानकाण्ड का साध्य है। किन्तु साध्य स्वयं सिद्ध वस्तु नहीं होता साध्य को प्राप्त करने के लिए साधन की अपेक्षा रहती है, गन्तव्य में पहुँचने के लिए मार्ग की आवश्यकता निर्विवाद है अतः मार्गरूप उपासना काण्ड भी श्रुति में उपदिष्ट है। निःश्रेयस प्राप्ति के लिए उपासना की आवश्यकता उपनिषदों में वहुधा बतायी गई है। अतः छान्दोग्यश्रुति में उपासना का उपदेश मिलता है। तपस्या या साधना वेदोदित उपासना के ही नामान्तर हैं। इष्टप्राप्ति के लिए शास्त्रोक्त उपासना में प्रयत्नशील रहने का उपदेश वाण द्वारा लक्ष्यभेद की उपमा से बताया गया है।[1]

वैदिकसाहित्य के गम्भीर अध्ययन से पता चलता है कि मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के काल में साध्यतत्त्व का विस्तृत विचार किया जाता था, किन्तु साधन के लिए साक्षात् गुरुशिष्य-सम्प्रदाय-परम्परा ही पर्याप्त थी।

इसीलिए उपनिषदों में वैदिक उपासना पद्धति प्रायशः सूत्ररूप से वतायी गई है—विस्तृत रूप से नहीं। विशेषतः उपनिषदों में उपदिष्ट उपासना का आलम्बन भी सर्वत्र स्पष्टतया निर्दिष्ट नहीं है। यह बात तो निर्विवाद है कि उपासना किसी आलम्बन को लेकर ही आगे बढ़ सकती है।[2] श्रुति में उपदिष्ट

---

१. धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संदधीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं विद्धि॥
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥—मुण्डकोपनिषत्, २।२।३–४।

२. वस्तुतः आलम्बन को छोड़कर उपासना का लक्षण भी नहीं हो सकता है। भगवान शंकराचार्य ने कहा है—

'उपासनं तु यथाशास्त्रसमर्थित किञ्चिदालम्बनसमुपादाय तस्मिन् समानचित्तवृत्तिसंतानकरणं तद्विलक्षणंप्रत्ययान्तरितम्……।'

—छान्दोग्योपनिषद्-भाष्य, १।१।१।

यही वैदिक उपासना योगशास्त्र में ध्यान कहलाती है। जैसे,

'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'। यो० सू० ३।२।

'तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानतासदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्।' —उपर्युक्त सूत्र के ऊपर व्यासकृत भाष्य।

वह आलम्बन प्रायः सूक्ष्म भावात्मक होता है-मूर्त नहीं। ॐकार को[1] और कहीं प्राण को ही[2] आलम्बन बताया गया है, कहीं आदित्यदृष्टि[3] से उद्गीथोपासना का उपदेश है तो कहीं अध्यात्मदृष्टि[4] से। ऐसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को लेकर विभिन्न प्रकार की उपासना श्रुति में मधुविद्या, शाण्डिल्यविद्या आदि नामों से प्रसिद्ध है।

सामान्य साधकों के लिए ये सब सूक्ष्म आलम्बन विशेष अनुकूल नहीं हो सके। उपासना के लिए सूक्ष्म तत्त्वों का आश्रय लेना देहाभिमानयुक्त उपासकों के लिए विशेष कष्ट-साध्य है—ये तत्त्व को श्रीमद्भगवद्गीता में भी प्रकारान्तर से माना गया है। अतः वैदिक कर्मकाण्ड का साधन, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि उपास्यों के मूर्तभाव के कारण जितना सुखसाध्य है उतना ज्ञानकाण्ड का साधन सुखसाध्य नहीं हो पाया। सामान्य मनुष्यबुद्धि अमूर्तभावों की धारणा में सर्वथा अयोग्य है। विशेषतः कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड की एकान्त विलक्षणता भी सामान्य उपासकों के लिए बाधास्वरूप ही थी।

ऐसी वस्तुस्थिति में उपासना मार्ग के विवर्तन का प्रारम्भ हुआ। उपासना के आलम्बनों की स्थिरता के लिए करुणामूर्ति ऋषियों की तपःपूत चिन्ता तत्पर हो उठी इसका कुछ परिचय पतञ्जलिकृत योगसूत्र में मिलता है—

'स्वप्ननिद्रालम्बनं वा' (यो० सू० १।३८)[3] अथवा 'यथाभिमतध्यानाद्वा'

---

१. छान्दोग्योपनिषद्, १।१।१।

२ अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे। तँ हासुरा ऋत्वा विदध्वँसुर्यथाश्मानमाखणमृत्वा विध्वँसेत् ॥—छा० उ० १।२।६

३. अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति।—छा० उ० १।३।१।

४. छा० उ० १।७।१

५. क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥—१२।५।

६. इस सूत्र के ऊपर सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्रीवाचस्पति मिश्र की टीका भी विशेष ध्यानार्ह है—'यदा खल्वयं स्वप्ने विविक्तवनसन्निवेशवर्तिनीम् उत्कीर्णा-

(यो० सू० १।३९)। प्रामाणिक व्याख्याकारों के अभिप्रायानुसार 'यथाभिमतध्यान' का अर्थ मूर्त आलम्बन के सहारे उपासना ही है।[1]

उपास्य विशेष के आलम्बन से साधना की यह धारा वेदपरवर्ती पुराणों, एवं पञ्चरात्र, शैव, शाक्त आदि आगमशास्त्रों में पल्लवित हुई है। भक्तिवाद का मूलरहस्य भी यही है। यद्यपि आज 'भक्तिवाद' शब्द से केवल विभिन्न वैष्णव सिद्धान्त ही समझा जाता है—किन्तु मूल भक्तिसिद्धान्त शाक्तसिद्धान्त में भी अनुस्यूत है। (इस तत्त्व को आगे और प्रपञ्चित किया जायगा।)

उपर्युक्त वस्तुस्थिति में शक्तिसाधना की परम्परा 'देहली-दीप' की तरह विराजमान है। जैसे, किसी घर की देहली में रखा हुआ दीप अन्दर और बाहर दोनों को प्रकाशित करता है वैसे ही शक्तिसाधना ऐहिक पारत्रिक अभ्युदय एवं मुक्तिस्वरूप निःश्रेयस—ये दोनों का सुखगम्य साधन होती है।

शक्तिसाधना आध्यात्मिक उपासना के क्षेत्र में भारतवर्ष की एक अपूर्व देन है। इस साधनामार्ग का तात्त्विक भाग दार्शनिक विचारों का मूर्धन्यस्वरूप

मिव चन्द्रमण्डलात् कोमलमृणालशकलानुकारिभिरङ्गप्रत्यङ्गैरुपेताम् अभिजात-चन्द्रकान्तमणिमयीं अतिसुरभिमालतीमल्लिकामालाहारिणीं मनोहरां भगवतो महेश्वरस्य प्रतिमामाराधयन्निव प्रबुद्धः प्रसन्नमनास्तदा तामेव स्वप्नज्ञानावलम्बनीभूतामनुचिन्तयतस्तस्य तदेकाकारमनसस्तत्रैव चित्तं स्थितिपदं लभते।'

—तत्त्ववैशारदी, साङ्ख्ययोगदर्शन,
चौखम्बा सं०, पृ० १०४—१०५

१. उपर्युक्त सूत्र की टीका में वाचस्पति मिश्र ने कहा—'किं बहुना, यदेवाभिमतं तत्तद्देवतारूपमिति' (तत्त्ववैशारदी)। यहाँ श्रीमद् विज्ञानभिक्षु का आशय और भी स्पष्ट है—

"यदेवाभिमतं हरिहरमूर्त्यादिकं तदेवादौ ध्यायेत् तस्मादपि ध्यानात्तत्र लब्धस्थितिकस्य चित्तस्यान्यत्रापि विवेकपर्यन्तसूक्ष्मेषु विनैव साधनान्तरं स्थितियोग्यता भवतीत्यर्थः।' (योगवार्तिक)

—साङ्ख्ययोगदर्शनम्, चौखम्बा सं०, पृ० १०५।

है। और इसका प्रायोगिक भाग प्रायः सभी साधकों के लिए उपयोगी तथा चिकित्सा शास्त्र की तरह साक्षात् फलप्रद है।[1]

शक्तिसाधना का तत्त्व तन्त्रशास्त्रों में व्यवस्थित रूप से पाया जाता है। खेद का विषय है कि, तन्त्रग्रन्थों के स्वरूप, उनके दर्शन तथा प्रतिपाद्य विषय के बारे में आज तक पर्याप्त निष्पक्षपात अध्ययन नहीं हुआ है; बल्कि, तान्त्रिक सिद्धान्त तथा साधना के बारे में कुछ भ्रान्त धारणाएँ लोगों की बुद्धि में बद्धमूल हो गई हैं।

कई एक विशिष्ट अर्थों के लिए 'तन्त्र' शब्द का प्रयोग मिलता है[2]—

१. प्रधान सिद्धान्त, २. श्रुतिशाखा विशेष, ३. इतिकर्तव्यता, ४. कुटुम्ब-कृत्य, ५. शास्त्रविशेष, ६. औषध, ७. तन्तु आदि आदि। प्रायः शास्त्रसामान्य के अर्थ में इसका प्रयोग होता रहा, जैसे कपिलतन्त्र, वाशिष्ठतन्त्र आदि। सिद्धान्तविशेष के लिए इसका प्रयोग श्रीशङ्कराचार्य कृत भाष्य में मिलता है, जैसे 'अतश्चानुपपन्नो वैनाशिक-तन्त्रव्यवहारः' (ब्र० सू० २।२।३२)। यहाँ आचार्य का आशय 'क्षणभङ्गवादी' बौद्ध सिद्धान्त के प्रति ही है। विभिन्न दार्शनिक ग्रन्थों के लिए भी इस शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है—जिस से जैमिनि-तन्त्र, पूर्वतन्त्र, उत्तरतन्त्र आदि नाम प्रसिद्ध हुए हैं।

---

१. चिकित्सितज्योतिषतत्त्ववादाः पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति।

२. अमरकोष में 'तन्त्र' शब्द के निम्नोक्त प्रकार के अर्थ बताए गए हैं—
'तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते सूत्रवाये परिच्छदे।'—३।३।१८५

मेदिनीकोष में इस शब्द के और भी अर्थ बताए गए हैं—

तन्त्रं कुटुम्बकृत्ये स्यात्सिद्धान्ते चौषधोत्तमे।
प्रधाने तन्तुवाये च शास्त्रभेदे परिच्छदे॥
श्रुति-शाखान्तरे हेतावुभयार्थ-प्रयोजके।
इति कर्तव्यायां च ············॥

भानुजीदीक्षित के मतानुसार तन्त्रशब्द की दो व्युत्पत्तियां हो सकती हैं—

तन् (तनु विस्तारे पा० धा० १४६३) + ष्ट्रन् (उ० ४।१५६)
तन्त्रि (तन्त्रि कुटुम्बधारणे पा. धा. १६७९) + घञ् (पा. सू. ३।३।१८)

बाद में 'तन्त्र' ऐसे शास्त्रग्रन्थों के नाम पड़ गया जिसमें रहस्यात्मक उपासना उपदिष्ट है और जो साक्षात् रूप से प्रचलित वैदिक वाङ्मय के अन्तर्भुक्त नहीं है। इसी लिए शाक्त, शैव, पञ्चरात्र आदि शास्त्र 'तन्त्र' कहलाते हैं, और भी अर्थ संकोच से केवल शाक्त शास्त्र ही मुख्यतया तन्त्र शब्द का वाच्य हो गया है।

तन्त्रशास्त्र प्रायः शिव और पार्वती के संवाद के रूप में रचित हुए हैं। तन्त्रग्रन्थ आगम और निगम दो प्रकार के होते हैं। आगम नाम के बारे में प्रसिद्ध है—

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ।
मतं च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते ॥[1]

अर्थात् 'आगत', 'गत' और 'मत' इन तीन शब्दों के आद्यक्षर से आगम शब्द व्युत्पन्न हुआ है। उसी तरह 'निगम' शब्द की व्युत्पत्ति भी बतायी गई है।[2] आज के प्रचलित तन्त्रों में 'आगम' श्रेणी के ग्रन्थ ही अधिकतया परिचित हैं।

तन्त्र वाङ्मय एक विशाल धार्मिक साहित्य है। इस साहित्य के कितने ग्रन्थ कालवश लुप्त हो गए हैं, कितने आज भी मनुष्यदृष्टि के बाहर अपठित पाण्डुलिपि के रूप में पड़े हुए हैं—इसका कोई पता नहीं है।

---

१. आगम और तन्त्र शब्दों के यौगिक अर्थ के बारे में निम्नलिखित मत ध्यानार्ह है—

"According to the Pinglamata, a manuscript of which, dated 1174 A. D., is found in the Durbar Library of Nepal Agama is that by which objects around are known and tantra is what speads and saves."—Chintaharan Chakıavarti, The Tantras : Sudies on their Religion and Literature, Calcutta, 1963, p. 2..

वहीं पादटिप्पणी ६,

आज्ञा वस्तु समन्ताच्च गम्यत इत्यागमः स्मृतः।
तनुते त्रायते नित्यं तन्त्रमित्थं विदुर्बुधाः ॥

२. निर्गतं गिरिजावक्त्राद् गतं च गिरिजाश्रुतौ।
मतं च वासुदेवस्य तस्मान्निगम उच्यते ॥

महा-सिद्धसार-तन्त्र के अनुसार पृथ्वी के विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता और अश्वक्रान्ता—ये तीन भाग होते हैं—जहाँ एक-एक वर्ग के तन्त्र प्रचलित थे। तन्त्रशास्त्र तीन वर्ग में विभक्त हैं—विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता और अश्वक्रान्ता। हरेक वर्ग में चौसठ-चौसठ तन्त्र हैं[1] और किसी तन्त्र के अनुसार भारतवर्ष भी पृथ्वी की तरह विष्णुक्रान्तादि क्रान्ताओं में विभक्त है।

आज के कुछ विद्वानों का पूर्वाग्रह-मूलक सिद्धान्त यह है कि शक्तिसाधना वेदवहिर्भूत तथा अनार्यों की परम्परा से प्राप्त है एवं तन्त्र शास्त्र भी वेद-विरोधी, अत एव वेदवहिर्भूत है। स्वामी दयानन्द आदि नवीन धर्मप्रचारकों के अन्धाधुन्ध प्रचार से धारणा कुछ शास्त्रविश्वासी लोगों में भी फैल गई है। अतः शक्तिसाधना सर्वथा वेदवहिर्भूत है या नहीं इस विषय का विचार यहाँ प्रायः अप्रासाङ्गिक नहीं होगा।

प्राचीन शास्त्रीय परम्परा के समुचित अनुसंधान से पता चलता है कि तन्त्रशास्त्र एवं शक्तिसाधना वेदविरोधी या वेदवहिर्भूत नहीं है। इसका प्रथम स्पष्ट प्रमाण यह है कि तान्त्रिक क्रियाओं में वेदमन्त्रों का वहुलतया उपयोग किया जाता है। तान्त्रिक कर्मकाण्ड ग्रन्थों में देखा जाता है कि तन्त्रोक्त पञ्चमकार तत्त्वों के शोधन के लिए, "तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् (ऋ० स० १।२२।२०)" "तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम् (ऋ० १।२२।२१), प्र तद् विष्णुः स्तवते मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठा। (ऋ० सं० १।१५४।२)" आदि मन्त्रों का विनियोग वताया गया है। वेदवादी विद्वत् समाज में तन्त्र को पर्याप्त मान्यता वहुत प्राचीन काल से मिलती आ रही है। मनुसंहिता के प्रसिद्ध टीकाकार श्री कुल्लूकभट्ट ने मनुस्मृति २।१ के ऊपर टीका में हारितस्मृति से एक उद्धरण दिया है—

"श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तान्त्रिकी च"।

---

१. प्रत्येक क्रान्ता में प्रचलित मन्त्रों के पूरे विवरण के लिए देखिए—
मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य (तन्त्रानुसार), डॉ० शिवशङ्कर अवस्थी शास्त्री कृत, चौखम्बाप्रकाशन, वाराणसी १९६६, पृ० १३–१५।

सही बात तो यह है कि तन्त्र-शास्त्रीय ग्रन्थों के बीच-बीच में जिन वेद-पुराणादि वचनों से तन्त्रों की श्रेष्ठता बतायी गई है[1] उन सब वचनों को अर्थवाद ही समझना चाहिए। जैसे गीता में बताया गया है कि—'त्रैगुण्य-विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।'[2] आदि। इससे यह सिद्धान्त करना अनुचित ही होगा कि श्रीमद्भगवद्गीता अनार्यों की रचना है या गीता में प्रतिपादित तत्त्व वेद के प्रतिकूल हैं।

आगे चलकर हम देखेंगे कि यद्यपि शाक्त-उपासना मुख्यतया तन्त्रों का ही प्रतिपाद्य विषय है तथापि देवीभागवत, ब्रह्मवैवर्त, वामन, मार्कण्डेय आदि पुराणों में ही शक्तिवाद विशेष व्यवस्थित रूप से पल्लवित हुआ है। सभी मानते हैं कि पुराण-इतिहास सर्वथा वेदानुसारी शास्त्र हैं, दुरधिगम वैदिक ज्ञान को सामान्य स्त्री-पुरुषों के उपयोगी करने के लिए ही पुराण-इतिहास आदि शास्त्रों की रचना हुई थी।[3] वैदिकतत्त्वों के उपबृंहण ही के लिए पुराण और इतिहास की प्रवृत्ति हुई—यह सिद्धान्त वैदिक परम्परा को मान्य है।[4] जब उन्हीं पुराण और इतिहासों में शाक्तसिद्धान्त पल्लवित रूप में देखने को मिलता है, तब शाक्त-सिद्धान्त को और उसी शास्त्रसिद्धान्त के प्रायोगिक शास्त्र तन्त्र को अवैदिक कहना कितना तर्कसम्मत होता है—विचार-सम्पन्न सुधीवर्ग जानते हैं।

---

१. जैसे कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है—

वेदस्मृति-पुराणानि सामान्यगणिका इव।
इयन्तु शाम्भवी विद्या गोप्या कुलवधूरिव॥

२. श्रीमद्भगवद्गीता, २।४५

३. जैसे श्रीमद्भागवत में पाया जाता है—

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
कर्मश्रेयसिमूढानां श्रेय एव भवेदिह॥
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्॥ १।४।२५।

अथवा

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां न वेदश्रवणं मतम्।
तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि च॥—देवीभागवत, १।३।२१

४. इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।—महाभारत, १।१।२६७-६८

शक्तिसिद्धान्त तथा देवीतत्त्व

जिस मूला प्रकृति से इस स्थावर जङ्गमात्मक संसार को उत्पत्ति होती है, वही प्रकृति परिदृश्यमान स्थूल एवं चैतसिक सूक्ष्मभूतात्मक विश्व की सार सत्ता है। वह प्रकृति साङ्ख्योक्त जड़रूपा प्रकृतिमात्र नहीं है। सांख्यशास्त्र के अनुसार प्रकृति केवल जड़रूपा है—चेतन नहीं, चेतन केवल पुरुष है। किन्तु शाक्त सिद्धान्त की मूला प्रकृति चैतन्यरूपा है। जड़ प्रकृति, जिसका प्रपञ्च यह परिदृश्यमान जगत् है—उसी का एक बाह्यरूप, एकांस मात्र है। वही प्रकृति शक्ति या महाशक्ति कहलाती है, क्योंकि संसार की सभी स्थूल तथा सूक्ष्म शक्तियाँ उसी महाशक्ति के प्रतिविम्बमात्र हैं।[1] यही शक्ति प्रत्येक जीव में विद्यमान चैतन्य या आत्मा है,[2] जिसके विना जीव जड़मात्र है। देवीभागवत—में शक्ति को पुरुष की पराशक्ति बताया गया है। वेदान्तोक्त सच्चिदानन्द-रूप ब्रह्मा देवीभागवत को भी मान्य है। उसी ब्रह्मा के साथ सदा सम्मिलित शक्ति ही पराप्रकृति कहलाती है। वस्तुतः वेदान्त के अद्वैततत्त्व के साथ इस शक्ति-तत्त्व का कोई विरोध नहीं है। देवीभागवत के टीकाकार नीलकण्ठ ने ठीक ही बताया है, (शाक्तों की उपास्यभूता) देवी में सभी वेदान्त-शास्त्रों का तात्पर्य उपलब्ध है।[3] अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति जैसे अभिन्न हैं, वैसे ब्रह्म और शक्ति भी परस्पर अभिन्न हैं[4]।

यह पराशक्ति मायाशक्ति भी कहलाती है, किन्तु इसे वेदान्तोक्त माया नहीं समझनी चाहिए, क्योंकि वेदान्त की माया अनिर्वचनीय अविद्यास्वरूपिणी है। शाक्त सिद्धान्त की देवी स्वयं विद्यास्वरूपिणी है, वह बन्धन की नहीं बल्कि मुक्ति की भी हेतु होती है। देवी जगत की स्थिति का भी कारण है,

---

१. सर्वविद्यास्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी।—ब्रह्मवैवर्तपुराण, २।६६।११।

२. चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य चराचरम् —दुर्गा सप्तशती, ५।८०
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।—वही, ५।१६

३. देवी सर्ववेदान्त-तात्पर्यभूमिः ६।७।३२।

४. सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता॥—देवीभागवत, ९।१।१०

५. सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी —दुर्गासप्तशती, १।७५

अतः उनके द्वारा मनुष्य स्नेहादिरूप मोह को प्राप्त होता है,[1] किन्तु वही स्वयं प्रसन्न होकर मनुष्यों को मुक्ति भी देती है[2]—यही वेदान्त की अविद्यारूपा माया से उनका भेद है। इस मायाशक्ति के ज्ञान से मनुष्य मृत्यु को जय कर सकता है, अमृतत्व अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर सकता है—यह सिद्धान्त साक्षात् श्रुति को भी मान्य है।[3] तन्त्र की मायाशक्ति ब्रह्म से भिन्न नहीं है वह मायाविशिष्ट ब्रह्म अथवा ब्रह्मविशिष्ट माया कहला सकती है।[4] इसी भेद को प्रकट करने के लिए शाक्तसिद्धान्त की मायाशक्ति को प्रायशः महामाया कहा गया है। यह महामाया अविद्यारूपिणी नहीं बल्कि सच्चिदानन्दरूपिणी है, वह अपनी इच्छा से भक्तों के अनुग्रह के लिए रूप लेकर आविर्भूत हो सकती हैं।[5] देवी नित्या हैं, उनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, किन्तु देवों के कार्य (दुष्कृति तथा दुष्कृतों के विनाश) के लिए वह जब आविर्भूत होती है—तभी उनकी उत्पत्ति हुई है-ऐसा कहा जाता है।[6]

---

१. तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिता।
महामाया प्रभावेण संसारस्थितिकारिणा॥ —वही, १।५३–५४
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥ वही—१।५५–५६।

२. सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये। वही, १।५७

३. य एतां मायां शक्तिं वेद स पाप्मानं तरति स मृत्युं तरति स संसारं तरति सोऽमृतत्वं च गच्छति"'। नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषत्, ३।१।

४. देव्या मायाविशिष्टब्रह्मरूपत्वात् क्वचिन्मायोपसर्जनब्रह्मरूपत्वेन वर्णनं क्वचिद् ब्रह्मोपसर्जनमायारूपत्वे वर्णम्।
—देवीभागवत की नीलकण्ठ-कृत टीका, ३।१७।३५–४२।

५. सेयं शक्तिर्महामाया सच्चिदानन्दरूपिणी।
रूपं विभर्त्यरूपा च भक्तानुग्रहहेतवे॥ —देवीभागवत,

६. देवानां कार्यसिध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते॥
—दुर्गासप्तशती, १।६५–६६

इस पराशक्ति को 'मायाशक्ति' या 'महामाया' क्यों कहा जाता है, इस प्रश्न का उत्तर देवीभागवत में ही मिलता है—जैसे अभिनेता एक ही व्यक्ति होते हुए भी लोक-रञ्जन के लिए नाटकों में भिन्न-भिन्न रूप लेकर अभिनय करता है, वैसे ही देवी निर्गुण एवं अरूपा होती हुई भी देवकार्यों के लिए भिन्न-भिन्न सगुण रूप ग्रहण करती हैं ।[१]

परिदृश्यमान जगत् उस महाशक्ति महामाया के अनन्त रूप का एक अंशमात्र है, उसकी एक व्यक्त मूर्ति है ।[२]

ब्रह्म से अभिन्नस्वरूप इस पराशक्ति का प्रकाश जीवन में भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई पड़ता है । श्रुति में कहा गया है कि 'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥'

अर्थात् चराचर जगत् में जो भी कुछ ज्ञान-क्रिया[४], इच्छा तथा बलक्रिया का प्रकाश है, वह सभी उस ब्रह्मगत-पराशक्ति का ही वास्तव रूप है ।

कारणस्वरूप ब्रह्म की त्रिविध शक्ति से सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं । तीन ही कार्य महामाया के बहिः-प्रकाश हैं ।[५]

---

१. यथा नटो रङ्गगतो नानारूपो भवत्यसौ ।
एकरूप-स्वभावोऽपि लोकरञ्जनहेतवे ॥
तथैषा देवकार्यार्थमरूपापि स्वलीलया ।
करोति बहुरूपाणि निर्गुणा सगुणानि च ॥—देवीभागवत, ५।८।५८–५९ ।

२. नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ।—दुर्गासप्तशती, १।६४

३. (क) श्वेताश्वतरोपनिषत्, ६।८।
(ख) शम्भोर्ज्ञानक्रियेच्छाबलकरणमनःशान्तितेजःशरीरस्वर्लोकागार-
दिव्यासनवरमहिषीभोग्यवर्गादिरूपा ।
सर्वैरेतैरुपेता स्वयमपि च परब्रह्मणस्तस्य शक्तिः ।
सर्वाश्चर्यैकभूमिर्मुनिभिरनुता वेदतन्त्राभियुक्तैः ॥—आनन्दलहरी, ३।७ ।

४. सर्वविषयज्ञानप्रवृत्तिः—शाङ्करभाष्य ।

५. विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥
—दुर्गासप्तशती, १।७६–७७ ।

पहले कहा जा चुका है कि देवी स्वयं गुणों तथा रूपों की अतीत होती हुई भी भक्तों के प्रति अनुग्रह प्रकट करने के लिए गुणों का आश्रय लेकर रूप ग्रहण करती हैं। सत्त्व, रजः और तमः—इन तीन गुणों के आश्रय लेने से उनका प्रकाश भी तीन प्रकार का होता है—महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली[1]। दुर्गासप्तशती के टीकाकार भास्करराय के मतानुसार ज्ञान, इच्छा और क्रिया ये तीन ब्रह्मशक्ति व्यष्टि रूप से महासरस्वती, महालक्ष्मी, और महाकाली ये तीन नामभेद और रूपभेद लेकर प्रकट होती हैं।[2] वस्तुतः सत्त्व, रजः, तमः—इन तीन गुणों के भेद से ब्रह्मशक्ति का यह रूपभेद प्रकारान्तर से श्वेताश्वतर श्रुति में भी प्रतिपादित है—जहाँ 'लोहित', 'शुक्ल' और 'कृष्ण' तीन वर्णों से तीन गुण लक्षित हुए हैं।[3]

दुर्गासप्तशती, प्रथमचरित्र, मध्यमचरित्र और उत्तरचरित्र—इन तीन चरित्रों में विभक्त हैं। महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती—ये क्रमशः उपर्युक्त तीन चरित्रों की देवताएँ हैं, और प्रत्येक चरित्र में क्रमशः इन्हीं का एक-एक स्वरूप वर्णित है। प्रथम अध्याय में देखा जाता है कि ब्रह्मा की स्तुति से योगनिद्रागत भगवान् श्रीविष्णु के नेत्र, नासिका आदि अङ्गों से तमोगुण-प्रधाना योगनिद्रा बाहर निकल आई और ब्रह्माजी के सामने मूर्ति लेकर आविर्भूत हुई।

---

१. निर्गुणा या सदा नित्या व्यापिकाऽव्याकृता शिवा।
योगगम्याऽखिलाधारा तुरीया या च संस्थिता॥
तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ति राजसी तामसी तथा।
महालक्ष्मीः सरस्वती महाकालीति ताः स्त्रियः॥

—देवीभागवत, १।१।१९–५०

२. ज्ञानेच्छाक्रियारूपाणां तिसृणां व्यष्टीनां महासरस्वती महाकाली महालक्ष्मी-रिति प्रवृत्तिनिवृत्ति-वैलक्षण्येन नामरूपान्तराणि।······सच्चिदानन्दात्मक-परब्रह्म-धर्मत्वादेव शक्तेरपि त्रिरूपत्वम्।—गुप्तवतीटीका।

३. अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानाः सरूपाः।

—श्वेताश्वतरोपनिषत्, ४।५

और भगवान् श्रीविष्णु ने निद्रा से उठ कर मधुकैटभ का विनाश किया।[1] यही भगवान् विष्णु की योगनिद्रा देवी महाकाली है।[2]

दुर्गासप्तशती के मध्यमचरित्र (अध्याय २ से ४) में देवी के महिषासुर-मर्दिनी रूप का वर्णन मिलता है। मध्यमचरित्रोक्त यह महिषासुरमर्दिनी देवी ही महालक्ष्मी है।[3]

ऐसे ही उत्तरचरित्र (अध्याय ५ से १३) में वर्णित धूम्रलोचन, शुम्भ, निशुम्भ आदि असुरों की विनाशिनी गौरीदेहसमुद्भूता देवी ही महासरस्वती है।[4]

अतः हम देखते हैं कि शास्त्रान्तर में प्रतिपादित महाशक्ति का गुणानुसार नामरूप-भेद दुर्गासप्तशती में सप्रपञ्च अभिव्यक्त हुआ है।

मातृतत्त्व

महाशक्ति विश्व की जननी कहलाती है, क्योंकि वही कारणरूपा होने के कारण सार्थकरूप से ही विश्वप्रसवित्री कहला सकती है। हम पहले कह चुके हैं

---

१. देखिए—दुर्गासप्तशती, १।८९–१०४।

२. योगनिद्रा हरेरुक्ता या सा देवी दुरत्यया।
महाकाल्यास्तनुं विद्धि तां मां देवीं सनातनीम् ॥
एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया।
स्तुत्या वशीकृता कुर्याद् दिशः स्तोतुश्चराचरम् ॥ —लक्ष्मीतन्त्र।

अथवा,
योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा।
मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः ॥ —वैकृतिकरहस्य, २।

३. महालक्ष्मीरहं शक्र पुनः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
हिताय सर्वदेवानां जाता महिषमर्दिनी ॥ —लक्ष्मीतन्त्र।

४. गौरीदेहात् समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया।
साक्षात् सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ —वैकृतिकरहस्य, १४।

अथवा,
सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥ —वैकृतिकरहस्य, ७।

कि साकार-उपासना की प्रवृत्ति इस लिए हुई कि साधक जगत्-कारण-स्वरूप 'अणो रणीयान्' सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमात्मतत्त्व को आलम्बन के रूप में सोच सके। परतत्त्व की कल्पना अनन्त रूप में हो सकती है, किन्तु मनुष्य के लिए जननी के अतिरिक्त कौन सा तत्त्व अधिक प्रेयः हो सकता है? जागतिक व्यवहार में हम देखते हैं, हमारे जन्म के पहले हमारी जननी गर्भ-धारण-रूप क्लेश को निर्विवाद सहन कर लेती हैं। विश्वस्रष्टा की अपार करुणा के मूर्तप्रकाशरूप जिस स्तन्य दुग्ध के बिना नवजात शिशु एक मुहूर्त के लिए भी जी नहीं सकता, जननी के माध्यम से ही प्रवाहित होता है। जन्म के बाद प्रति निमेष, प्रति क्षण जननी की कृपादृष्टि अपत्य के लिए जागरूक रहती है। पुत्र के शत-सहस्र अपराधों को माँ क्षमा कर दे ी है। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।'

इसीलिए साक्षात् श्रुति माता को पिता एवं आचार्य से भी अग्राधिकार देकर कहती है—'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।'[1] परम पूज्य पिता की अपेक्षा माता की महिमाद्योतक 'गर्भधारणपोषणाभ्यां तातान्माता गरीयसी, आदि शास्त्रोक्ति सभी भारतीय को ज्ञात है। अतः जगत्कारण की मातृभाव से उपासना श्रेष्ठ मानी जाती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। जब त्रिलोक में जननीसे श्रेष्ठ कोई तत्त्व है ही नहीं,[2] तब श्रेष्ठ तत्त्व की मातृरूप में कल्पना साधकों के लिए बहुत ही उपयोगी है। वर्तमान युग में श्रीरामप्रसाद, श्रीरामकृष्ण परमहंस आदि श्रेष्ठ भक्त मातृभाव के अवलम्बन से ही निःश्रेयस को प्राप्त कर चुके हैं।

परतत्त्व का यह मातृभाव केवल लौकिक व्यवहार की उपमा के आधार पर ही प्रतिष्ठित नहीं, अपितु मातृभाव-साधना की परम्परा बहुत ही प्राचीन, शास्त्रों तथा अवतार-कल्प महात्माओं के द्वारा समर्थित भी है, और यही सनातन हिन्दूधर्म का महत्त्व भी निहित है। तुलनात्मक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि ईसाई धर्म की सर्वोच्च धारणा ईश्वर के पितृस्वरूप तक पहुंचती है—वहाँ तो 'जनकेश्वर' (God the Father) ही परम तत्त्व है। इस्लाम ने भी ईश्वर को स्रष्टा, न्यायविचारक, दण्डदाता और प्रभु ही बतलाया है।

---

१. तैत्तिरीयोपनिषत् १।११।२।

२. 'मातुः परतरं किञ्चिन्नाधिकं भुवनत्रये।'

ईश्वर के प्रति पितृभावना वेद में भी मिलती है। किन्तु साथ ही साथ मातृभावना इस सुमहान धर्म की श्रेष्ठता को व्यक्त करती है। वहाँ 'द्यौः' को पिता कहा जाता है, तो साथ ही साथ 'पृथिवी' को माता भी कहा जाता है।[१] ऋग्वेद में उपलब्ध और एक मातृत्व की कल्पना है—अदिति। अदिति के बारे में कहा गया है—

"अदिति मित्र, वरुण आदि समस्त देवताओं की जननी ...... है।[२] देव-जननी को हम दुर्गासप्तशती में भी पाते हैं।[३]

जगत् कारण का यह मातृत्व दार्शनिक दृष्टि से भी प्रतिपादित किया जा सकता है। जिस उपादान कारण से यह चराचर जगत् उत्पन्न होता है—वह माता है न तो क्या? भगवान् शंकराचार्य ने बड़े कवित्व के साथ इसका वर्णन करते हुए कहा हैं—

'अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यथा जगत्सर्वमिदं प्रसूयते॥

भगवान् मनु के अनुसार जिस विराट्-तत्त्व से प्रत्यक्षतया इस जगत् की सृष्टि हुई थी उसकी उत्पत्ति के लिए भी मातृरूपिणी नारी की आवश्यकता सृष्टि के प्रारम्भ में हुई थी।[४] अतः हम देवी की स्तुति करते हुए अवश्य ही कह सकते हैं—जो देवी सभी भूतों में मातृरूप से अवस्थित हैं उनको नमस्कार है।'[५]

ऊपर शाक्तसिद्धान्त तथा उसके मूलीभूत-मातृतत्त्व के बारे में संक्षिप्त विवरण दिया गया है। अब शक्तिसाधना के इतिहास के बारे में कुछ कहना अप्रासङ्गिक नहीं होगा। भारतवर्ष में शक्तिसाधना की परम्परा बहुत ही प्राचीन

---

१. द्यौर्वः पिता पृथिवी माता।—ऋ० सं० १।१९१।६।

२. देखिए ऋ० सं० ८।४७।९, १०।३६।३।

३. त्वमेव सा त्वं सावित्री त्वं देवजननी परा।—दुर्गासप्तशती, १।७५।

४. द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः॥—मनुसंहिता १।३२।

५. या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥—दुर्गासप्तशती, ५।७३।

है। महेञ्जेदड़ो और हरप्पा के ध्वंसावशेष में जिस प्राचीन सभ्यता का अवशेष मिलता है उसमें शक्तिसाधना का विशेष महत्त्व है। उन स्थानों में कई जगज्जननी की मूर्त्तियां उपलब्ध हुई हैं। अनेक आधुनिक विद्वान् उस सभ्यता को आर्यसभ्यता से भी प्राचीन मानते हैं। हम इस सम्बन्ध में भिन्नमत का पोषण करते हुए कहना चाहते हैं कि हरप्पा तथा महेञ्जेदड़ो की मूर्तियाँ, मूर्ति रूप में देवी उपासना का प्राचीनतम उपलब्ध प्रमाण है। वैदिक वाङ्मय में शक्तितत्त्व बहुधा पल्लवित है। ऋग्वेद में अग्नायी (१।२२।१२), इन्द्राणी (२।३२।८), वरुणानी (२।३८।८), रात्रि (१।३५।१), उषा (४।३०।९–११), शका (२।३४।४–५) सरस्वती आदि देविओं के नाम आए हुए हैं। दुर्गासप्तशती के उत्तर-चरित्र की देवता सरस्वती या महासरस्वती भी ऋग्वेदीय ऋषिओं को परिचित थीं। ऋग्वेद की सरस्वती नदीरूपा एवं देवीरूपा दोनों ही हैं। मातृरूपिणी देवजननी अदिति का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। ऋग्वेद के खिल भाग में 'श्रीसूक्त' उपन्यस्त है, जिसे दुर्गासप्तशती की और एक देवता महालक्ष्मी की स्तुति का ही एक प्राग्रूप बताया जा सकता है। ऋग्वेदीय देवीसूक्त शाक्तसाधना का एकस्तम्भस्वरूप है। आम्भृणी वाक् के द्वारा दृष्ट इस सूक्त में परोक्षरूप से ब्रह्मात्मशक्ति ही प्रतिपादित है। उक्त सूक्त के ७ मन्त्र में ऋषि ने स्वस्वरूप का जो स्त्रीलिङ्ग विशेषणों के द्वारा निर्देश किया है उससे शक्तितत्त्व का परिचय मिलता है।[1]

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी के मतानुसार ऋग्वेदीय रात्रिसूक्त[2] की देवता 'रात्रि' भुवनेश्वरी देवी का ही नामान्तर है। वस्तुतः, इस रात्रिसूक्त में शक्तितत्त्व का गम्भीर रहस्य छिपा हुआ है। शुक्ल यजुर्वेद-संहिता में देवी का अम्बिका ऐसा एक नाम उपलब्ध है जो रुद्र की भगिनी है।[3] यजुर्वेद में रुद्र का जो 'त्र्यम्बकं

---

१. अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रीं भूर्यावेशयन्तीम् ॥

२. ऋग्वेदसंहिता १०।१२०।

३. एष ते रुद्रभागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व।
—शुक्लयजुर्वेद, माध्यन्दिन संहिता, ३।५७।

यजामहे' (३।६०) ऐसा मन्त्र है षड्विंश ब्राह्मण के अनुसार उसमें देवी का भी उल्लेख छिपा हुआ है। त्र्यम्बक का अर्थ 'स्त्री अम्बा स्वसा यस्य सः'।[1]

स्वामी जगदीश्वरानन्द के मतानुसार ऋग्वेद में श्रीदुर्गा के कई एक रूप—विश्वदुर्गा, अग्निदुर्गा, सिन्धुदुर्गा आदि उपवर्णित हैं। श्रीदुर्गा गिरिराज़ हिमालय की दुहिता बनकर अवतीर्ण हुई थी, उनके उमा, पार्वती आदि नाम पुराणों में तथा प्राचीन साहित्य में प्रसिद्ध हैं। उनका 'हैमवती उमा'—यह नाम केनोपनिषद् में भी हमें मिलता है। वहाँ 'हैमवती उमा' ब्रह्मशक्ति का ही मूर्तरूप मानी गयी है। तैत्तिरीयारण्यक में तो देवीतत्त्व का विशेष विकाश ही दिखाई पड़ता है। वहाँ एक मन्त्र में देवी दुर्गा की स्तुति की गई है।[2]

वेद उपनिषदों में सूत्ररूप में वर्णित शक्तिवाद बाद में पुराण तन्त्रादि शास्त्र में पल्लवित हुआ था। अतः शाक्तसिद्धान्त को अवैदिक कहना या उसे अनार्यों से प्राप्त सिद्धान्त मानना नासमझी का द्योतक है।

मातृरूप के अवलम्बन से उपास्य की उपासना साधकों के लिये विशेष रुचिकर होने के कारण और धर्मावलम्बियों में भी उसका प्रचार दिखाई पड़ता है।

नीरीश्वरवादी बौद्ध धर्म में भी इसीलिये देवी को स्थान देना पड़ा एवं तारा, मञ्जुश्री, सरस्वती आदि देवियों की उपासना ने बौद्धधर्म के उत्तराम्नाय को नया रूप दे दिया। विशाल बौद्ध तन्त्र साहित्य की भी रचना हुई और केवल तारा देवी के तत्त्व के व्याख्यान के लिए ही इस समय कम से कम ३३ प्रसिद्ध ग्रन्थ उपलब्ध हैं। निरीश्वरवादी जैनों में भी देवी उपासना का बड़ा प्रचार हुआ।

स्थानाभाव के कारण हम यहाँ बौद्ध और जैन शक्तिवाद का विस्तृत विवरण नहीं दे सके हैं। विशेष ध्यानार्ह बात यह है कि—ईसाई धर्म शास्त्र में देवीतत्त्व के लिए कोई स्थान नहीं है, तब भी पूरे यूरोप के रोमन कैथलिक ईसाईसमाज ने ईशजननी 'मरिया' को स्वयं तनयावतार के ऊपर स्थान देकर मुख्य उपास्य बना लिया है।

---

१. सायणाचार्य ने इस वाक्य की व्याख्या करते हुए कहा कि 'स्त्री' शब्द के सकार का पृषोदरादित्व से लोप हुआ है।

२. तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः॥ २॥
—तैत्तिरीय आरण्यक, १०।२।१।

मार्कण्डेय पुराण के ८१ से लेकर ९३ अध्याय तक कुल १३ अध्याय ही दुर्गासप्तशती नाम से प्रसिद्ध है। इसमें ७०० मन्त्र हैं। ये ७०० मन्त्र देवी दुर्गा की महिमा का ही वर्णन करते हैं इसीलिए ग्रन्थ का नाम 'दुर्गासप्तशती' पड़ा है। बंगाल में यह ग्रन्थ 'श्री श्री चण्डी' नाम से प्रसिद्ध हैं। कहीं-कहीं यह 'देवीमाहात्म्य' भी कहलाता है। दुर्गासप्तशती का मुख्य महत्त्व स्तुति में है। इसमें चार स्तुतियाँ हैं। स्तुति अर्थात् उपास्य के महिमावर्णन-परक वचन उपासना का एक उत्तम उपाय होता है। वेदमन्त्र भी स्तुतियाँ ही हैं। दुर्गासप्तशती की स्तुतियाँ, विषयगाम्भीर्य, तत्त्व की प्राञ्जलता एवं कवित्व के कारण स्तोत्र साहित्य में अपना प्रमुख स्थान रखती हैं इसीलिए यह ग्रन्थ आसमुद्र हिमाचल आस्तिक हिन्दुओं के पारायणग्रन्थ का स्थान प्राप्त कर चुका है। प्राचीन समय से दुर्गासप्तशती के ऊपर बहु विचारगर्भित टीकाएं लिखी गई हैं, हिन्दी, बंगला, महाराष्ट्री, अंग्रेजी प्रभृति भाषाओं में इसके सैकड़ों अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं।

हमें अपने परम मित्र देवीभक्त पं० श्री हरेकान्तमिश्रकृत हिन्दी टीका युक्त इस नवीन संस्करण को देखकर अपार आनन्द हो रहा है। पं० श्री मिश्रजी दुर्गा के नित्यपाठी हैं, अपनी उपासना का एक अङ्ग समझ कर साङ्गोपाङ्ग दुर्गासप्तशती का यह सटीक संस्करण उन्होंने प्रस्तुत किया है। इसमें भक्त उपासकों के लिए बहुत ही उपयोगी सामग्री एकत्रित की गई है। इस संस्करण की सुविस्तृत भूमिका लिखने के लिए उन्होंने मुझ से अनुरोध किया था। किन्तु दुर्गासप्तशती के रहस्य तथा उसमें छिपे हुए साधन-तत्त्वों के बारे में सविस्तर लिखा जाय तो एक महान् मौलिक ग्रन्थ ही बन जायगा अतः मैंने केवल दुर्गासप्तशती का प्रतिपाद्य शक्तितत्व का कुछ विवरण ही पाठकोंके समाने प्रस्तुत कर विद्वान् सम्पादक तथा पाठको से क्षमायाचना कर रहा हूँ।

आशा है पाठक लोग इस संस्करण का समुचित समादर करेंगे।

वाराणसी
वि० सं० २०२५

निवेदकः
सत्कारिशर्मा वङ्गीयः

प्राक्कथन

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

शास्त्रकारों ने शास्त्रमूलक प्रवृत्ति को धर्मशब्द से व्यवहृत किया है, अतः उक्त प्रवृत्ति के लिये जो शास्त्रीय प्रवर्त्तक वचन मिलते हैं उसे मीमांसा-दर्शन में विधि वाक्य कहा गया है। विधि वाक्य प्रायः लिङ्, लोट, तव्यत् या अनीश्वर् प्रत्यय घटित ही होते हैं। मार्कण्डेय ऋषि ने "तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम्" इस वचन को सप्तशती पाठ के लिये विधिवाक्य के रूप में प्रयुक्त किया है। अतः सप्तशती का पाठ शास्त्रीय सिद्धान्त से भी सिद्ध है। ऐसा देखा गया है कि जिसे दर्शन का ज्ञान नहीं है वह भी यदि किसी कामनावश पाठ करता है तो उसे तत्काल प्रत्यक्ष फल मिलता है। रोगी आदि की निराशजनक स्थिति में पाठ करने से तत्काल आशाजनक स्थिति का प्रत्यक्ष अनुभव मैंने कई बार किया है। अस्तु,

पाठक को यह ध्यान रहे कि सप्तशती का पाठ एक प्रकार का अङ्गी होता है और वह अङ्गी अपने अङ्गों के पूर्वापरीभाव से सम्बन्ध रखता है। किसी प्रकार का पाठ, पूजा या अनुष्ठान अङ्गहीन होने से पाठकर्त्ता को इष्टफल देने में असमर्थ होता है और साथ ही अङ्ग के साथ अङ्गी का कालिक व्यवधान होने से भी पाठकर्त्ता को इष्टफल की प्राप्ति नहीं होती, इसलिये सप्तशती पाठ करनेवालों को चाहिये कि वे एक ही समय में अङ्गों का भी पाठ करें। इसलिये "ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत ह्यकुर्वाणो विनश्यति।" ऐसा वचन कीलक स्तोत्र में मिलता है। सप्तशती पाठ के छः अङ्ग होते हैं—अर्गला, कील, कवच एवं रहस्यत्रय। अङ्गहीन पाठ करने पर रावण का विनाश पुराण आदि में उपवर्णित है।

इसके साथ अष्टोत्तरशत नवार्णमंत्र एवं उसके न्यास के साथ सप्तशती का सम्पुट पाठ करना चाहिये। अतः इस संस्करण में नवार्णमंत्र तथा छः प्रकार के अङ्गों का भी समावेश किया गया है। मानवीय जगत् में काम्यकर्म करनेवाले जिस किसी भी अभिलाषा से साङ्गसप्तशती का पाठ करते हैं वे निश्चय ही अभिलषित फल को प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ तक कि मोक्षार्थी भी मोक्ष की अभिलाषा से पाठ करता है तो उसे भी मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः महर्षि ने तेरहवें अध्याय में "आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा" इस वचन का उल्लेख किया है। भोग, स्वर्ग एवं मोक्ष इन त्रिविध फलों को देनेवाला साङ्ग सप्तशती का पाठ है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। इसके अतिरिक्त पाठक को एक बात और ध्यान में रखनी चाहिये कि पाठ अशुद्ध न हो। यद्यपि मैंने इसके सम्पादन में अनेक ग्रन्थों एवं विशिष्ट विद्वानों की सहायता से विविध पाठान्तरों को पुस्तक के अन्त में देकर मूल पुस्तक में शुद्ध पाठ का ही उल्लेख किया है, फिर भी यन्त्रदोष या प्रमादवश यदि कोई त्रुटि रह गयी हो तो उसे पाठक क्षमा करेंगे। सम्पुट पाठ करने वालों के लिये भी इस संस्करण में प्रत्येक श्लोक, मन्त्र एवं उसके अङ्कों आदि का समावेश बड़े सुचारुरूप से किया गया है। प्रसङ्ग के अनुसार अध्याय के आदि में देवी के चित्र भी दिये गये हैं। इसके लिये मैं चौखम्बा संस्कृत सोरिज के व्यवस्थापक महोदय तथा श्री पं० रामचन्द्र जी झा का तथा महाशक्ति के अखण्डोपासक वङ्गीय विद्वान् श्री पं० सत्कारिशर्मा जी का विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर महत्त्वपूर्ण भूमिका से इस संस्करण को विभूषित किया है।

वाराणसी
सं २०२५

विनयावनत—
हरेकान्त मिश्र

दुर्गासप्तशती-पाठविधि

देवी की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये प्रत्येक दिन पाठक स्नानादि कार्य से निवृत्त हो शुद्ध आसन पर बैठे और शान्तचित्त होकर पाठ करे।

किसी कामना को लेकर यदि पाठ करे तो उसमें प्रतिदिन एक पाठ करना चाहिए। यदि सामान्यरूप से एक पाठ भी प्रतिदिन किया जाय और किसी प्रकार की कामना न हो, तो भी पाठ करनेवाले व्यक्ति के सभी अभीष्ट सिद्ध होते हैं। जो व्यक्ति एक दिन में सप्तशती का एक पाठ भी सम्पूर्ण नहीं कर सकते, उनके लिए यह सूत्र है—

'पा ठो यं व र का रः'

अर्थात् 'पा' पवर्ग के प्रथम अक्षर होने से 'पा' से प्रथम अध्याय समझना चाहिये। 'ठो' टवर्ग के द्वितीय अक्षर होने से 'ठो' से आगे के दो अध्याय याने द्वितीय-तृतीय अध्याय का पाठकरना चाहिये। 'यं' यवर्ग के प्रथम अक्षर होने से आगे का एक अध्याय याने चतुर्थ अध्याय का पाठ करना चाहिये। 'व' यवर्ग का चतुर्थ अक्षर होने से आगे का चार अध्याय अर्थात् पंचम से अष्टम अध्याय तक का पाठ करना चाहिए। 'र' यवर्ग का द्वितीय अक्षर होने से आगे का दो अध्याय याने नवम तथा दशम अध्याय का पाठ करना चाहिए। 'का' कवर्ग का प्रथम अक्षर होने से आगे का एक अध्याय याने एकादश अध्याय का पाठ करना चाहिए। 'र' यवर्ग का द्वितीय अक्षर होने से आगे का दो अध्याय याने द्वादश और त्रयोदश अध्याय का पाठ करना चाहिये। अर्थात् पहले दिन प्रथम अध्याय, दूसरे दिन द्वितीय और तृतीय अध्याय, तीसरे दिन चतुर्थ अध्याय, चौथे दिन पंचम से अष्टम अध्याय पाँचवें दिन नवम और दशम अध्याय, छठे दिन एकादश अध्याय और सातवें दिन द्वादश तथा त्रयोदश अध्याय का पाठ करना चाहिए। इस प्रकार सात दिन में पाठ पूर्ण हो जायगा।

यदि कोई विशेष कामना से सप्तशती का पाठ करता हो और वह पाठ प्रतिदिन एक ही किया जाय तो संकल्प करे। फिर पंचोपचार से देवी-मूर्ति या चित्र का पूजन करे। इसके बाद रात्रिसूक्तादि का पाठ करके सप्तशती का

न्यास-ध्यान कर नवार्ण मन्त्र (ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे) का १०८ बार जप करे। तत्पश्चात् सप्तशती का पाठ करे। पुनः १०८ बार उक्त मंत्र का जप कर देवीसूक्त आदि का पाठ करे। अन्त में क्षमायाचना करे।

नवरात्र या किसी विशेष अवसर पर शतचण्डी आदि अनुष्ठान में विस्तृत विधि का उपयोग किया जाता है। उसमें यन्त्रस्थ, कलश, गणेश, नवग्रह, मातृका, वास्तु सप्तर्षि, सप्तचिरंजीव, ६४ योगिनी, ५० क्षेत्रपाल तथा अन्यान्य देवताओं की वैदिक विधि से पूजा होती है। अखण्ड दीप की व्यवस्था की जाती है। देवीप्रतिमा की अङ्ग-न्यास और अग्न्युत्तारण आदि विधि के साथ विधिवत् पूजा की जाती है। नवदुर्गापूजा, ज्योतिःपूजा, बटुकगणेशसहित कुमारी पूजा, अभिषेक, नान्दीश्राद्ध, रक्षाबन्धन, पुण्याहवाचन, मंगलपाठ, गुरुपूजा, तीर्थावाहन, मन्त्रस्नान आदि, आसनशुद्धि, प्राणायाम, भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, अन्तर्मातृकान्यास, बहिर्मातृकान्यास, सृष्टिन्यास, स्थितिन्यास, शक्तिकलान्यास, शिवकलान्यास, हृदयादिन्यास, षोढान्यास, विलोमन्यास, तत्त्वन्यास, अक्षरन्यास, व्यापकन्यास, ध्यान, पीठपूजा, विशेषार्घ्य, क्षेत्रपालन, मंत्रपूजा, विविधमुद्राविधि, आवरणपूजा एवं प्रधानपूजा आदि का शास्त्रीय पद्धति के अनुसार अनुष्ठान होता है।

(सविधि दुर्गापूजापद्धति पं० रामचन्द्र झा सम्पादित 'वर्षकृत्य-प्रथम भाग' में छपी है।)

पाठ दो प्रकार के हैं, एक वाचिक और दूसरा मानसिक। मानसिक पाठ निष्फल है जैसा कि कुलार्णवतन्त्र में लिखा है—

'मनसा यः स्मरेत् स्तोत्रं वचसा वा मनुं जपेत्।
उभयं निष्फलं देवि! भिन्नभाण्डोदकं यथा॥'

अर्थात् जोर से मंत्र का जप और मन ही मन स्तोत्र का पाठ वैसे ही निष्फल होता है, जैसे फूटे घड़े में जल रखना। अतः धीरे-धीरे पाठ करना चाहिये, जिसे पाठक स्वयं सुन सके।

चिदम्बरसंहिता में लिखा है—यजमान पहले ब्राह्मणों का वरण कर, वस्त्र, आसन आदि उन्हें प्रदान करके मनकामना का उल्लेख करने के बाद पुस्तक का पूजन करे। पाठक वर्णों का उच्चारण धीरे-धीरे शान्तिचित्त होकर

स्पष्ट उच्चारणपूर्वक पाठ करे। पाठ करते समय शरीर को न हिलावे, न हँसे, न रोवे, न चले-फिरे, न खाये-पिये, न बातचीत करे और न बीच में पाठ का क्रम भंग करे। इस सम्बन्ध में लिखा भी है—

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितवाचकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमः॥

अर्थात् गाकर पाठ करना, जल्दी-२ पाठ करना, पाठ करते समय सिर हिलाना, जैसा शुद्ध या अशुद्ध लिखा है वैसा ही पाठ करते जाना, अर्थ समझे बिना पाठ करना और मन्दस्वर से पाठ करना—ये छः प्रकार के अधम पाठक हैं। उत्तम पाठक के सम्बन्ध में लिखा है—

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः॥

अर्थात् मधुर स्वर से प्रत्येक अक्षर के स्पष्ट उच्चारणपूर्वक, पदच्छेद करते हुए, उत्तम स्वर के साथ, धीरे-धीरे, लय से युक्त अर्थ को जानते हुए पाठ करना चाहिए।

वाराहीतन्त्र में पाठ का विधान यह लिखा है कि पाठ करते समय पुस्तकको हाथ में रखकर पाठ नहीं करना चाहिए। आधार रखकर पाठ करना चाहिए। हाथ में पुस्तक रखकर पाठ करने से आधा ही फल मिलता है। जब तक अध्याय पूर्ण न हो जाय, पाठ करते समय बीच में नहीं रुके। यदि प्रमाद से अध्याय की समाप्ति के पहले ही रुकना पड़े तो पुनः अध्याय के प्रारम्भ से धीरे-२ पाठ करे। पाठ करते समय सिर आदि न हिलावे।

वाराहीतन्त्र में लिखा है—स्तोत्र अथवा संहिता का पाठ आदि और अन्त में प्रणव (ॐ) लगाकर करना चाहिए। अपनी लिखी, शूद्र की लिखी और अब्राह्मण (क्षत्रिय-वैश्य आदि) की लिखी पुस्तकों का पाठ करने से कुछ फल नहीं होता है। यदि स्तोत्र में प्रणव न लिखा हो तो आदि और अन्त में प्रणव की योजना कर ले अन्यथा पाठ करना व्यर्थ होता है।

मारीचकल्प में लिखा है—आदि में रात्रिसूक्त का पाठ करे, बीच में

सप्तशती का पाठ करे और अन्त में देवीसूक्त का पाठ करे, यही पाठ का क्रम है। इस तरह स्तोत्र को सम्पुटित करके पाठ करने से सभी कामनाओं की सिद्धि और अर्थलाभ होते हैं। रात्रिसूक्त में 'त्वं स्वाहा त्वं स्वधा' आदि प्रथम चरित्र की स्तुति है और देवीसूक्त में 'नमो देव्यै' आदि तृतीय चरित्र की स्तुति है।

मेरुतन्त्र में लिखा है—मार्कण्डेयपुराण में कहे गये चण्डी-स्तव को मूल-मंत्र से सम्पुटित करके पाठ करे। यहाँ मूल-मंत्र का तात्पर्य नवार्ण मन्त्र से है।

रुद्रयामलतन्त्र में लिखा है—

'स्तोत्रे च संहितायां च अन्त्यश्लोकं पठेद् द्विधा।

अर्थात् स्तोत्र और संहिता में अन्तिम श्लोक का पाठ दो बार करना चाहिए। इसी नियम के अनुसार सप्तशती के अन्तिम श्लोक, जो त्रयोदश अध्यायके अन्त में है, दो बार पाठ करना चाहिए।

जो व्यक्ति स्वयं सप्तशती का पाठ न करके किसी दूसरे से करवाता है उसे शास्त्र के अनुसार सप्तशती पाठ की दक्षिणा देनी चाहिए, अन्यथा पाठ का फल नहीं मिलता है। लिखा है—

'पञ्च स्वर्णाः शतावृत्तौ पक्षावृत्तौ तु तत् त्रयम्।
पञ्चवृत्तौ स्वर्णमेकं त्रिरावृत्तौ तदर्धकम्॥
एकावृत्तौ पादमेकं दद्याद् वा शक्तितो बुधः।'

अर्थात् सौ आवृत्ति का पाँच स्वर्णमुद्रा, पन्द्रह आवृत्ति का तीन स्वर्णमुद्रा, पाँच आवृत्ति का एक स्वर्णमुद्रा और तीन आवृत्ति का आधो स्वर्णमुद्रा दक्षिणा देनो चाहिए। स्वर्णमुद्रा का मूल्य शास्त्रकारों ने कम से कम २०) रुपये रखे हैं।

पाठ एवं जप दो प्रकारके होते हैं। निष्काम और सकाम। निष्काम पाठ में उतनी विधि को आवश्यकता नहीं है—सोते, उठते, चलते फिरते पाठ कर सकते हैं। लेकिन सकाम पाठ में ऐसी बात नहीं है। सकाम पाठ में पाठ-विधि का पालन करना परम आवश्यक है। निष्काम कर्म की विशेषता कर्मकाण्ड में न हो-कर उपासना काण्ड में होती है। सकाम कर्म की गिनती कर्मकांड में ही होती है अतः सकाम पाठ या जप करनेवाले को सविधि पुरश्चरण करना समुचित है।

साङ्ग पाठ नहीं करने से पाठ का फल नहीं मिलता है, उलटे ही उसका अनिष्ट होना प्रारम्भ हो जाता है। लिखा भी है—

अङ्गहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः।
अङ्गषट्कविहीना तु तथा सप्तशती स्तुतिः॥
तस्मादेतत् पठित्वैव जपेत् सप्तशती पराम्।
अन्यथा शापमाप्नोति हानिं चैव पदे पदे॥
अङ्गषट्कं विजानीयात् कवचार्गलकीलकैः।
रहस्यत्रितयेनैव सहितैर्मनुजेश्वर॥

चिदम्बरसंहिता में सप्तशती-पाठक्रम इस प्रकार है—

अर्गलं कीलकं चादौ पठित्वा कवचं पठेत्।
जपेत् सप्तशतीं पश्चात् सिद्धकामेन मंत्रिणा॥
रहस्यत्रयमप्यन्ते पठितव्यं प्रयत्नतः।
मध्ये नवार्णपुटितं कृत्वा स्तोत्रं सदाभ्यसेत्॥

सप्तशतीपाठक्रम में ९ भेद बताये गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) महाविद्या—प्रथम, द्वितीय और तृतीय चरित के क्रम से।
(२) महातंत्री—प्रथम, तृतीय और द्वितीय चरित के क्रम से।
(३) चण्डी—प्रथम, द्वितीय और तृयीय चरित के क्रम से।
(४) सप्तशती—द्वितीय, प्रथम और तृतीय चरित के क्रम से।
(५) मृतसंजीवनी—तृतीय, प्रथम और द्वितीय चरित के क्रम से।
(६) महाचंडी—तृतीय, द्वितीय और प्रथम चरित के क्रम से।
(७) रूपदीपिका—'रूपं देहि०' इस श्लोकार्ध और नवार्ण मन्त्र से प्रत्येक श्लोक को सम्पुटित करके।
(८) चतुःषष्टि योगिनी—चौसठ योगिनियों के योग से।
(९) परा—पराबीज के योग से।

सम्पुटित पाठ—यह पाठ सप्तशती के प्रत्येक मंत्र के आदि और अन्त में सप्तशती का कोई मंत्र या बीज मंत्र जोड़कर किया जाता है।

वृद्धिपाठ—अर्थात् प्रथम दिन एक पाठ, दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन, चौथे दिन चार, पाँचवें दिन पांच, छठे दिन छः, सातवें दिन सात, आठवें दिन आठ और नवें दिन आठ पाठ करना, वृद्धिपाठ कहा जाता है। इसके सिवा शतचण्डी तथा सहस्र चण्डी का भी विधान है।

सामान्य शतचण्डी—सामान्य रूप से सौ पाठ करने पर शतचण्डी पूरी हो जाती है। यदि तीन ब्राह्मण एकत्र होकर एक-एक पाठ अथवा एकही आदमी तीन-तीन पाठ प्रत्येक दिन करे तो ३३ दिनों में शतचण्डी पूरी हो जाती है। तथा अन्तिम दिन मे किसी एक को चार पाठ करना होगा। समाप्ति के दिन दशांश का हवन, तर्पण तथा मार्जन और ब्राह्मण-भोजन कराना आवश्यक है। कदाचित् किसी कारण यदि हवनादि न कर सके तो दशांश के दूने पाठ अधिक करने से प्रयोग की पूर्ति हो जाती है।

विशेष शतचण्डी—इसमें सच्चरित्र, सत्कुलीन, सत्यवक्ता, शास्त्रज्ञाता, अक्रोधी, धैर्यधारी और जितेन्द्रिय दश ब्राह्मणों का आदर पूर्वक आवाहन करके वस्त्रादि के ध्वजा, पताका, तोरण, बन्दनवार और वितानादि से विभूषित रङ्ग-विरङ्ग लता-पत्र एवं फल-पुष्पादि से सुशोभित और जलपूर्ण कलशादि से संयुक्त षोडश-हस्तात्मक 'मण्डप' के मध्य में काष्ठमयी अथवा वालुकामयी बेदी के ऊपर यथाविधि स्वर्ण, रजत या मृत्तिका-निर्मित मूर्ति की स्थापना करे। उसके समीप के उभय भाग में मातृका और नवग्रहादि का स्थापन करके सर्वप्रथम गणपति-पूजन, मातृका-पूजन, नान्दीश्राद्ध, पुण्याहवाचन, आचार्यादि का वरण, कलश-पूजन, दुर्गादेवी का षोडशोपचार-पूजन और अल्पवयस्क (दो से आठ वर्ष तक की) सत्कुलीन रूपवती दश कन्याओं का पूजन करके आमन्त्रित ब्राह्मणों से प्रयोगिक पाठ प्रारम्भ करने की प्रार्थना करे।

इस कार्य के लिए समुपस्थित दशो ब्राह्मण प्रथम दिन प्रातःकालीन कृत्य करके शतचण्डी का पूर्वाङ्ग (गणेश-पूजनादि) करें। आवाहित देवादि का पूजन हो जाने के बाद अपने-अपने आसनों पर यथास्थान पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर यजमानकृत पूर्व संकल्प की अर्थ-सिद्धि का संकल्प करके अपनी-अपनी पुस्तकों का देवी के रूप में पंचोपचार पूजन करके यथाविधि

सप्तशती का पाठ करें। पाठ समाप्त होने के बाद देवी की क्षमा-प्रार्थना कर राजभोग का नैवेद्य अर्पण करें तथा उक्त दशों कन्याओं को भोजन करावें। सप्तशती-पाठी को एक ही समय शुद्ध सात्विक भोजन करना चाहिए। सभी ब्राह्मण रात्रि में भूमि पर शयन कर ब्रह्मचर्य से रहे, हृदय में भगवती का ध्यान करें और आत्म-कल्याण की कामना करें। इस प्रकार यदि शतचण्डी पाठ किया जाय तो शास्त्रोक्त फल मिलता है। इस तरह प्रत्येक ब्राह्मण प्रथम दिन दश पाठ, दूसरे दिन दो-दो पाठ करने में बीस पाठ, तीसरे दिन तीन-तीन पाठ करने से तीस पाठ और चौथे दिन चार चार पाठ करने पर चार दिन में सौ पाठ होते हैं। इस प्रकार करने में थोड़े ही दिनों में शतचण्डी पाठ पूरा हो जाता है। यद्यपि इस तरह पाठ करने में उत्तरोत्तर अधिक श्रम होता है लेकिन कार्य की सिद्धि बहुत शीघ्र हो जाती है।

इस प्रकार पाठ करने में यदि अधिक श्रम हो तथा समाप्त करने में असामर्थ्य हो तो प्रतिदिन दस ब्राह्मण एक-एक पाठ करके दस दिन में या बीस ब्राह्मण पाँच दिन में शतचण्डी समाप्त कर सकते हैं। किन्तु ध्यान रहे कि अन्त में हवन तर्पण -मार्जन और ब्राह्मण भोजन आदि कराना परम आवश्यक है। इसके बिना पाठ अंगभंग हो जाता है। शतचण्डी में समाप्ति के दिन कम से कम सौ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इसमें मण्डप सोलह हाथ का तथा हवनकुण्ड शास्त्रोक्त होना चाहिए।

सहस्र चण्डी—महान् अनिष्टकारी आपत्ति को हटाने, शक्तिशाली अजेय शत्रु को पराजय करने, देश के ऊपर आये हुए महान् संकटों को दूर करने या गौरवपूर्ण पद प्राप्त करने के लिए 'सहस्रचण्डी', लक्षचण्डी' या 'अयुतचण्डी' का पाठ करावे। इस प्रकार यदि सविधि पाठ किया जाय तो ऐसा कोई काम नहीं है जो चण्डीपाठ से पूरा न हो सके।

—o—

अथ दुर्गापाठसंकल्पः

विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः ॐ नमः परमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय अद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गतब्रह्मावर्तैकदेशे अमुकदेशे वर्तमाने अमुकनामसंवत्सरे अमुकायने महामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्माऽहं मम (अमुकगोत्रोत्पन्नस्य अमुकनाम्नो यजमानस्य वा) सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थमायुरारोग्यैश्वर्यादिवृद्ध्यर्थं सर्वदा हर्षविजयकामनासिद्ध्यर्थं श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-देवताप्रीत्यर्थं सर्वापन्निवारणार्थं (कवचार्गलाकीलकादिसहितम्) मार्कण्डेयपुराणोक्तं मार्कण्डेय उवाचेतिपूर्वकं सावर्णिस्सूर्यतनय इत्यारभ्य सावर्णिर्भविता मनुः ओमित्यन्तं रात्रिसूक्तादिदेवीसूक्तान्तमादावन्तेऽष्टोत्तरशतनवार्णमन्त्रसम्पुटितम् (अमुकमन्त्रेण सम्पुटितं वा) सप्तशतीस्तवपाठमन्ते रहस्यत्रयपठनञ्च करिष्ये। इति संकल्प्य—

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ।।

इति मंत्रेण पुस्तकपूजनम् ।

अथ शापोद्धारमंत्रः । ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिके देवि शापानुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा ७ वारं जपेत् । ततः उत्कीलनमंत्रः—ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं सप्तशति चण्डिके उत्कीलनं कुरु कुरु स्वाहा २१ वारं जपेत् ।

इति दुर्गापाठसंकल्पः

श्री १०८ महिषमर्दिनी



अथ षोडशोपचारदुर्गापूजनविधिः

तत्र संकल्पः—

ॐ अद्येत्यादि ममेह जन्मनि सर्वापच्छान्तिपूर्वकं दीर्घायुर्विपुलपुत्रपौत्राद्यविच्छिन्नसन्ततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयप्रमुखचतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थं श्रीदुर्गापूजनमहं करिष्ये ।

ध्यानम्—

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणां तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

आवाहनम्—

आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदिनि ।
पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥

आसनम्—

अनेकरत्नसंयुक्तं नानामणिगणान्वितम् ।
कार्तस्वरमयं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम् ॥

पाद्यम्—

गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम् ।
तोयमेतत् सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्घ्यम्—

गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तमर्घ्यं सम्पादितं मया ।
गृहाण त्वं महादेवि प्रसन्ना भव सर्वदा ॥

आचमनम्—

आचम्यतां त्वया देवि भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परांगतिम् ॥

स्नानम् —

जाह्नवीतोयमानीतं शुभं कर्पूरसंयुतम् ।
स्नापयामि सुरश्रेष्ठे त्वां पुत्रादिफलप्रदाम् ॥

पञ्चामृतस्नानम्—

पयो दधि घृतं क्षौद्रं सितया च समन्वितम् ।
पञ्चामृतमनेनाद्य कुरु स्नानं महेश्वरि ॥

शुद्धोदकस्नानम्—

परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये ।
सांगोपांगमिदं स्नानं कल्पयामि सुरेश्वरि ॥

वस्त्रम्—

वस्त्रञ्च सोमदैवत्यं लज्जायास्तु निवारणम् ।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरो ॥

उपवस्त्रम्—

यामाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा ।
तस्यै ते परमेशायै कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥

मधुपर्कः—

दधिमध्वाज्यसंयुक्तं पात्रयुग्मसमन्वितम् ।
मधुपर्कं गृहाण त्वं वरदा भव शोभने ॥

गन्धम्—

परमानन्दसौभाग्यपरिपूर्णदिगन्तरे ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि ॥

कुंकुमम्—

कुंकुमं कान्तिदं दिव्यं कामिनीकामसम्भवम् ।
कुंकुमेनार्चिते देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥

आभूषणम्—

हारकङ्कणकेयूरमेखलाकुण्डलादिकम् ।
रत्नाढ्यं कुण्डलोपेतं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥

सिन्दूरम्—

सिन्दूरमरुणाभासं जपाकुसुमसन्निभम् ।
पूजितासि मया देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥

कज्जलम्—

चक्षुर्भ्यां कज्जलं रम्यं सुभगे शान्तिकारिके ।
कर्पूरज्योतिरुत्पन्नं गृहाण परमेश्वरि ॥

सौभाग्यद्रव्यम्—

सौभाग्यसूत्रं वरदे सुवर्णमणिसंयुते ।
कण्ठे बध्नामि देवेशि सौभाग्यं देहि मे सदा ॥

सुगन्धिततैलम्—

चन्दनागरुकर्पूरकुंकुमं रोचनं तथा ।
कस्तूर्यादिसुगन्धांश्च सर्वाङ्गेषु विलेपनम् ॥

परिमलद्रव्यम्—

हरिद्रारञ्जिते देवि सुखसौभाग्यदायिनि ।
तस्मात् त्वां पूजयाम्यत्र सुखशान्ति प्रयच्छ मे ॥

अक्षताः—

रञ्जिताः कुंकुमौघेन अक्षताश्चातिशोभनाः ।
मामेषां देवि दानेन प्रसन्ना भव शोभने ॥

पुष्पम्—

मन्दारपारिजातादि पाटलीकेतकानि च ।
जातीचम्पकपुष्पाणि गुहाणेमानि शोभने ॥

पुष्पमाला—

सुरभिपुष्पनिचयैः ग्रथितां शुभमालिकाम् ।
ददामि तव शोभार्थं गृहाण परमेश्वरि ॥

बिल्वपत्रम्—

अमृतोद्भवः श्रीवृक्षो महादेवि प्रियः सदा ।
बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥

धूपः—

दशांगं गुग्गुलं धूपं चन्दनागरुसंयुतम् ।
समर्पितं मया भक्त्या महादेवि प्रगृह्यताम् ॥

दीपः—

घृतवर्तिसमायुक्तं महातेजो महोज्ज्वलम् ।
दीपं दास्यमि देवेशि सुप्रीता भव सर्वदा ॥

नैवेद्यम—

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
नैवेद्यं गृह्यतां देवि भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ॥

ऋतुफलम्—

द्राक्षाखर्जूरकदलीपनसाम्रकपित्थकम् ।
नारिकेलेक्षुजम्ब्वादि फलानि प्रतिगृह्यताम् ॥

आचमनम्—

कामारिवल्लभे देवि कुर्वाचमनमम्बिके ।
निरन्तरमहं वन्दे चरणौ तव चण्डिके ॥

अखण्ड-ऋतुफलम्—

नारिकेलञ्च नारंगं कलिंगं मञ्जिरं तथा ।
उर्वारुकं च देवेशि फलान्येतानि गृह्यताम् ।।

ताम्बूलपूगीफलानि—

एलालवङ्गकस्तूरीकर्पूरैः पुष्पवासिताम् ।
वीटिकां मुखवासार्थमर्पयामि सुरेश्वरि ।।

दक्षिणा—

पूजाफलसमृद्धयर्थं तवाग्रे स्वर्णमीश्वरि ।
स्थापितं तेन मे प्रीता पूर्णान् कुरु मनोरथान् ।।

प्रार्थना—

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोस्तु ते ।।

आरतिकम्—

नीराजनं सुमांगल्यं कर्पूरेण समन्वितम् ।
चन्द्रार्कवह्निसदृशं महादेवि नमोस्तु ते ।।

पुष्पाञ्जलिः—

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्रयदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ।।

प्रदक्षिणा—

नमस्ते देवि देवेशि नमस्ते ईप्सितप्रदे ।
नमस्ते जगतां धात्रि नमस्ते भक्तवत्सले ।।

साष्टांगप्रणामः—

नमः सर्वहितार्थायै जगदाधारहेतवे ।
साष्टांगोऽयं प्रणामस्तु प्रयत्नेन मया कृतः ॥

प्रार्थना—

पुत्रान् देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि मंगले ।
अन्यांश्च सर्वकामांश्च देहि देवि नमोस्तु ते ॥

विसर्जनम्—

इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्योपपादिताम् ।
रक्षार्थं त्वां समादाय व्रज स्थानमनुत्तमम् ॥

---०---

अथ सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच—

देवि त्वं भक्तिसुलभे सर्वकार्यविधायिनि ।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः ॥

देव्युवाच—

शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम् ।
मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते ॥

ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकीस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः ।

ॐ

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥ १ ॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥ २ ॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ ६ ॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ ७ ॥

इति सप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा

श्री दुर्गा देवी की आरती

जय जय जय महिषासुर-मर्दिनि,
जय जय जय मधुकैटभ-घातिनि ॥ १ ॥

घातिनि जय चण्ड-मुण्ड विनाशिनि, तारिणि जगत उद्धारिणि ।
रक्तबीजकुलच्छेद-विधायिनि, जय परमानन्द-भवानि ॥२॥

जय परमानन्द-भगवति जय जय, शुम्भसंहारिणि जय जय ।
जय धुमललोचन-ध्वंसकारिणि, जय विन्ध्यपर्वतवासिनि ॥३॥

जय विन्ध्यपर्वतवासिनि जय जय, निशुम्भमान विच्छेदिनि ।
जय प्रचण्ड-दुर्गे जयति दुर्गे, भद्रकालि भद्ररूपिणि ॥४॥

भद्रकालि भद्ररुपिणि जय जय, दिव्यति दैव-प्रदायिनि ।
विद्या बुद्धि विवेक करुणाकर, देहि वरदे वरदायिनि ॥५॥

मधु और कैटभ मारण कारण, धारण नींद जगायी तुम ।
चतुरानन तुम त्रास बचायी, जय ईश्वरदेवि अजाणि ॥६॥

अथ दुर्गाशतनामस्तोत्रम्

दुर्गायाः शतनामानि शृणु त्वं भवगेहिनी ।
दुर्गा भवानी देवेशी विश्वनाथप्रिया शिवा ॥ १ ॥
घोरद्रंष्टा करालास्या मुण्डमालाविभूषणा ।
रुद्राणी तारिणी तारा माहेशी भववल्लभा ॥ २ ॥
नारायणी जगद्धात्री महादेवप्रिया जया ।
विजया च जयाराध्या शर्वाणी हरवल्लभा ॥ ३ ॥
अजिता चाणिमा देवी लघिमा गरिमा तथा ।
महेशशक्तिर्विश्वेशी गौरी पर्वतनन्दिनी ॥ ४ ॥

भगवान् शंकर ने पार्वती से कहा—संसाररूपी घर में निवास करने वाली हे पार्वती ! तुम दुर्गा के सौ नामों को सुनोः—

१. दुर्गा, २. भवानी, ३. देवेशी, ४.विश्वनाथप्रिया, ५. शिवा, ६. घोरदंष्ट्रा (भयंकर दाँतोंवाली), ७. करालास्या (भयकर मुखवाली). ८. मुण्डमालाविभूषण (मुण्डों की माला से विभूषित), ९. रुद्राणी (रुद्र की शक्ति), १०. तारिणी, ११. तारा, १२. माहेशी, (महेश्वर की आदिशक्ति), १३ भववल्लभा (शंकर की पत्नी), १४. नारायणी (नार नाम जल का है, उसमें निवास करने के कारण भगवान् विष्णु का नाम नारायण पड़ा। उस नारायण की शक्ति नारायणी कहलाती हैं।), १५. जगद्धात्री (संसार की सारी चीजों को धारण करनेवाली) १६. महादेवप्रिया, १७. 'जया (जय को देनेवाली), १८. विजया (विजय को देनेवाली), १९. जयाराध्या, २०. शर्वाणी, २१. हरवल्लभा, २२. अजिता (नहीं जीती जानेवाली), २३. अणिमा (अणुभाव से रहनेवाली), २४. देवी, २५. लघिमा, २६. गरिमा (गुरु भाव से रहने वाली), २७. महेशशक्ति, २८. विश्वेशी, २९. गौरी (गौर अङ्गवाली), ३०. पर्वतनन्दिनी (हिमालय

नित्या च निष्कलङ्का च निरीहा नित्यनूतना ।
रक्ता रक्तमुखी वाणी वसुयुक्ता वसुप्रदा ॥ ५ ॥
रामप्रिया रामरता रघुनाथवरप्रदा ।
राज्येश्वरी राज्यरता कृष्णा कृष्णवरप्रदा ॥ ६ ॥
यशोदा राधिका चण्डी द्रौपदी रुक्मिणी तथा ।
गुहप्रिया गुहरता गुहवंशविलासिनी ॥ ७ ॥
गणेशजननी माता विश्वरूपा च जाह्नवी ।
गङ्गा काली च काशी च भैरवी भुवनेश्वरी ॥ ८ ॥
निर्मला च सुगन्धा च देवकी देवपूजिता ।
दक्षजा दक्षिणा दक्षा दक्षयज्ञविनाशिनी ॥ ९ ॥
सुशीला सुन्दरी सौम्या मातङ्गी कमला कला ।

की कन्या), ३१. नित्या (अविनाशिनी), ३२. निष्कलङ्का (कलङ्क से रहित), ३३. निरीहा (इच्छाओं से रहित), ३४. नित्यनूतना, ३५. रक्ता (रक्त रूपवाली), ३६. रक्तमुखी, ३७. वाणी (सरस्वती), ३८ वसुयुक्ता (धनों से युक्त), ३९. वसुप्रदा (धन को देने वाली), ४०. रामप्रिया, ४१. रामरता, ४२. रघुनाथवरप्रदा (राम को वरदान देनेवाली), ४३. राजेश्वरी (राज्य की शासिका), ४४. राज्यरता, ४५. कृष्णा (काले रूपवाली), ४६. कृष्णवरप्रदा (कृष्ण को वरदान देनेवाली), ४७. यशोदा, ४८. राधिका, ४९. चण्डी (चण्ड नामक राक्षस को मारने वाली), ५०. द्रौपदी, ५१. रुक्मिणी ५२. गुहप्रिया, ५३. गुहरता, ५४. गुहवंशविलासिनी, ५५. गणेशजननी, ५६. माता, ५७. विश्वरूपा, ५८. जाह्नवी (जह्नु ऋषि की लड़की), ५९. गंगा, ६०. काली, ६१. काशी, ६२. भैरवी, ६३. भुवनेश्वरी, ६४. निर्मला, ६५. सुगन्धा, ६६. देवकी, ६७. देवपूजिता, ६८. दक्षजा, ६९. दक्षिणा, ७०. दक्षा, ७१. दक्षयज्ञविनाशिनी, ७२. सुशीला, ७३. सुन्दरी, ७४. सौम्या, ७५. मातङ्गी, ७६. कमला,

निशुम्भनाशिनी शुम्भनाशिनी चण्डनाशिनी ॥१०॥
धूम्रलोचनसंहर्त्री महिषासुरमर्दिनी ।
उमा गौरी कराला च कामिनी विश्वमोहिनी ॥११॥
इत्येवं शतनामानि कथितानि वरानने ।
नामस्मरणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥१२॥
यः पतेत् प्रातरुत्थाय स्मृत्वा दुर्गापदद्वयम् ।
मुच्यते जन्मबन्धेभ्यो नात्र कार्या विचारणा ॥१३॥
संध्याकाले दिवाभागे निशायां वा निशामुखे ।
पठित्वा शतनामानि मन्त्रसिद्धि लभेद् ध्रुवम् ॥१४॥

---

७७. कला, ७८. निशुम्भनाशिनी, ७९. शुम्भनाशिनी, ८०. चण्डनाशिनी, ८१. धूम्रलोचनसंहर्त्री, ८२. महिषासुरमर्दिनी, ८३. उमा, ८४. गौरी (महादेव की शक्ति), ८५. कराला, ८६. कामिनी, ८७. विश्वमोहिनी, (इसके बाद "कराला च" यहाँ के 'अनुक्तसमुच्चयार्थक च' शब्द के द्वारा १३ नामों का अनुसरण करना चाहिये, जिसका निर्देश निम्नलिखित है—

८८. क्षमा, ८९. त्रिनेत्रा, ९०. शूलधारिणी, ९१. पिनाकधारिणी, ९२. बुद्धि, ९३. लक्ष्मी, ९४. मधुकैटभनाशिनी, ९५. श्रद्धा, ९६ कान्ति, ९७. मोहरात्रि, ९८. भद्रकाली, ९९. विष्णुमाया और १००. निद्रा ।

इस प्रकार सौ नाम कहे गये हैं । हे श्रेष्ठमुखवाली पार्वती ! जिनके नामों के स्मरणमात्र से ही मनुष्य जीवन मुक्त हो जाते हैं । जो मानव प्रात:काल उठकर दो पद वाले 'दुर्-गा' स्मरण करते हुए शतनाम का पाठ करते हैं, वे जन्मरूपी बन्धन से निःसन्देह छुटकारा पा जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए । सन्ध्याकाल अथवा दिन के किसी समय या रात में अथवा रात के प्रथम प्रहर में इन शतनामों के पाठ करने वाले मानव मंत्रसिद्धि को प्राप्त करते हैं ।

अज्ञात्वा स्तवराजं च दशविद्या भवेद् यदि ।
तथापि नैव सिद्धिः स्यात् सत्यं सत्यं महेश्वरि ॥१५॥

इति दुर्गाशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ।

यदि मानव दश विद्याओं का भी ज्ञाता क्यों न हो, किन्तु इस स्तवराज को न जानता हो तो हे पार्वती ! वह किसी भी तरह सिद्धि को प्राप्त नहीं करता है । इसमें जरा भी सन्देह नहीं है—यह ध्रुव सत्य है ॥ १–१५ ॥

दुर्गाशतनामस्तोत्र समाप्त

—:*:*:—

अथ दुर्गाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने।
यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती ॥ १ ॥
ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी।
आर्या दुर्गा जया चाद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥ २ ॥
पिनाकधारिणी चित्रा चण्डघण्टा महातपा।
मनोबुद्धिरहंकारा चित्तरूपा चिता चितिः ॥ ३ ॥
सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी।
अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याऽभव्या सदागतिः ॥ ४ ॥
शाम्भवी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा।
सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी ॥ ५ ॥

श्री शङ्कर जी ने पार्वती से कहा—हे कमल के समान नेत्रवाली ! उस अष्टोत्तरशतनाम को मैं कहता हूँ, जिसके पाठ या श्रवणमात्र से ही साध्वी दुर्गा-देवी प्रसन्न हो जाती हैं। इसे तुम सुनो ॥ १ ॥

१. सती, २. साध्वी, ३. भवप्रीता, ४. भवानी, ५. भवमोचिनी (संसार-रूपी बन्धन से मुक्त करनेवाली), ६. आर्या, ७. दुर्गा, ८ जया ९. आद्या, १०. त्रिनेत्रा, ११. शूलधारिणी, १२. पिनाकधारिणी, १३. चित्रा, १४. चण्ड-घण्टा, १५, महातपाः (घोर तपस्या करनेवाली), १६. मनः (मननशक्ति), १७. बुद्धिः (बोधशक्ति), १८. अहंकार (अहंभाव का आश्रय देनेवाली), १९. चित्त-रूपा, २०. चिता, २१. चितिः (चेतना), २२. सर्वमंत्रमयी, २३. सत्ता, २४. सत्यानन्दरूपिणी, २५. अनन्ता (जिसका अन्त न हो), २६. भाविनी, २७. भाव्या, २८. भव्या, २९. अभव्या, ३०. सदागतिः, ३१. शाम्भवी, ३२. देव-माता, ३३. चिन्ता, ३४. रत्नप्रिया, ३५. सर्वविद्या, ३६. दक्षकन्या, ३७. दक्ष-

अपर्णानेकवर्णा च पाटला पाटलावती ।
पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी ॥ ६ ॥
अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी सुरसुन्दरी ।
वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता ॥ ७ ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा ।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः ॥ ८ ॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च बुद्धिदा ।
बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना ॥ ९ ॥
निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी ।
मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी ॥ १० ॥
सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी ।
सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा ॥ ११ ॥
अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्य धारिणी ।
कुमारी चैककन्या च कैशोरी युवती यतिः ॥ १२ ॥

यज्ञविनाशिनी, ३८. अपर्णा, ३९, अनेकवर्णा, ४०. पाटला (लाल रंगवाली), ४१. पाटलावती, ४२. पट्टाम्बरपरीधाना, ४३. कलमञ्जीररञ्जिनी, ४४. अमेयविक्रमा (बहुत पराक्रमवाली), ४५. क्रूरा (असुरों के प्रति कठोर), ४६, सुन्दरी, ४७. सुरसुन्दरी, ४८. नवदुर्गा, ४९. मातङ्गी, ५०. मतङ्गमुनिपूजिता, ५१. ब्राह्मी, ५२. माहेश्वरी, ५३. ऐन्द्री, ५४. कौमारी, ५५. वैष्णवी, ५६. चामुण्डा, ५७. वाराही, ५८. लक्ष्मी, ५९. पुरुषाकृति, ६०. विमला, ६१. उत्कर्षिणी, ६२. ज्ञाना, ६३. क्रिया, ६४. नित्या, ६५. बुद्धिदा, ६६. बहुला, ६७. बहुलप्रेमा, ६८. सर्ववाहनवाहना, ६९. निशुम्भशुम्भहननी, ७०. महिषासुरमर्दिनी, ७१, मधुकैटभहन्त्री, ७२. चण्डमुण्डविनाशिनी, ७३. सर्वासुरविनाशा, ७४. सर्वदानवघातिनी, ७५. सर्वशास्त्रमयी, ७६. सत्या, ७७. सर्वास्त्रधारिणी, ७८. अनेकशस्त्रहस्ता, ७९. अनेकास्त्रधारिणी, ८०. कुमारी, ८१. एककन्या,

अप्रौढा चैव प्रौडा च वृद्धमाता बलप्रदा ।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला ॥ १३ ॥
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी ।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी ॥ १४ ॥
शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी ।
कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी ॥ १५ ॥
य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम् ।
नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति ॥ १६ ॥
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च ।
चतुर्वर्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥ १७ ॥
कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम् ।
पूजयेत् परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टकम् ॥ १८ ॥

---

८२. कैशोरी, ८३. युवती, ८४. यति, ८५. अप्रौढा, ८६. प्रौढा, ८७. वृद्धमाता, ८८. बलप्रदा, ८९. महोदरी, ९०. मुक्तकेशी, ९१. घोररूपा, ९२. महाबला, ९३. अग्निज्वाला, ९४. रौद्रमुखी, ९५. कालरात्रि, ९६. तपस्विनी, ९७. नारायणी, ९८. भद्रकाली, ९९. विष्णुमाया, १००. जलोदरी, १०१. शिवदूती, १०२. कराली, १०३, अनन्ता, १०४. परमेश्वरी, १०५. कात्यायनी, १०६. सावित्री, १०७. प्रत्यक्षा, १०८. ब्रह्मवादिनी ॥ २–१५ ॥

हे पार्वती ! जो इस दुर्गाष्टोत्तरशतनाम का प्रत्येक दिन पाठ करता है, उसके लिये तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं है ॥ १६ ॥

धन, धान्य, पुत्र, स्त्री, घोड़ा, हाथी तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ और अन्त में वह शाश्वती मुक्ति को भी प्राप्त करता है ॥ १७ ॥

कुमारी की पूजा करके देवी सुरेश्वरी का ध्यान एवं परम भक्ति के साथ उनकी पूजा करनी चाहिये और फिर अष्टोत्तरशतनाम का पाठ प्रारम्भ करे ॥ १८ ॥

तस्य सिद्धिर्भवेद् देवी सर्वैः सुरवरैरपि ।
राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात् ॥१९॥
गोरोचनालक्तककुंकुमेन
सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण ।
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो
भवेत् सदा धारयते पुरारिः ॥२०॥
भौमावास्यानिशामध्ये चन्द्रे शतभिषां गते ।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् संपदां पदम् ॥२१॥

इति श्रीविश्वसारतन्त्रे दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम्

हे देवी ! इस प्रकार जो करता है, उसके लिये सभी देवताओं के द्वारा भी सिद्धि मिली है। राजा उसके दास बन जाते हैं और अन्त में वह राज्यलक्ष्मी को भी प्राप्त कर लेता है ॥ १९ ॥

गोरोचन, लाक्षा, कुङ्कुम, सिन्दूर, कपूर, घी या दूध, चीनी और मधु—इन सब चीजों को एकत्र करके इनसे विधिपूर्वक यन्त्र लिखकर जो विधिज्ञ पुरुष सर्वदा इस यन्त्र को धारण करता है उसे अन्त में शिवलोक की प्राप्ति होती है ॥

भौमवती अमावश्या की आधी रात में जब चन्द्रमा शतभिषा नक्षत्र पर हों, उस समय इस स्तोत्र को लिखकर पाठ करने से मनुष्य सम्पत्तिशाली बन जाता है ॥ २१ ॥

दुर्गा का अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र समाप्त

अथ देव्याः कवचम्

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, चामुण्डा देवता, अङ्गन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः।

ॐ नमश्चण्डिकायै।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम्।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १॥

ब्रह्मोवाच

अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम्।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने॥ २॥

(कवच-अङ्गरक्षक। जिसको पहनकर शत्रु के चलाये हुए अस्त्रादि से आत्म-रक्षा की जाती है, उसे कवच कहते हैं। समर या किसी अन्य क्षेत्र में प्रवेश करने के लिये, इस कवच से आवृत्त होकर अग्रसर होना आवश्यक है; नहीं तो जय पाने की आशा दुराशामात्र है। इसी से कहा गया है कि—"जपेत् सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा। निर्विघ्नेन तु भवेत् सिद्धिश्चण्डीजपसमुद्भवा॥" सप्तशती चण्डी पाठ के पूर्व यह कवच पाठ किया जाता है। जो इस कवच द्वारा आवृत हो सकते हैं; वे ही निर्विघ्नतापूर्वक चण्डी-जप से सफलता वा सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।)

श्री चण्डिका देवी को नमस्कार है। महर्षि मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ब्रह्मन् ? जो इस संसार में अत्यन्त गोपनीय तथा मनुष्यों की सब प्रकार से रक्षा करने वाला हो और जो आपने अब तक किसी दूसरे के सामने प्रकट नहीं किया हो, ऐसा कोई साधन मुझे बताइये॥ १॥

ब्रह्मा जी ने कहा—हे महामुने, अत्यन्त गुप्त और सब प्राणियों का उपकारक देवी का पवित्र कवच है, वह मैं आप से बतलाता हूँ, उसे श्रवण कीजिये॥ २॥

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥ ३ ॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥ ४ ॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः ।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥ ५ ॥
अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे ।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्ताः शरणं गताः ॥ ६ ॥
न तेषां जायते किंचिदशुभं रणसंकटे ।
नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ॥ ७ ॥
यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते ।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ॥ ८ ॥
प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना ।

प्रथम शैलपुत्री, दूसरी ब्रह्मचारिणी, तीसरी चन्द्रघण्टा, चौथी कूष्माण्डा, पाँचवीं स्कन्दमाता, छठीं कात्यायनी, सातवीं कालरात्री, आठवीं महागौरी और नवीं सिद्धिदात्री हैं । ये नाम महात्मा ब्रह्मा ने प्रतिपादन किया ॥ ३–५ ॥

आग में जलता हुआ, युद्ध में शत्रुओं से घिरा हुआ अथवा अत्यन्त दुःख में पड़कर भयभीत होकर जो मनुष्य भगवती दुर्गा की शरण में आता है, उसका कुछ भी अशुभ नहीं होता । युद्ध के समय संकट में भी उसके ऊपर कोई आपत्ति नहीं दिखाई पड़ती । शोक, दुःख तथा भय भी उसे प्राप्त नहीं करते ॥ ६–७ ॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देवी का स्मरण करता है, निश्चय ही उसकी अभिवृद्धि होती है । हे देवेश्वरि ! जो तुम्हारा चिन्तन करता है, उसकी रक्षा तुम निश्चय ही करती हो, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है । चामुण्डा प्रेत पर बैठी हैं । वाराही भैंसे

ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥ ९ ॥
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ।
लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥ १० ॥
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना ।
ब्राह्मी हंससमारूडा सर्वाभरणभूषिता ॥ ११ ॥
इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः ।
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥ १२ ॥
दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः ।
शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ॥ १३ ॥
खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ॥ १४ ॥
दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च ।
धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ॥ १५ ॥

पर आसीन हैं। ऐन्द्री हाथी तथा वैष्णवी देवी गरुड पर हैं। माहेश्वरी बैल पर आरूढ़ हैं। कौमारी मयूर पर तथा विष्णु भगवान् की प्रिया श्री लक्ष्मी जी जो हाथ में कमल लिये हुई हैं, वह कमल के आसन पर आरूढ़ हैं ॥ ८–१० ॥

श्वेतरूप धारण करके ईश्वरी देवी बैल पर और समस्त आभूषणों से सुशोभित ब्राह्मी हंस पर विराजमान हैं॥ इस प्रकार से समस्त देवियाँ सभी योगशक्तियों से युक्त होकर विविध भाँति के आभूषणों तथा रत्नों से शोभायमान हो रही हैं ॥

ये समस्त देवियाँ क्रोधयुक्त होकर रथ पर बैठी हुई दिखाई देती हैं। शङ्ख, चक्र, गदा शक्ति, हल, मुसल, खेटक, तोमर, परशु, पाश, माला तथा त्रिशूल और उत्तम आयुध, शार्ङ्गधनुष आदि अपने हाथों में धारण करती हैं। ये देवियाँ दैत्यों का शरीर नाश करने, भक्तों को अभयदान देने तथा देवताओं के हित के लिये ही इन शस्त्रों को धारण करती हैं ॥ १३–१५ ॥

नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे ।
महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ॥ १६ ॥
त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि ।
प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ॥ १७ ॥
दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी ।
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ॥ १८ ॥
उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी ।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणी मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥ १९ ॥
एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना ।
जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ॥ २० ॥
अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता ।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥ २१ ॥

महान् रौद्ररूप को धारण करने वाली, अत्यन्त घोर पराक्रम वाली, महान् बल और उत्साह वाली, महान् भय को नाश करने वाली हे देवि ! तुम्हें नमस्कार है । कठिनता से दर्शन देनेवाली, शत्रुओं के भय को बढ़ाने वाली हे देवि ! मेरी रक्षा करो । पूर्व दिशा में ऐन्द्री (इन्द्रशक्ति), अग्निकोण में अग्निशक्ति, दक्षिण दिशा में वाराही और नैर्ऋत्य कोण में खड्ग-धारिणी, पश्चिम दिशा में वारुणी तथा वायुकोण में मृगवाहिनी मेरी रक्षा करें ॥ १७-१८ ॥

उत्तर दिशा में कौमारी, ईशानकोण में शूलधारण करने वाली मेरी रक्षा करें । ब्रह्माणी ऊपर से तथा वैष्णवी नीचे से एवं शव (मुर्दे) पर बैठी हुई चामुण्डा देवी दश दिशाओं से, जया आगे से तथा विजया देवी पीछे से, अजिता बायीं ओर से, अपराजिता दाहिनी ओर से और उमा देवी सिर पर उपस्थित होकर मेरी रक्षा करें ॥ १९-२१ ॥

मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी ।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥ २२ ॥
शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ।
कपोलौ कालिका रक्षेत् कर्णमूले तु शाङ्करी ॥ २३ ॥
नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका ।
अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥ २४ ॥
दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका ।
घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥ २५ ॥
कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला ।
ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥ २६ ॥
नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी ।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥ २७ ॥

मालाधारिणी माथे की और यशस्विनी मेरी भौंहों की रक्षा करें। त्रिनेत्रा भौंहों के मध्यभाग की और यमघण्टा नासिका की रक्षा करें ॥ २२ ॥

आँखों के मध्य में शङ्खिनी और कानों में द्वारवासिनी रक्षा करें। कालिका कपोलों की और शाङ्करी कानों के जड़ की रक्षा करें ॥ नासिका की सुगन्धा और ऊपर के ओठ की चर्चिका देवी रक्षा करें। अमृतकला नीचे के ओठ तथा सरस्वती जिह्वा की रक्षा करें ॥ २३–२४ ॥

कौमारी दाँतों की और चण्डिका कण्ठ प्रदेश की रक्षा करें। चित्रघण्टा गले की घाँटी और तालु की महामाया रक्षा करें ॥ २५ ॥

कामाक्षी ठोढ़ी की और सर्वमंगला वाणी की रक्षा करें। भद्रकाली गर्दन की और धनुर्धरी पीठ की रक्षा करें ॥ नीलग्रीवा कण्ठ के बाहरी भाग में और नलकूबरी कण्ठ की नली की रक्षा करें। दोनों कानों की खड्गिनी और वज्रधारिणी मेरी दोनों भुजाओं की रक्षा करें ॥ २६–२७ ॥

हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च।
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत् कुलेश्वरी ॥ २८ ॥
स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनःशोकविनाशिनी।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥ २९ ॥
नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा।
पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी ॥ ३० ॥
कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी।
जङ्घे महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी ॥ ३१ ॥
गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी।
पादाङ्गुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी ॥ ३२ ॥
नखान् दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी।
रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ॥ ३३ ॥
रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती।

दण्डिनी दोनों हाथों की रक्षा करें अम्बिका अंगुलियों की रक्षा करें। सभी नखों की शूलेश्वरी रक्षा करें। कुक्षि (पेट) में रहकर कुलेश्वरी रक्षा करें ॥२८॥

महादेवी दोनों स्तनों की और शोकविनाशिनी मन की रक्षा करें। ललिता देवी हृदय और शूलधारिणी उदर में रक्षा करें। नाभि में कामिनी, गुह्यस्थान की गुह्येश्वरी, लिङ्ग की पूतना और कामिका तथा गुदा की महिषवाहिनी रक्षा करें॥

कमर में भगवती और घुटनों की विन्ध्यवासिनी रक्षा करें। सभी कामनाओं को देनेवाली महाबला दोनों जंघों की रक्षा करें। नारसिंही दोनों घुट्टियों की तथा तैजसी दोनों चरणों के निचले भाग की रक्षा करें। श्री देवी पैरों की अंगुलियों और तलवासिनी पैरों के तलुओं में रहकर रक्षा करें ॥ ३१–३२ ॥

दंष्ट्राकराली देवी नखों की और ऊर्ध्वकेशिनी देवी केशों की रक्षा करें। कौबेरी रोमछिद्रों में रक्षा करें और वागीश्वरी चमड़े की रक्षा करें। रक्त, मज्जा,

अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥ ३४ ॥
पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा ।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ॥ ३५ ॥
शुक्रं ब्रह्माणी मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा ।
अहंकारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी ॥ ३६ ॥
प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम् ।
वज्रहस्ता च मे रक्षेत् प्राणं कल्याणशोभना ॥ ३७ ॥
रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ॥ ३८ ॥
आयू रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी ।
यशः कीर्ति च लक्ष्मीं च धनं विद्यां च चक्रिणी ॥ ३९ ॥

वसा, मांस, हड्डी और मेद की पार्वती रक्षा करें। आतों की कालरात्रि और पित्त की मुकुटेश्वरी रक्षा करें ॥ ३३-३४ ॥

कमल कोषों में देवीपद्मावती और कफ में चूडामणि रक्षा करें। ज्वालामुखी नखतेजों की रक्षा करें। समस्त सन्धियों में रहकर अभेद्या देवी रक्षा करें। ब्रह्माणी मेरे वीर्य की रक्षा करें। छत्रेश्वरी, छाया और धर्मधारिणी देवी अहङ्कार, मन और बुद्धि की रक्षा करें ॥ ३५-३६ ॥

मेरे प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान की वज्रहस्ता देवी रक्षा करें। कल्याणशोभना देवी मेरे प्राणों की रक्षा करें। रस, रूप, गन्ध, शब्द, और स्पर्श में स्थित होकर योगिनी देवी रक्षा करें। सत्त्व, रज और तमोगुण की नारायणी देवी रक्षा करें ॥ आयु की वाराही रक्षा करें। वैष्णवी धर्म की रक्षा करें तथा चक्रिणी देवी यश, कीर्ति, लक्ष्मी, धन तथा विद्या की रक्षा करें ॥ ३७-३९ ॥

गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके ।
पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ॥ ४० ॥
पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा ।
राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ॥ ४१ ॥
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु ।
तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ॥ ४२ ॥
पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।
कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ॥ ४३ ॥
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥ ४४ ॥

हे इन्द्राणि ! आप मेरे गोत्र की रक्षा करें। चण्डिके ! आप मेरे पशुओं की रक्षा करें। पुत्रों की महालक्ष्मी और पत्नी की भैरवी रक्षा करें। सुपथा मेरे पथ और क्षेमंकरी मार्ग की रक्षा करें। महालक्ष्मी राजा के दरबार में स्थित होकर रक्षा करें और सब दिशाओं में स्थित रहनेवाली विजया देवी मेरी रक्षा करें ४०-४१

कवच में जिस स्थान का उल्लेख नहीं है, अतएव रक्षा से रहित उस स्थानों की पापों से रक्षा करनेवाली विजयशालिनी देवी रक्षा करें। यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहे तो कवच के पाठ बिना एक कदम भी न जाय। कवच के पाठक जहाँ कहीं भी रहता है, वहाँ उसे धन का लाभ होता है और सभी प्रकार की अभिलाषाओं की पूर्ति एवं विजय की प्राप्ति होती है। कवचपाठी मनुष्य जिस कार्य की इच्छा करता है, उसकी पूर्ति उसे अवश्य ही होती है तथा वह पुरुष इस पृथ्वी पर अतुल एवं महान् ऐश्वर्य को पाता है ॥ ४२-४४ ॥

निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः ।
त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान् ॥ ४५ ॥
इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम् ।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ॥ ४६ ॥
दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः ।
जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥ ४७ ॥
नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः ।
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चापि यद्विषम् ॥ ४८ ॥
अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।

कवच से सुरक्षित मनुष्य निर्भय हो जाता है तथा युद्ध में उसकी पराजय नहीं होती एवं तीनों लोकों में वह पूजनीय होता है ॥ ४५ ॥

देवी का यह कवच देवताओं के लिये भी दुर्लभ है । जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक पवित्र हृदय से प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं (प्रातः, मध्याह्न और सायं) में इसका पाठ करता है, उसे दैवीकला अर्थात् देवताओं की सम्पत्ति प्राप्त होती है । और वह तीनों लोकों में विजय प्राप्त करता है और अकाल मृत्यु से रहित होकर एक सौ से भी अधिक वर्षों तक जीवित रहता है ॥ ४५–४७ ॥

तथा लूता (दाद आदि चर्म रोग), चेचक आदि सभी बीमारियाँ नष्ट हो जाती हैं । भाँग, धतूरे तथा कनेर आदि स्थावर विष, साँप और बिच्छू आदि के काटने से चढ़ा हुआ जङ्गम विष तथा अफीम एवं तेल और मधु एवं घी के संयोग से बनने वाला कृत्रिम विष—ये सभी विष दूर हो जाते हैं—उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता । ४८ ॥

इस पृथ्वी पर मारण-मोहन, आदि सभी अभिचारिक प्रयोग हैं तथा जितने मन्त्र, यन्त्र हैं वे सब इस कवच को हृदय में धारण करने वाले मनुष्य को देखकर

भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ॥ ४९ ॥
सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ॥ ५० ॥
ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ॥ ५१ ॥
नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ।
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम् ॥ ५२ ॥
यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ।
जपेत् सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ॥ ५३ ॥
यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ।

नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं, पृथ्वी पर विचरने वाले ग्राम देवता, आकाश गामी सूर्यादिदेव विशेष, जल के योग से उत्पन्न वरुणगण, उपदेशमात्र से सिद्ध होनेवाले शूद्रदेवता, सहज याने वात, पित्त कफ के वैषम्य से उत्पन्न ज्वरादि, कुलज याने कुलदेवता, कण्ठमाला, डाकिनी (चुड़ैल), शाकिनी (डाइन), अन्तरिक्षचर याने आकाश में विचरनेवाले देवविशेष, घोर याने अतिबलवती डाइन स्त्रियाँ, ग्रह, भूत, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, ब्रह्मराक्षस (वेताल), कूष्माण्ड (देवविशेष) तथा भैरव आदि अनिष्ट कारक देवता भी हृदय में कवच धारण करनेवाले मनुष्य को देखते ही निर्वल हो जाते हैं। इस कवच को धारण करने वाले मनुष्यों को राजाओं के द्वारा सम्मान प्राप्त होता है। यह कवच मनुष्य के तेज-वृद्धिकारक एवं उत्तम है ॥ ४९–५२ ॥

इस कवच का पाठ करने से मनुष्य कीर्ति से सुशोभित होता है तथा पृथ्वी पर सुयश के साथ वृद्धि को प्राप्त करता है। जो मनुष्य इस सप्तशती के पाठ करने के समय पहले कवच का पाठ करके बाद में सप्तशती का पाठ करता है,

तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्रपौत्रिकी ॥ ५४ ॥
देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥ ५५ ॥
लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॥ ॐ ॥ ५६ ॥

इति देव्याः कवचं सम्पूर्णम् ।

उसकी जब तक वन, पर्वत और काननों से युक्त यह पृथ्वी स्थिर रहती है तब तक पुत्र, पौत्रादि की वंशपरम्परा बनी रहती है ॥ ५३–५४ ॥

फिर मरने के बाद वह पुरुष भगवती महामाया की कृपा से उस नित्य परम पद को पाता है, जो देवताओं के लिये भी दुर्लभ है । वह दिव्य स्वरूप को पाता है और शिवजी के साथ परमानन्द को प्राप्त करता है ॥ ५५–५६ ॥

अथार्गलास्तोत्रम्

ॐ अस्य श्री अर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मीर्देवता, श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ॥

ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।

दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तुते ॥ १ ॥

जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि ।

जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥

(अर्गल शब्द का अर्थ है हुड़का । जिस प्रकार गृहद्वार का अर्गला बन्द करने से, सहसा कोई घर में प्रवेश नहीं कर सकता, उसी प्रकार देवीमाहात्म्य-पाठ के पूर्व अर्गला स्तोत्र पाठ कर लेने से, बाह्यविषय चित्तक्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकते । बहिर्मुख वा एकान्त विक्षिप्त चित्त व्यक्ति के लिए चण्डीतत्व में प्रवेश दुरुह है; इसी से परम कारुणिक पूर्वाचार्यों ने चण्डीपाठ के पूर्व, चित्त की वृत्तियों को कथञ्चित् मातृमुखी करने के लिए अर्गला पाठ का विधान किया है ।)

चण्डिका देवी को नमस्कार है ।

जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री, स्वाहा और स्वधास्वरूपिणी देवियों को नमस्कार है ॥ १ ॥

हे चामुण्डे देवि ! तुम्हारी जय हो । प्राणिमात्र का कष्ट हरनेवाली देवि, तुम्हारी जय हो । सभी में व्याप्त रहनेवाली देवि, तुम्हारी जय हो । हे काल-रात्रि, तुम्हें नमस्कार है ॥ २ ॥

मधुकैटभविद्राविविधातृवरदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ३ ॥
महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ४ ॥
रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ५ ॥
शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ६ ॥
वन्दिताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ७ ॥

मधु और कैटभ नामक दैत्य को मारने वाली तथा ब्रह्माजी को वर देनेवाली हे देवि ! तुम्हें नमस्कार है । तुम मुझे रूप दो (परमात्मा के साथ एकता) जय (परमात्मस्वरूप का साक्षात्कार) दो, यश (परमात्मतत्त्वज्ञान से सम्पादित मोक्ष) दो तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं को नाश करो । महिषासुर की नाश करनेवाली तथा भक्तों को सुख देनेवाली हे देवि, तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का संहार करो ॥ ४ ॥

रक्तवीज नामक दैत्य को वध करने वाली तथा चण्डमुण्ड का विनाश करनेवाली हे देवि, तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का संहार करो ॥ ५ ॥

शुम्भ, निशुम्भ तथा धूम्राक्ष दैत्यों का मर्दन करनेवाली हे देवि, तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का संहार करो ॥ ६ ॥

वन्दित दोनों चरणोंवाली तथा समस्त भाग्यों को देनेवाली हे देवि, तुम मुझे रूप दो, यश दो और शत्रुओं का संहार करो ॥ ७ ॥

अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ८ ॥
नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ९ ॥
स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १० ॥
चण्डिके सततं ये त्वामर्च्चयन्तीह भक्तितः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ११ ॥
देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १२ ॥
विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १३ ॥

अचिंत्य रूप और चरित्रोंवाली तथा समस्त शत्रुओं का विनाश करनेवाली हे देवि, तुम मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का संहार करो ॥ ८ ॥

दुःख को दूर करनेवाली हे चण्डिके, भक्तिपूर्वक सदैव नतमस्तक रहनेवालों को तुम रूप दो, जय दो, यश दो और उनके शत्रुओं का संहार करो ॥ ९ ॥

रोगों का नाश करनेवाली हे चण्डिके, तुम भक्तिपूर्वक स्तुति करनेवाले भक्तों को रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ १० ॥

हे चण्डिके, जो तुम्हारी भक्तिसहित निरन्तर पूजा करते हैं, उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो और उनके शत्रुओं का नाश करो ॥ ११ ॥

हे देवि, मुझे सौभाग्य और आरोग्य दो, परम सुख दो, रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे शत्रुओं का नाश करो ॥ १२ ॥

मुझ में द्वेष रखनेवाले को नाश करो और बल की अभिवृद्धि करो तथा रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे शत्रुओं का नाश करो ॥ १३ ॥

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १४ ॥
सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १५ ॥
विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १६ ॥
प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १७ ॥
चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १८ ॥

हे देवि ! मेरा कल्याण करो और मुझे उत्तम सम्पत्ति दो तथा रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का नाश करो ॥ १४ ॥

हे अम्बिके, देवता और राक्षस अपने मुकुट-रत्नों को आपके चरणों पर घिसते रहते हैं । हे देवि, तुम रूप दो, जय दो, यश दो और शत्रुओं का विनाश करो ॥ १५ ॥

हे देवि, अपने भक्तजनों को विद्वान्, यशस्वी तथा लक्ष्मीवान् बनाओ । मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का विनाश करो ॥ १६ ॥

बड़े-बड़े दैत्यों के घमण्ड को चूर करनेवाली हे चण्डिके, मुझ शरणागत को रूप दो, जय दो, यश दो तथा मेरे शत्रुओं का विनाश करो ॥ १७ ॥

चतुर्मुख ब्रह्माजी के द्वारा प्रशंसित चार भुजाओं को धारण करनेवाली हे परमेश्वरि, मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का विनाश करो ॥ १८ ॥

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १९ ॥
हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २० ॥
इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २१ ॥
देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २२ ॥
देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २३ ॥
पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥ २४ ॥

हे देवि भगवान् विष्णु निरन्तर तुम्हारी स्तुति करते हैं । मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा मेरे शत्रुओं का नाश करो ॥ १९ ॥

हिमालय कन्या पार्वतीके स्वामी शिव जी के द्वारा प्रशंसित होनेवाली हे परमेश्वरि, मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का नाश करो ॥ २० ॥

इन्द्राणीपति इन्द्र के द्वारा उत्तम भावों से पूजित हे परमेश्वरि, मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा शत्रुओं का विनाश करो ॥ २१ ॥

प्रचण्ड भुजदण्डों वाले दैत्यों का घमंड चूर.करनेवाली हे देवि, रूप दो, जय दो; यश दो तथा शत्रुओं का विनाश करो ॥ २२ ॥

हे अम्बिके, देवि तुम भक्तजनों को सदा असीम आनन्द देनेवाली हो । मुझे रूप दो, जय दो, यश दो तथा मेरे शत्रुओं का विनाश करो ॥ २३ ॥

हे देवि, मन की इच्छानुसार चलनेवाली तथा कठिन संसार-सागर से तारनेवाली श्रेष्ठ कुलोत्पन्न सुन्दर स्वरूपवाली पत्नी मुझे दो ॥ २४ ॥

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः ।
स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम् ॥ २५ ॥

इति देव्या अर्गलास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

जो मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ करके महास्तोत्र (सप्तशती) का पाठ करता है, वह सप्तशती-पाठ के समान श्रेष्ठ फल को प्राप्त करता है तथा उसे प्रचुर सम्पत्ति भी मिलती है ॥ २५ ॥

अर्गलास्तोत्र समाप्त

अथ कीलकस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहासरस्वती देवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः।

ॐ नमश्चण्डिकायै।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे॥ १॥

(कीलक शब्द का अर्थ इस स्थान में अभीष्ट सिद्धि का प्रतिबन्धक है। जिसको साधारण बोली में शाप कहते हैं। गायत्री आदि अनेक प्रसिद्ध मन्त्रों में किसी न किसी ऋषि वा देवता का शाप है! और साथ ही साथ उस शाप के उद्धार का भी विधान है। यह कीलक स्तुति भी शापोद्धारविशेष है। सप्तशती-मन्त्रात्मक देवीमाहात्म्य के ऊपर भी महादेवकृत कीलक है। उस कीलक को दूर न करके देवीमाहात्म्य पाठ करने से वह अभीष्ट फल देने में असमर्थ है। इस शाप या कीलक का यथार्थ रहस्य—अधिकार निर्णय है। किस प्रकार क्षेत्र पर आरोहन करके, किस प्रकार मानसिक उन्नति लेकर, किस प्रकार साधन बल पाकर, चण्डीतत्व में प्रवेश करने से अभीष्ट सिद्धि होती है, उसी का प्रतिपादन कीलक स्तोत्र में है।)

चण्डिका देवी को नमस्कार है।

मार्कण्डेय जी ने कहा—जिनके निर्मल ज्ञान रूपी शरीर एवं तीनों वेदरूपी दिव्य तीन नेत्र हैं ऐसे कल्याण के साधनभूत तथा अपने कपाल पर अर्धचन्द्र रूपी मुकुट धारण करनेवाले भगवान् शङ्कर को नमस्कार है॥ १॥

सर्वमेतद् विजानीयान्मन्त्राणामपि कीलकम् ।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥ २ ॥
सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि ।
एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति ॥ ३ ॥
न मन्त्रं नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते ।
विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥ ४ ॥
समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः ।
कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ॥ ५ ॥
स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः ।
समाप्तिर्न च पुण्यस्य तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥ ६ ॥

मंत्रों का जो अभिकीलक (मन्त्रों की सिद्धि में विघ्न पहुंचानेवाला शापरूपी कीलक का निवारण करनेवाला) है। इस सप्तशती स्तुति को अच्छी तरह से जान करके उपासना करनी चाहिये। जो मनुष्य सप्तशती के अतिरिक्त अन्य मंत्र का जप करने में तत्पर रहते हैं, वे भी कल्याण को प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

उनके भी उच्चाटन आदि सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। तथापि जो दूसरे मन्त्रों का जप न करके केवल देवी की ही स्तुति करते हैं, उन्हें स्तुतिमात्र से ही देवी सिद्ध हो जाती हैं। उन्हें अपने कार्य में न तो यन्त्र की आवश्यकता पड़ती है, न औषध की ही। बिना जप किये ही उनके सभी उच्चाटन आदि भी सिद्ध हो जाते हैं ॥ ३–४ ॥

लोगों के मन में यह जिज्ञासा थी कि जब सप्तशती की उपासना तथा दूसरे मन्त्रों की उपासना से समान रूप से ही कार्य की सिद्धि होती है, तो इन में कौन सा साधन उत्तम है? इस शंका को सामने रखकर भगवान् शंकरजी ने समझाया—यह सप्तशती नामक सम्पूर्ण स्तोत्र ही सर्वश्रेष्ठ एवं कल्याणप्रद है ॥

तदनन्तर शिवजी ने चण्डिका-देवी के स्तोत्र को गुप्त कर दिया। इस स्तोत्र के

सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेव न संशयः ।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥ ७ ॥
ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति ।
इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥ ८ ॥
यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम् ।
स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः ॥ ९ ॥
न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते ।
नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १० ॥

पाठ करने से अक्षय पुण्य मिलता है। इसलिये भगवान् शंकर ने अन्यमंत्रों की अपेक्षा इसकी श्रेष्ठता निर्णीत की। यह यथार्थ समझना चाहिये ॥ ६ ॥

दूसरे मंत्रों का जप करनेवाला उपासक भी यदि इस स्तोत्र का पाठ करे तो निस्सन्देह उसका कल्याण होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। जो मनुष्य कृष्णपक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी में एकाग्रचित्त होकर भगवती को सेवा में अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है और उसे प्रसाद बुद्धि से ग्रहण करता है, उसी के ऊपर भगवती प्रसन्न होती हैं। इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसी प्रकार महादेवजी ने प्रतिबन्धकरूप कील के द्वारा इस स्तोत्र को कीलित कर रक्खा है। तात्पर्य यह है कि स्तोत्र पाठ में आये हुए प्रतिबन्ध इस कीलक पाठ से नष्ट हो जाते हैं। यहाँ कीलक शब्द कीलक रूप प्रतिबन्ध के नाशकरूप अर्थ में प्रयुक्त है ॥ ७–८ ॥

जो मनुष्य इस प्रकार निष्कीलन विधि करके चण्डिका-स्तोत्र का स्पष्ट उच्चारण करते हुए पाठ करता है, वही सिद्ध होता है, वही देवी का गण होता है और वही गन्धर्व भी होता है ॥ ९ ॥

वह संसार भर में चाहे जहाँ कहीं भी घूमे, उसे कहीं भी भय नहीं होता। उसे अपमृत्यु नहीं होती, बहुत दिनों तक जीवित रहकर अन्त में मोक्ष पाता है।

ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति ।
ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः ।। ११ ।।
सौभाग्यादि च यत्किञ्चिद् दृश्यते ललनाजने ।
तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ।। १२ ।।
शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः ।
भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ।। १३ ।।
ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः ।
शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ।ॐ।।१४।।

इति देव्याः कीलकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

अतः सभी विधि को जानकर हो सप्तशतो का पाठ करना चाहिये । बिना विधि समझे पाठ करने पर मनुष्य विनाश हो जाता है । विद्वान लोक इसोलिये सम्पूर्ण विधि को जानकर ही सप्तशती का पाठ प्रारम्भ करते हैं ।। ११ ।।

स्त्रियों में सौभाग्य आदि जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, वे सब देवी की ही प्रसन्नता का फल है । अतः कल्याणमय इस स्तोत्र का जप शुभ है ।। १२ ।।

इस स्तोत्र का मन्द स्वर से पाठ करने पर कम फल मिलता है और ऊंचे स्वर से पाठ करने पर पूर्ण फल मिलते हैं । इसलिये ऊंचे स्वर से हो पाठ करना चाहिए ।। १३ ।।

जिसकी कृपा से ऐश्वर्य, सौभाग्य, आरोग्य, सम्पत्ति, शत्रुओं का विनाश तथा मोक्ष मिलता है, उस देवी की स्तुति मनुष्य क्यों नहीं करता, अर्थात् सभी को अवश्य करनी चाहिये ।। १४ ।।

कीलकस्तोत्र समाप्त

अथ वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्

ॐ रात्रीत्याद्यष्टर्चस्य सूक्तस्य कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाज ऋषिः रात्रिर्देवता गायत्री छन्दः देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः ।

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः । विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥ १ ॥

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः । ज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥

निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ॥ ३ ॥

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि । वृक्षे न वसतिं वयः ॥ ४ ॥

(रात्री देवी) रात्रि के समान अनक सुखों को देनेवाली, (आयती) आती हुई, (पुरुत्रा) अनेकों का पालन करनेवाली प्रभुशक्ति, (वि अख्यत्) विविध प्रकार से संसार को देखती या प्रकाशित करती है । वह (अक्षभिः) व्यापक शक्तियों से, (विश्वाःश्रियः आधित) समस्त सम्पदाओं को धारण करती है ॥ १ ॥

वह (अमर्त्या) कभी नाश न होनेवाली, (देवी) सब सुखों को देनेवाली प्रभुशक्ति, (निवतः उद्वतः) नीचे और ऊँचे समस्त प्रदेशों को (उरु आ अप्राः) खूब प्रकाश से प्रकाशित करती है और (ज्योतिषा) तेज से (तमः-बाधते) अन्धकार का नाश करती है ॥ २ ॥

वह (आयती देवी) चारों ओर यत्न करनेवाली सर्वसञ्चालक प्रभुशक्ति, (उषसम्) उषा के तुल्य कान्ति से युक्त जीव-शक्ति को (स्वसारम आकृत) स्वयं अपने बल से संसार मार्ग पर चलने में समर्थ बनाती है और उसके (तमः इत् उ अप हासते) अन्धकार को दूर करती है ॥ ३ ॥

(यस्याः ते) जिस तेरे (यामन्) सर्वनियामक शासन में (नि विक्ष्महि) हम आश्रय किये हुए हैं, और जिस पर (वृक्षे वयः वसतिं न) वृक्ष पर पक्षियों के तुल्य हम जगत् में निवास करते हैं, (सा) वह तू (नः) हमें (अद्य) आज (सुतरा भव) सुख पूर्वक संकट से पार उतारने वाली हो ॥ ४ ॥

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः। नि श्येनास-
श्चिदर्थिनः ॥ ५ ॥

यावयावृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये। अथा नः सुतरा भव ॥ ६ ॥

उपमा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित। उषऋणेवयातय ॥ ७ ॥

उष ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः। रात्रिस्तोमं न
जग्युषे ॥ ८ ॥

इति वेदोक्तं रात्रिसूक्तं सम्पूर्णम्।

हे प्रभुसक्ते, (ते यामन्) तेरे शासन में (ग्रामासः नि अविक्षत) अनेक जन-समूह डेरा डाले हैं। तेरे शासन में (पद्वन्तः नि पक्षिणः) चरणों वाले मनुष्य और पशु, तथा पक्षीगण और (श्येनासः) उत्तम आचरणवान् जन और (अर्थिनः चित्) बड़े धनशाली जन भी (नि) आश्रय लेते हैं ॥ ५ ॥

हे (ऊर्म्ये) रात्रिवत् विश्रामदायिनी प्रभुशक्ते (वृक्यं यावय) चोर स्वभाव की स्त्री को वा विविध प्रकार के काटनेवाली सेना को और (स्तेन वृकं) चोर स्वभाव के हिंसक शत्रु को (यवय) तू सदा दूर कर। (अथा नः सुतराभव) और तू हमें सुख से तार देनेवाली हो ॥ ६ ॥

हे (उषः) प्रभात वेला के तुल्य कान्तियुक्त प्रभुशक्ते, (पेपिशत्) गाढा तथा (कृष्णम्) काला (तमः) अज्ञानान्धकार (आ उप अस्थित्) मुझे प्राप्त हुआ है, उसे तू ऋण इव यातय) ऋणों के समान नष्ट कर ॥ ७ ॥

हे (दिवः दुहितः) सूर्य की पुत्री ऊषा के समान तेजवाली, (ते) तेरी (गाः इव) नाना वाणियों को मैं (आकरम्) प्राप्त करूँ। हे (रात्रि) रात्रि-वत् सुखप्रद, मैं (जिग्युषे तोमं न) विजयशील के प्रति स्तुति वचनों के समान ('ते स्तोमं आ अकरम्) तेरी स्तुति करूँ ॥ ८ ॥

वेदोक्त रात्तिसूक्त समाप्त

—:०:—

अथ तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्

(रात्रिसूक्त का हिन्दी अनुवाद प्रथम अध्याय पृ० ११ श्लो० ७० से ८७ में देखिये।)

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः॥ १॥

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारस्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता॥ २॥

अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा॥ ३॥

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा॥ ४॥

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये॥ ५॥

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी॥ ६॥

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनि।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा॥ ७॥

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च॥ ८॥

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डी परिघायुधा ॥ ९ ॥
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥ १० ॥
यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥ ११ ॥
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ १२ ॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्॥ १३ ॥
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥ १४ ॥
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥ १५ ॥

इति तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तं सम्पूर्णम् ।

—०—

अथ श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्

ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति ॥१॥

साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत् । शून्यं चाशून्यं च ॥ २ ॥

अहमानन्दानानन्दौ । अहं विज्ञानाविज्ञाने । अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये । अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि । अहमखिलंजगत् ॥ ३ ॥

वेदोऽहमवेदोऽहम् । विद्याहमविद्याहम् । अजाहमनजाहम् । अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम् ॥ ४ ॥

(देव्यथर्वशीर्ष अथर्ववेद से लिया गया है । इसमें देवी ब्रह्मशक्तिरूप का महिमा बतायी गई है । इसके पाठ से देवी की कृपा शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है । सप्तशती पाठ के साथ-साथ या पृथक् केवल इसी का पाठ किया जाय तो मानव की सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं । इसी उद्देश्य से इसका समावेश इस पुस्तक में कर दिया गया है ।)

सभी देवता देवी के पास गये और उनसे पूछे—हे महादेवि, तुम कौन हो ? ॥ १ ॥

उसने कहा—मैं साक्षात् ब्रह्मरूप हूँ । मुझसे सत् और असद्रूप संसार उत्पन्न हुआ है । मैं आनन्द और अनानन्दरूपा हूँ । मैं विज्ञान और अविज्ञान-रूपा हूँ । मैं जानने योग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी मैं ही हूँ । पञ्चभूतरूप और अपञ्चभूतरूप भी मैं ही हूँ । सम्पूर्ण संसाररूप मैं ही हूँ ॥ २–३ ॥

वेद और अवेद मैं हूँ । विद्या और अविद्या भी मैं ही हूँ । प्रकृति और अप्रकृति भी मैं ही हूँ । नीचे-ऊपर अगल-बगल भी मैं ही हूँ ॥ ४ ॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ॥ ५॥

अहं सोमं त्वष्टारं भगं दधामि। अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि॥ ६॥

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते। अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। य एवं वेद। स दैवीं सम्पदमाप्नोति॥ ७॥

ते देवा अब्रुवन्—नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं

मैं एकादशरुद्र एवं सब वस्तुओं के रूप में विचरण करती हूँ। मैं ही द्वादश आदित्य तथा समस्त विश्व देवों के रूप में घूमा करती हूँ। मैं मित्र और वरुण दोनों का इन्दु, तथा अग्नि का और दोनों अश्विनी कुमारों का भरण-पोषण करती हूँ॥ ५॥

मैं सोम, त्वष्टा, पूषा और भग को धारण करती हूँ। मैं ही उरुक्रम (तीनों लोकों को आक्रान्त करने के लिये अपने पैरों को फैलाने वाले) विष्णु, ब्रह्मा और प्रजापति को धारण करती हूँ॥ ६॥

सोमयज्ञ के द्वारा जो देवताओं को तृप्त करता है, उस यज्ञ का फल रूप धनादि मैं ही प्रदान किया करती हूँ। मैं निखिल ब्रह्माण्ड की ईश्वरी हुं, मैं उपासकगण को धनादि इष्टफल दात्री हूँ। ब्रह्मरूप और उपास्य देवों में मैं ही प्रधान हूँ। मैं आत्मस्वरूप पर आकाशनिर्माण करती हूँ। मेरा स्थान आत्मस्वरूप को धारण करनेवाली बुद्धिवृत्ति में है। जो इस प्रकार जानता है, वह दैवी सम्पत्ति को प्राप्त करता है॥ ७॥

इसके बाद उन देवताओं ने कहा, देवी को नमस्कार है, महादेवी और

नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ ८ ॥

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्या-
महेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः ॥ ९ ॥
देवीं वाचमजनयन्त देवा-
स्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥ १० ॥
कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम् ।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥११॥

शिवा को सदा नमस्कार है । प्रकृतिरूपिणी और भद्रा को नियमपूर्वक हम नमस्कार करते हैं ॥ ८ ॥

उन अग्नि के समान रूपवाली, तपस्या के द्वारा प्रज्वलित कान्तिवाली, कर्मफल पाने के लिये सेवा की जानेवाली दुर्गादेवी हम तुम्हारी शरण में हैं । राक्षसों का विनाश करनेवाली देवी, तुम्हें नमस्कार है ॥ ९ ॥

देवताओं ने जिस प्रकाशमान वाणी को उत्पन्न किया, उसको अनेक प्रकार के प्राणी बोलते हैं. वह कामधेनु के समान आनन्द को प्रदान करनेवाली तथा अन्न और बल देनेवाली वागरूपिणा भगवती उत्तम स्तुति से संतुष्ट होकर हमारे पास आये ॥ १० ॥

काल को भी विनाश करनेवाली ब्रह्म के द्वारा स्तुत्य विष्णुशक्ति, पार्वती, सरस्वती, देवमाता अदिति तथा दक्षकन्या (सती), पवित्र करनेवाली और कल्याण करनेवाली देवी को हम नमस्कार करते हैं ॥ ११ ।

महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥ १२ ॥
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥ १३ ॥
कामो योनिः कमला वज्रपाणि-
गुंहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम् ॥ १४ ॥

एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या। य एवं वेद स शोकं तरति ॥ १५ ॥

हम महालक्ष्मी को जानते हैं और उन सर्वशक्ति सम्पन्न देवी का ही ध्यान करते हैं। वह देवी हमें सत्कार्य में प्रवृत्त करें ॥ १२ ॥

हे दक्ष ! आपकी जो कन्या अदिति है, वह उत्पन्न हुई और उनके अतिसौम्य, कभी भी नहीं मरनेवाले देव उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥

काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्रपाणि—इन्द्र (ल), गुहा (ह्रीं)। ह, स—वर्ण, मातरिश्वावायु (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं)। स, क, ल—वर्ण और माया (ह्रीं), यह सर्वात्मिका जगन्माता की मूल विद्या है और यह ब्रह्मरूपिणी है ॥ १४ ॥

(शिवशक्त्यभेदरूपा, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका, सरस्वती, लक्ष्मी-गौरीरूपा; अशुद्ध-मिश्र-शुद्धोपासनात्मिका, समरसीभूत-शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूप का निर्विकल्प ज्ञान देनेवाली, सर्वतत्त्वात्मिका महात्रिपुरसुन्दरी—यही इस मंत्र का भावार्थ है)।

नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः ॥ १६ ॥

सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि। कलाकाष्ठादिकालरूपिणी। तामहं प्रणौमि नित्यम् ॥

पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम् ॥ १७ ॥
वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम् ॥ १८ ॥

धारण करनेवाली हैं। ये श्रीमहाविद्या हैं। जो इस तरह जानता है, वह शोक को पारकर लेता है ॥ १५ ॥

भगवती, तुम्हें नमस्कार है। माता सब तरह से हमारी रक्षा करो ॥ १६ ॥

वही ये आठ वसु हैं, वही ये ग्यारह रुद्र हैं। वही ये द्वादश रुद्र हैं। वही ये सोमरस का पान करनेवाले और नहीं करनेवाले विश्वदेव हैं। वही ये यातुधान नामक राक्षस, असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष और सिद्ध हैं। वही ये सत्त्व, रज, तम हैं। वही ये ब्रह्म-विष्णु-रूप को धारण करनेवाली हैं। वही ये प्रजापति, इन्द्र, और मनु हैं। वही ये ग्रह, नक्षत्र और तारे हैं। वही ये कला-काष्ठादि कालरूपिणी हैं। पाप का विनाश करनेवाली, भोग और मुक्ति को प्रदान करनेवाली, अन्तरहित, विजयस्वरूपिणी, शुद्ध और शरण में लेने योग्य, कल्याण को देनेवाली और मंगलमयी उन देवी को हम सदा प्रणाम करते हैं ॥ १७ ॥

वियत्—आकाश (ह) और (ई) कार से युक्त, वीतिहोत्र—अग्नि (र) से युक्त, अर्धचन्द्र (ँ) से सुशोभित देवी का बीजमंत्र सभी मनोरथ को पूरा

एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः ।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः ॥ १९ ॥
वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम् ।
सूर्योऽवामश्रोत्रविसंयुक्ताष्टतृतीयकः ।
नारायणेन संमिश्रो वायुश्चाधरयुक् ततः ।
विच्चे नवार्णकोऽर्णः स्यान्महदानन्ददायकः ॥ २० ॥
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम् ।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् ।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे ॥ २१ ॥

करनेवाला है। इस प्रकार एकाक्षर ब्रह्म (ह्रीं) का वे ही यतिलोग ध्यान करते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है, जो अत्यन्त आनन्द पूर्ण हैं तथा ज्ञान के सागर हैं ॥ १८–१९ ॥

वाणी (ऐं) माया (ह्रीं), ब्रह्मसूकाम (क्लीं), इसके आगे छठा व्यंजन 'च', वही वक्त्र अर्थात् आकार से युक्त (चा), सूर्य (म), 'अवाम श्रोम।'— दक्षिणवर्ण (उ) तथा विन्दु अर्थात् अनुस्वार से युक्त (मुं) टकार से तीसरा ड, वही नारायण अर्थात् 'आ' से युक्त (डा), वायु (य), वही अधर अर्थात् 'ऐ' युक्त (यै) और (विच्चे) यह नवार्णमन्त्र उपासकों को बहुत अधिक आनन्द देनेवाला है ॥ २० ॥

हृदयरूपी कमल के बीच में निवास करनेवाली, प्रातःकालीन सूर्य के समान कान्तिवाली, पाश और अंकुश धारण करनेवाली, सुन्दरतम रूपवाली, हाथों में वरद अभयमुद्रा को धारण करनेवाली, तीन नेत्रवाली, रक्त वस्त्र से युक्त तथा कामधेनु की तरह सभी मनोरथ को पूरा करनेवाली देवी को मैं भजता हूं ॥ २१ ॥

नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम् ।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम् ॥ २२ ॥

यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया । यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता । यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या । यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा । एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका । एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका । अत एवोच्यते अज्ञेयानन्तालक्ष्याजैका नैकेति ॥ २३ ॥

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी ।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी ।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ॥ २४ ॥

महाभय का विनाश करनेवाली, महाविपत्ति को शान्त करनेवाली और बहुत बड़ी दया की साक्षात् मूर्ति महादेवी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २२ ॥

जिसके स्वरूप को ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते हैं, इसलिए उसे अज्ञेया कहते हैं । जिसका अन्त नहीं मिलता—इसलिये उसे अनन्ता कहते हैं । जिसका लक्ष्य नहीं मालूम पड़ता इसलिये उसे अलक्ष्या कहते हैं । जिसकी उत्पत्ति के विषय में कुछ भी नहीं मालूम होता—इसलिये उसे अजा कहते हैं । जो अकेली ही सभी जगह है—इसलिये उसे एका कहते हैं । जो अकेली ही विश्वरूप में स्थित है—इसलिये उसे नैका कहते हैं । इसलिये वे इन्हीं सभी कारणों से अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका और नैका कहलाती हैं ॥ २३ ॥

मन्त्रों में मात्रिका देवी, शब्दों में ज्ञानरूपिणी, ज्ञानों में चिन्मयातीता, शून्यों में शून्यसाक्षिणी और जिनसे बढ़कर कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है अर्थात् जो सबसे श्रेष्ठ हैं, वे दुर्गा नाम से विख्यात हैं ॥ २४ ॥

तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम् ।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम् ॥ २५ ॥

इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति। इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति–शतलक्षं प्रजप्त्वापि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति। शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।

दशवारं पठेद् यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते ।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः ॥ २६ ॥

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति । निशीथे तुरीयसन्ध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति । नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवतासान्निध्यं भवति । प्राण-

---

उन दुर्विज्ञेय, दुराचार का नाश करनेवाली तथा संसाररूपी समुद्र से पार करनेवाली दुर्गा देवी को डरा हुआ मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥

इस अथर्वशीर्ष को जो पढ़ता है, उसे पाँचों अथर्वशीर्ष के जप का फल मिलता है । इस अथर्वशीर्ष को न जानकर जो मूर्ति की स्थापना करता है, वह सैकड़ों लाख जप करने पर भी अर्चासिद्धि को नहीं कर पाता है । इसकी १०८ बार पुरश्चरण की विधि है । जो व्यक्ति दस बार इसका पाठ करता है, वह तत्काल ही सभी पापों से विमुक्त हो जाता है और महादेवी की कृपा से कठिन से कठिन विपत्तियों को पार कर लेता है ॥ २६ ॥

इस अथर्वशीर्ष का सायंकाल में पाठ करनेवाला दिन में किये हुए पापों का नाश कर देता है । प्रातःकाल में पाठ करने से रात्रि में किये पापों का विनाश करता है । दोनों समय पाठ करनेवाला पाप से रहित हो जाता है । रात में जो चौथी सन्ध्या की जाती है, उस समय जप करने पर वाणी की सिद्धि हो जाती है ।

प्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति । भौमाश्विन्यां महादेवीसन्निधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति । स महामृत्युं तरति य एवं वेद । इत्युपनिषत् ।।

इति श्रीदेव्यथर्वशीर्षं सम्पूर्णम् ।

नयी प्रतिमा पर जप करने से देवताओं का सान्निध्य होता है । प्राणप्रतिष्ठा के समय जप करने पर प्राणों की प्रतिष्ठा होती है । अमृतसिद्धि योग के समय महादेवी के समीप जप करने से महामत्यु से बच जाता है । जो इस प्रकार जानता है वह महामृत्यु से पार हो जाता है ।

देव्यथर्वशीर्ष समाप्त

अथ नवार्णमन्त्रजपविधिः

देवीकवच, अर्गलास्तोत्र, कीलक, रात्रिसूक्त और देव्यथर्वशीर्ष आदि के पाठ करने के पश्चात् निम्नलिखित प्रकार से नवार्णमन्त्र के विनियोग ऋष्यादि न्यास और ध्यान आदि करे।

ॐ अस्य श्री नवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयो गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकाली-महालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

इसे पढ़कर नीचे जल गिरावे।

अथ ऋष्यादिन्यासः

'ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्रर्षिभ्यो नमः' इस मन्त्र से शिर का, 'ॐ गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्छन्दोभ्यो नमः' इस मन्त्र से मुख का, 'ॐ महाकाली-महालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः' इस मन्त्र से हृदय का, 'ॐ ऐं बीजाय नमः' इस मन्त्र से गुह्येन्द्रिय का, 'ॐ ह्रीं शक्तये नमः' इस मन्त्र से दोनों पैरों का तथा 'ॐ क्लीं कीलकाय नमः' इस मन्त्र से नाभि का दाहिने हाथ की अनामि का अँगुली से स्पर्श करे।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस मन्त्र से हाथों की शुद्धि करे।

अथ करन्यासः

'ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः' इस मंत्र से दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियों से दोनों अँगूठों का स्पर्श करे।

'ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः' इस मंत्र से दोनों तर्जनी अँगुलियों का, 'ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः' इस मंत्र से दोनों मध्यमा अँगुलियों का, 'ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः' इस मंत्र से दोनों अनामिका अँगुलियों का तथा 'ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः' इस मंत्र से दोनों कनिष्ठिका अँगुलियों का दोनों अँगूठों से स्पर्श करे। 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' इस मंत्र से बायें हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ के पृष्ठ भाग का स्पर्श करे।

अथ हृदयादिन्यासः

'ॐ ऐं हृदयाय नमः' इस मंत्र से हृदय का, 'ॐ शिरसे स्वाहा' इस मंत्र से शिर का तथा 'ॐ क्लीं शिखायै वषट्' इस मंत्र से शिखा का दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से स्पर्श करे। 'ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्' इस मंत्र से दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से बायें कन्धे का और बायें हाथ की अनामिका अँगुली से दाहिने कन्धे का स्पर्श करे। 'ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्' इस मंत्र से दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से नेत्रत्रय का स्पर्श करे।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्' इस मंत्र को पढ़कर दाहिने हाथ को—शिर के पीछे से बायें हाथ की ओर लाकर फिर दाहिने हाथ की तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलियों से बायें हाथ पर ताली बजावे।

अथ अक्षरन्यासः

'ॐ ऐं नमः' इस मंत्र से शिखा का, 'ॐ ह्रीं नमः' इस मंत्र से दाहिने नेत्र का, 'ॐ क्लीं नमः' इस मंत्र से वाम नेत्र का, 'ॐ चां नमः' इस मंत्र से दाहिने कान का, 'ॐ मुं नमः' इस मत्र से बायें कान का, 'ॐ डां नमः' इस मंत्र से दाहिनो नाक के पुटभाग का 'ॐ यैं नमः' इस मंत्र से बायीं नाक के पुटभाग का, 'ॐ विं नमः' इस मंत्र से मुख का तथा 'ॐ च्चें नमः' इस मंत्र से गुह्येन्द्रिय का दाहिने हाथ की अनामिका अंगुली से स्पर्श करे।

इस तरह अक्षरन्यास करने के बाद 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस मूल मंत्र से आठ बार व्यापक करे। अर्थात् सिर से पैर तक के सभी अङ्गो का दोनों हाथों से स्पर्श करे।

अथ दिङ्न्यासः

'ॐ ऐं प्राच्यै नमः' इस मंत्र से पूरब दिशा में, 'ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः' इस मंत्र से अग्नि कोण में, 'ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः' इस मंत्र से दक्षिण दिशा में, 'ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः' मंत्र से नैर्ऋत्य कोण में,



'ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः' इस मंत्र से पश्चिम दिशा में, 'ॐ क्लीं वायव्यै नमः' इस मंत्र से वायु कोण में, 'ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः' इस मंत्र से उत्तर दिशा में, 'ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः' इस मंत्र से ईशान कोण में, 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस मंत्र से ऊपर की ओर तथा 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस मंत्र से नीचे की ओर चुटकी बजावे ।

अथ ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषु चापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥ १ ॥

अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिञ्च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥ २ ॥

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥ ३ ॥

नोट—इसका अर्थ क्रमशः सप्तशती के प्रथम, द्वितीय तथा पंचम अध्याय के आरम्भ में दिया गया है ।

ध्यान समाप्त होने के बाद 'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' इस मन्त्र से माला की पूजा करनी चाहिये।

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये॥

ॐ अक्षमालाधिपते सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।

इस स्तुति से माला की प्रार्थना करे।

इसके बाद 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस मूल मन्त्र का १०८ बार जप करे।

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि॥

इस श्लोक को पढ़ते हुए देवी के वाम हाथ में जप का निवेदन करे।

अथ सप्तशतीन्यासः

तत्र विनियोगः

प्रथममध्यमोत्तरचरित्राणां ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, नन्दाशाकम्भरीभीमाः शक्तयः, रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्यजुःसामवेदाध्यायानि,

बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्यजु:सामवेदा ध्यानानि, सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवता-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। इसे पढ़कर नीचे जल गिरावे।

करन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥

अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। इस मंत्र से दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों से दोनों अँगूठों का स्पर्श करे एवं—

ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिः स्वनेन च ॥

तर्जनीभ्यां नमः, इस मंत्र से दोनों तर्जनी अँगुलियों का,

ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥

मध्यमाभ्यां नमः, इस मंत्र से दोनों मध्यमा अँगुलियों का,

ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥

अनामिकाभ्यां नमः, इस मंत्र से दोनों अनामिका अँगुलियों का तथा—

ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥

कनिष्ठिकाभ्यां नमः, इस मंत्र से दोनों कनिष्ठिका अँगुलियों का दोनों अँगूठों से स्पर्श करे।

ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।

भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥

करतलकरपृष्ठाभ्यांनमः । इस मंत्र से बायें हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ के पृष्ठभाग का स्पर्श करे ।

हृदयादिन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा० हृदयाय नमः । इस मंत्र से हृदय का, ॐ शूलेन पाहि नो देवि० शिरसे स्वाहा । इस मंत्र से शिर का तथा प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च० शिखायै वषट् । इस मंत्र से शिखा का दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से स्पर्श करे । ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि० कवचाय हुम् । इस मंत्र से दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से बायें कन्धे का और बायें हाथ की अनामिका अँगुली से दाहिने कन्धे का स्पर्श करे । ॐ खड्गशूलगदादीनि० नेत्रत्रयाय वौषट् । इस मंत्र से दाहिने हाथ का अनामिका अँगुली से नेत्रत्रय का स्पर्श करे । ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे० अस्त्राय फट् । इस मंत्र को पढ़कर दाहिने हाथ को सिर के पीछे से बायें हाथ की ओर लाकर फिर दाहिने हाथ की तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियों से बायें हाथ पर ताली बजावें ।

ध्यानम्

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणां तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

इस मन्त्र से ध्यान करे । (इसका अर्थ बारहवें अध्याय के आरम्भ में है ।)

अथ दुर्गाशापोद्धारः

ॐ दुर्गादेव्यै नमः

ॐ चण्डिकाशापविमोचनमन्त्रस्य वशिष्ठनारदसामवेदाधिपतिब्राह्मणा ऋषयः सर्वैश्वर्यकारिणी श्रीदुर्गा देवता अनुष्टुप्छन्दश्चरितत्रयम्बीजं ह्रीं शक्तिरूपिणी चण्डीशापविमोचने विनियोगः ।

ॐ रीं रेतः स्वरूपायै मधुकैटभमर्द्दिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।
ॐ श्रीं बुद्धिरूपिण्यै महिषासुरसैन्यनाशिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव।
ॐ रं रक्तरूपिण्यै महिषासुरमर्दिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।
ॐ क्षुं क्षुधारूपिण्यै देववन्दिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।
ॐ छां छायारूपिण्यै दूतसंवादिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।
ॐ श्रीं शक्तिरूपिण्यै धूम्रलोचनघातिन्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।
ॐ तृं तृष्णारूपिण्यैचण्डमुण्डवधकारिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।
ॐ क्षां क्षान्तिरूपिण्यै रक्तबीजवधकारिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।
ॐ जां जातिरूपिण्यै निशुम्भवधकारिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।
ॐ लं लज्जारूपिण्यै शुम्भवधकारिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।
ॐ शां शान्तिरूपिण्यै देवस्तुत्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।
ॐ श्रं श्रद्धारूपिण्यै फलदात्र्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।
ॐ कां कान्तिरूपिण्यै राजवरदात्र्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।
ॐ मां मातृरूपिण्यै अर्गलसहितायै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

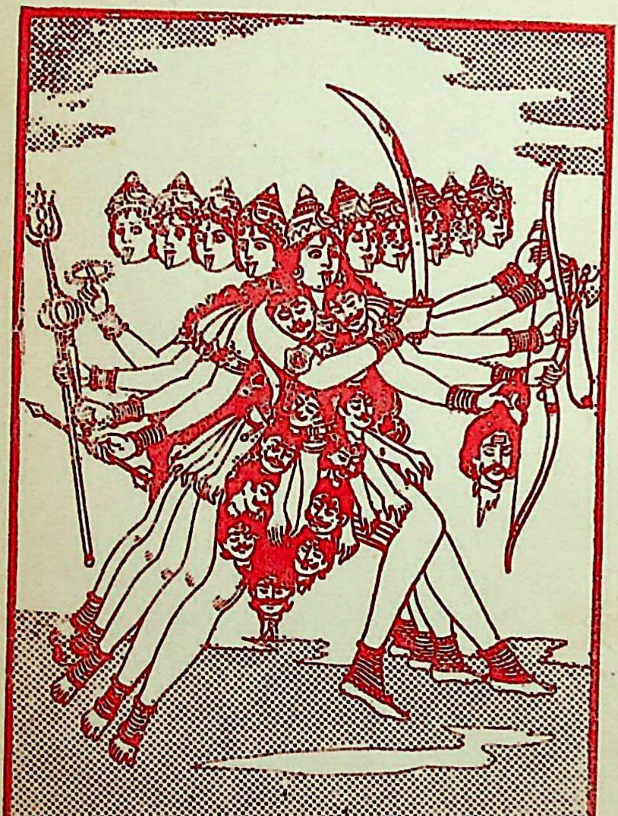
ॐ ह्रीं श्रीं ह्रुं दुर्गायै सर्वैश्वर्यकारिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं ॐ नमः शिवायै अभेदकवचरूपिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ क्रीं काल्यै कालि ह्रीं फट् स्वाहायै ऋग्वेदरूपिण्यै ब्रह्मशापविमुक्ता भव ।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपिण्यै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गादेव्यै नमः ।

इत्येवं हि महामन्त्रान् पठित्वा परमेश्वरि ।
चण्डीपाठं दिवारात्रौ कुर्यादेव न संशयः ॥
एवम्मन्त्रन्न जानाति चण्डीपाठं करोति यः ।
आत्मनश्चैव दातृणां क्षयं कुर्यान्न संशयः ॥
इति रुद्रयामले चण्डिकाशापविमोचनं सम्पूर्णम् ।



अथ

दुर्गासप्तशती

'सर्वमङ्गला' हिन्दीव्याख्योपेता

प्रथमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्रजपे विनियोगः । ध्यानम्—

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥

सप्तशती का सन्दर्भ—द्वैपायन के शिष्य भगवान् जैमिनि ने व्यास के द्वारा प्रायः सब धर्मों के स्वरूप अवगत करने पर भी कुछ धर्मों के स्वरूप जानने की इच्छा से मार्कण्डेय ऋषि से प्रार्थना की; किन्तु भगवान् के आराधन में तल्लीन मार्कण्डेय ऋषि ने समयाभाव के कारण विन्ध्याचल-निवासी चार पक्षियों को सम्बोधित कर उन्हें यह आदेश दिया कि तुम लोग आठों मन्वन्तरों की कथाएँ समुचित रूप से जैमिनि को सुनाओ ।

चारों पक्षियों ने भी सातों मन्वन्तरों की कथाएँ जैमिनि को सुनाईं, जो उन्होंने मार्कण्डेय एवं भागुरि के संवाद में सुनी थीं । आठवें मन्वन्तर की कथा भी चारों पक्षियों ने जैमिनि से 'मार्कण्डेय उवाच' इत्यादि कहकर प्रारम्भ की । यही प्रसङ्ग मेधा ऋषि ने राजा सुरथ एवं समाधि नामक वैश्य को सुनाया था, जो इस ग्रन्थ में वर्णित है ।

ध्यान—क्षीरशायी विष्णु के सो जाने पर मधु-कैटभ के वध के लिये कमलजात ब्रह्माजी ने जिनकी स्तुति की थी, उन महाकाली देवी की मैं सेवा

ॐ नमश्चण्डिकायै

'ॐ ऐं' मार्कण्डेय उवाच ॥ १ ॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः ।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम ॥ २ ॥
महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः ।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥ ३ ॥
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः ।
सुरथो नाम राजाऽभूत् समस्ते क्षितिमण्डले ॥ ४ ॥
तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तथा ॥ ५ ॥
तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः ।

करता हूँ। उन्होंने अपने दसों हाथों में खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डी, मस्तक और शङ्ख धारण किये हैं। उनके तीन नेत्र हैं और समस्त अङ्गों में दिव्य आभूषण सुशोभित हैं। उनके शरीर की कान्ति नील-मणि के समान है। उन्हें दस मुख और दस पैर हैं।

मार्कण्डेय जी बोले—॥ १ ॥

सूर्य के पुत्र सावर्णि जो अष्टम मनु कहे जाते हैं, उनकी उत्पत्ति विस्तारपूर्वक मैं कहता हूँ, सुनो ॥ २ ॥

विष्णु की आदि शक्ति महामाया के अनुग्रह से सूर्य के पुत्र महान् भक्त सावर्णि जैसे मन्वन्तर के राजा हुए (उसे भी कहता हूँ, सुनो) ॥ ३ ॥

पहले स्वारोचिष द्वितीय मन्वन्तर में चैत्र वंश में उत्पन्न सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य करने वाला सुरथ नाम का राजा हुआ ॥ ४ ॥

उस समय औरस पुत्रों की तरह सम्पूर्ण प्रजाओं का पालन करने वाले राजा सुरथ के कोलाविध्वंसी नामक क्षत्रिय वंश में उत्पन्न राजा लोग शत्रु हो गए ॥५॥

उन कोलाविध्वंसियों के साथ अतिशक्तिशाली तथा गज-घोड़े आदि वाहन से

न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥ ६ ॥
ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् ।
अक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥ ७ ॥
अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ ८ ॥
ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः ।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ ९ ॥
स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः ।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥१०॥
तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः ।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन् मुनिवराश्रमे ॥११॥

युक्त राजा सुरथ का युद्ध हुआ। यद्यपि कोलाविध्वंसी क्षत्रियों की संख्या न्यून थी, तो भी राजा सुरथ उनसे पराजित हो गया ॥ ६ ॥

पराजित हो जाने के बाद मूल राजधानी में आकर केवल अपने देशमात्र का राजा होकर रहने लगा, परन्तु वहाँ भी प्रबल शत्रुओं के द्वारा आक्रान्त हुआ ॥७॥

अपने नगर में भी दुरात्मा मंत्रियों ने उसको नितान्त निर्बल समझ तथा शत्रुओं के साथ मिलकर वहाँ उनकी राजधानी का कोष और सैन्य आदि छीन लिया ॥ ८ ॥

तब राजा सुरथ अपने आधिपत्य से वञ्चित होकर शिकार खेलने के बहाने घोड़े पर सवार होकर अकेले ही एक सघन वन को चला गया ॥ ९ ॥

वहाँ पर उसने द्विजों में श्रेष्ठ मेधा ऋषि के आश्रम को देखा जो मुनि के शिष्यों से अलंकृत एवं हिंसावृत्ति से मुक्त हिंसक पशुओं से व्याप्त था ॥ १० ॥

वहाँ राजा सुरथ ने मेधा ऋषि से पूजित होकर एवं इधर-उधर भ्रमण करते हुए उन्हीं मुनिवर के श्रेष्ठ आश्रम में कुछ कालतक निवास किया ॥ ११ ॥

सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः ।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥१२॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा ।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ॥१३॥
मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते ।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ॥१४॥
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ।
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ॥१५॥
संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति ।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ॥१६॥
तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः ।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥१७॥

वहाँ ममता से आकृष्ट मन होकर राजा अपने नगर और प्रजा के विषय में सोचने लगा, कि जिस नगर का मेरे पूर्वजों ने पालन किया था, वह अब मुझ से रहित हो गया ॥ १२ ॥

नहीं मालूम, मेरे दुराचारी सेवकगण धर्मपूर्वक उसकी रक्षा करते हैं या नहीं। मेरा मतवाला शूर हाथी शत्रुओं के वश में पड़कर न जाने किन-किन भोगों को भोगता होगा। जो नौकर मेरी प्रसन्नता के कारण धन और भोजन पाने से सदा मेरे अनुगामी थे, वे निश्चय ही अब दूसरे राजाओं की सेवा करते होंगे। वह कोश जो बहुत ही कष्ट से संचित किया गया था, उसे अब मेरे भृत्यगणों ने व्यर्थ खर्च करके खाली कर दिया होगा। इस प्रकार और भी कई बातों की राजा सुरथ और भी चिन्ता करने लगा ॥ १३–१६ ॥

एक दिन राजा को आश्रम के पास एक वैश्य दिखाई पड़ा। राजा ने उससे पूछा—तुम कौन हो और यहाँ आने का क्या कारण है? ॥ १७ ॥

सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥१८॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥१९॥

वैश्य उवाच ॥ २० ॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥२१॥
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ॥२२॥
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ॥२३॥
प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः ।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ॥२४॥
कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ॥२५॥

राजोवाच ॥ २६ ॥

तुम चिन्तित और उदास क्यों दिखाई पड़ते हो ? राजा का यह विनम्र वचन सुनकर वैश्य ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया ॥ १८–१९ ॥

वैश्य ने कहा—॥ २० ॥

मैं समाधि नाम का वैश्य हूँ। मेरा जन्म धनिकों के कुल में हुआ है ॥२१॥

धन के लोभ से दुष्ट मेरे स्त्री-पुत्रों ने मेरा सर्वस्व छीनकर मुझे घर से निकाल दिया है। मैं इस समय धन तथा स्त्री-पुत्र से विहीन हूँ ॥ २२ ॥

मैं स्वजनों से रहित तथा दुःखी होकर इस वन में चला आया। अब मुझे उन स्त्री-पुत्र एवं बान्धवों के कुशल या अकुशल का कुछ भी पता नहीं है ॥२३॥

यहाँ रहने के कारण मैं अपनी स्त्री, पुत्र और स्वजनों की परिस्थिति को भी नहीं जानता कि वे इस समय अपने घर में सुखी हैं या दुःखी और मेरे पुत्रों का आचरण अच्छा है या नहीं ॥ २४–२५ ॥

राजा ने कहा—॥ २६ ॥

यैर्निरस्तो भवांल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ॥२७॥
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥२८॥

वैश्य उवाच ॥ २९ ॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ॥३०॥
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ।
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ॥३१॥
पतिस्वजनहार्दं च हार्दितेष्वेव मे मनः ।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ॥३२॥
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ॥३३॥
करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥३४॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ३५ ॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ॥३६॥

जिन लोभी स्त्री-पुत्रों ने धन के लोभ से आपको घर से निकाल दिया है, उन्हीं लोगों के प्रति आपका मन स्नेह से क्यों आकृष्ट हो रहा है ॥ २७-२८ ॥

वैश्य ने कहा— ॥ २९ ॥

आपने मेरे विषय में जो बातें कही हैं, वे वास्तव में सत्य हैं। किन्तु मैं क्या करूँ, मेरे चित्त में किसी भी प्रकार की निष्ठुरता नहीं आती। जिन्होंने धन के लोभ से पिता के प्रति स्नेह, एवं अपने पति के प्रति प्रेम का त्याग कर मुझे घर से निकाल दिया है, उन्हीं के स्नेह में मेरा मन लगा है। हे महामते ! इसे जानकर भी मेरा मन उन्हीं निर्गुण बन्धुओं में क्यों स्नेह करता है, यह मैं नहीं जानता। उनके लिये मुझे शोक और चिन्ता भी होती है। क्या करूँ, उनमें प्रेम का अभाव होने पर भी मेरा मन कठोर नहीं होता ॥ ३०-३४ ॥

मार्कण्डेय जी बोले— ॥ ३५ ॥

ब्रह्मन् ! उसके बाद दोनों मिलकर उस (मेधा) मुनि के पास गये ॥३६॥

समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ॥३७॥
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥३८॥

राजोवाच ॥ ३९ ॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तद् ॥४०॥
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ।
ममत्वं मम राज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ॥४१॥
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ।
अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥४२॥
स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति ।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ॥४३॥

वहाँ जाकर समाधि नामक वैश्य और महाराज सुरथ मेधा नामक मुनि से न्यायपूर्वक यथोचित सम्भाषण करके बैठ गये तथा राजा और वैश्य ने कुछ वार्तालाप प्रारम्भ किया —॥ ३७–३८ ॥

राजा ने कहा— ॥ ३९ ॥

भगवन् ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, उसे कृपया बताइये ॥ ४० ॥

मेरा मन मेरे वश में नहीं है, इस बात का मुझे बड़ा दुःख है। गये हुए राज्य तथा अन्य सभी स्त्री, पुत्र, बान्धवों को मुझे अभी तक ममता बनी हुई है ॥ ४१ ॥

हे मुनिसत्तम ! यह जानते हुए भी ऐसा क्यों ? मेरा स्नेह उनके प्रति अज्ञानियों की तरह क्यों लगा रहता है। यह जो मेरे पास वैश्य है, इसे भी इसके बेटे, स्त्री, नौकर-चाकर तथा स्वजनों ने घर से निकाल दिया है, लेकिन इतने पर भी चित में उनका स्नेह बना है। हम दोनों इस विषय में बहुत दुःखी हैं ॥ ४२–४३ ॥

दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ।
तत्केनैतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥४४॥
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥४५॥

ऋषिरुवाच ॥ ४६

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥४७॥
विषयाश्च महाभाग यान्ति चैवं पृथक् पृथक् ।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ॥४८॥
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किन्तु ते न हि केवलम् ॥४९॥
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षीमृगादयः ।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ॥५०॥
मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ।

हे महाभाग ! उनलोगों की दुष्टता जानते हुए उसकी ममता हमलोगों के चित्त से नहीं जाती । इसका क्या कारण है कि हमलोग इन बातों को समझते हुए भी मूर्खों की तरह मोह में फँसे हैं । मोह तो अज्ञानियों को होना चाहिये, हमलोग ज्ञानवान् होकर भी क्यों मूर्खता करते हैं ॥ ४४-४५ ॥

ऋषि ने कहा— ॥ ४६ ॥

विषयों (रूप-रस आदि) के समझने का ज्ञान सभी को है ॥ ४७ ॥

हे महाभाग ! इसी प्रकार सभी का विषय भी अलग-अलग है । कोई प्राणी दिन में नहीं देखते, कोई रात्रि में ही नहीं देखते और किसी-किसी को तो दिन तथा रात्रि में समान ही सूझता है । सभी पुरुष ज्ञानयुक्त हैं, यह बात सत्य है । इसमें कोई भी सन्देह नहीं, किन्तु केवल मनुष्य ही ज्ञानी नहीं हैं, पशु, पक्षी मृगादि में भी ज्ञान होता है । विषयों का ज्ञान जैसा मनुष्यों को है वैसा ही पशु-पक्षियों को भी है । अतः साधारण ज्ञान में पशु-पक्षी भी मनुष्यों की भाँति ही हैं । ज्ञान होने

ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु ॥५१॥
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा ।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ॥५२॥
लोभात् प्रत्युपकाराय नन्वेते किं न पश्यसि ।
तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः ॥५३॥
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा ।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥५४॥
महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत् ।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवि भगवती हि सा ॥५५॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥५६॥
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।

पर भी इन पक्षियों को तो देखो, ये सब स्वयं क्षुधा से पीडित होने पर भी मोहवशात् अपने बच्चों की चोंच में कितने प्रेम से अन्न के दाने डाल रहे हैं हे राजन् ! तुम नहीं देखते हो कि ये मनुष्य ज्ञानी होते हुए लालचवश अपने किये हुए उपकार का बदला पाने के लिये पुत्रों की अभिलाषा करते हैं। (जब हमारी वृद्धावस्था आवेगी तब हमारा पालन-पोषण पुत्र करेगा)। यद्यपि उन सब में समझ की कमी नहीं हैं तथापि वे संसार की स्थिति रखनेवाले महामाया के प्रभाव से ममता रूपी भँवर तथा मोहरूपी गड्ढे में डाल दिये गये हैं ॥ ४८–५३ ॥

इसलिये इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। भगवान विष्णु की योगनिद्रारूप महामाया ही हैं, जिनके द्वारा यह विश्व मोहित हो रहा है। वे भगवती माहामाया देवी ज्ञानियों के चित्त को भी बलपूर्वक खींचकर मोह में डाल देती हैं। वे ही सारे चराचर विश्व की सृष्टि करती हैं और वे ही प्रसन्न होने पर

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥५७॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥५८॥

राजोवाच ॥ ५९ ॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान् ॥६०॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज ।
यत्स्वभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥६१॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥६२॥

ऋषिरुवाच ॥ ६३ ॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ॥६४॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥६५॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।

मनुष्यों को मुक्ति के लिये वरदान देती हैं। वे ही परा विद्या, मुक्ति का आदि कारण तथा सनातनी देवी हैं। वे ही सांसारिक बन्धनों का कारण तथा सभी ईश्वरों की भी अधीश्वरी हैं ॥ ५४-५८ ॥

राजा ने कहा— ॥ ५९ ॥

भगवन् ! आप जिसको माहामाया कहते हैं, वह देवी कौन हैं ? ब्रह्मन् ! उनका आविर्भाव कैसे हुआ ? उनका कार्य क्या-क्या है ? ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ! उन देवी का प्रभाव, स्वरूप, उत्पत्ति आदि सब वृत्तान्त मैं आप से सुनना चाहता हूँ ॥ ६०-६२ ॥

ऋषि ने कहा— ॥ ६३ ॥

वे नित्यरूपा हैं, सम्पूर्ण संसार उन्हीं का रूप है। वे संसार के सभी चराचर में व्याप्त हैं, तथापि उनका आविर्भाव विविध भाँति से होता है। वह मुझसे सुनो। वह भगवती जब देवताओं के कार्य की सिद्धि करने के लिये आविर्भूत होती हैं, तब अजन्मा होती हुई भी लोक में 'उत्पन्ना' अर्थात् उत्पन्न होनेवाली कहलाती हैं ॥ ६४–६५½ ॥

योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ।। ६६ ।।
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ।। ६७ ।।
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ।। ६८ ।।
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयः स्थितः ।। ६९ ।।
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ।। ७० ।।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ।। ७१ ।।

ब्रह्मोवाच ।। ७२ ।।

त्वं स्वाहात्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारस्वरात्मिका ।। ७३ ।।

कल्प के अन्त में जब सम्पूर्ण विश्व एक ही महासागर में निमग्न हो रहा था तथा भगवान् विष्णु योगनिद्रा में मग्न हो शेषनाग की शय्या पर शयन कर रहे थे । उसी समय मधु और कैटभ नामक दो भयानक असुर विष्णु के कान के मल से उत्पन्न होकर ब्रह्मा जी को मारने के लिये उद्यत हुए । भगवान् विष्णु के नाभिकमल में स्थित ब्रह्माजी उन दोनों भयङ्कर असुरों को अपनी ओर आते देखकर तथा विष्णु को सोए हुए जानकर एकाग्र चित्त हो उनको जगाने के लिए उनके नेत्रों मे निवास करनेवाली इस विश्व की अधीश्वरी, जगत् को धारण करनेवाली, संसार का पालन और संहार करनेवाली तथा तेज स्वरूप भगवान् विष्णु की अनुपम शक्ति उन्हीं योगनिद्रा देवी की स्तुति करने लगे ।।

ब्रह्माजी ने कहा—।। ७२ ।।

देवि ! तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वषट्कार (इन्द्र को यज्ञ का हिस्सा पहुँचानेवाला मंत्र) हो । अमृत भी तुम्हीं हो । अक्षरों में तीन प्रकार

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥ ७४ ॥
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ॥ ७५ ॥
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्स्यन्ते च सर्वदा ।
विसृष्टौ सृष्टिरुपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ॥ ७६ ॥
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥ ७७ ॥
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ॥ ७८ ॥
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥ ७९ ॥

की मात्रा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुतरूपा तुम्हीं हो । बिना स्वर की सहायता से जिसका स्पष्ट उच्चारण नहीं किया जा सकता है वह अर्धमात्रा व्यञ्जनरूपा तुम्हीं हो । तुम्हीं सन्ध्यारूपा हो, तुम्हीं गायत्रीरूपा हो, हे देवि ! तुम्हीं सबकी जननी हो ॥ ७३–७४½ ॥

तुम्हीं सारे विश्व को धारण करती हो, सृष्टि करती हो, पालन करती हो । पुनःप्रलय काल में उसका नाश भी करती हो । इस कारण हे जगन्माये ! इस जगत् की उत्पत्ति के समय तुम सृष्टिरूपा हो, पालन-काल में स्थितिरूपा हो तथा कल्पान्त के समय संहाररूप धारण करनेवाली हो ॥ ७५–७६½ ॥

तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति और महामोहरूपा हो । महादेवी और महासुरीरूपा भी तुम्हीं हो । तुम्हीं सत्व, रज, तम तीनों गुणों को उत्पन्न करनेवाली सबकी प्रकृति हो ॥ ७७–७८ ॥

भयङ्कर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तुम्हीं हो । तुम्हीं श्री ईश्वरी,

लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥ ८० ॥
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ।
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥ ८१ ॥
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ।
यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ॥ ८२ ॥
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ।
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पाताऽत्ति यो जगत् ॥ ८३ ॥
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ॥ ८४ ॥
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ॥ ८५ ॥

तुम्हीं ह्री एवं बोधस्वरूपा बुद्धि हो। लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति एवं क्षमारूपिणी भी तुम्हीं हो। तुम्हीं खड्ग, शूल, गदा, चक्र, शङ्ख, धनुप-बाण, भुशुण्डी एवं परिघधारिणी हो ॥ ७९–८०½ ॥

तुम्हीं सौम्या और सौम्यतरा हो, इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा अत्यधिक सुन्दरी हो। पर और अपर—सबसे परे रहनेवाली परमेश्वरी तुम्हीं हो ॥ ८१½ ॥

अखिलात्मिके देवि ! इस अनन्त कोटि ब्राह्मण्ड में जहाँ- कहीं भी जो कुछ सत्, असत् पदार्थ हैं, उन सबों की शक्तिस्वरूपा तुम्हीं हो। ऐसी हालत में तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है। जो इस जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन्हें भी जब तुमने निद्रा के अधीन कर लिया है, तब तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ? मुझको तथा भगवान् शङ्कर और भगवान् विष्णु को भी तुमने ही शरीर धारण करवाया है अतः तुम्हारी स्तुति करने की

मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ।
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥ ८६ ॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥ ८७ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ८८ ॥

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥ ८९ ॥
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ ९० ॥
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ॥ ९१ ॥
एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ ।
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥ ९२ ॥
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ।

किसमें शक्ति हो सकती है ? हे देवि ! तुम्हारे उदार-प्रभाव से ही मैंने तुम्हारी स्तुति की है । ये जो अतीव दुर्धर्ष मधु और कैटभ नामक दो असुर हैं, उन्हें मोह में डाल दो और विश्व के स्वामी भगवान् अच्युत को जगाओ और इन दोनों महासुरों को मारने के लिए उनके भीतर शक्ति विस्फुरित कर दो ॥ ८२-८७ ॥

ऋषि बोले—॥ ८८ ॥

इस प्रकार ब्रह्माजी की स्तुति करने पर तमोगुणमयी देवी मधु और कैटभ के वध के उद्देश्य से भगवान् विष्णु को जगाने के लिये विष्णु के नेत्र, मुखमण्डल, नासिका, बाहु, हृदय एवं वक्षःस्थल से निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी के सामने खड़ी हो गयीं ॥ ८९–९०$\frac{1}{2}$ ॥

योगनिद्रारूपी भगवती से मुक्त होकर जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु उस एकार्णव जल में शेषनाग की शय्या से जाग उठे और उन दोनों असुरों को देखा । वे दुष्ट मधु और कैटभ अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी थे । वे दोनों क्रोध से अपनी लाल-लाल आँखें किये हुए ब्रह्माजी को खाने के लिए उद्यत हो रहे थे ॥ ९१–९२$\frac{1}{2}$ ॥

समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥९३॥
पञ्चवर्षसहस्राणि वाहुप्रहरणो विभुः ।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥९४॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥९५॥

श्रीभगवानुवाच ॥ ९६ ॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥९७॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥९८॥

ऋषिरुवाच ॥ ९९ ॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥१००॥
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः ।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥१०१॥

ऋषिरुवाच ॥ १०२ ॥

तव भगवान् विष्णु ने उठकर उन दोनों के साथ पाँच हजार वर्ष तक केवल वाहु युद्ध किया। अतिबलशाली दोनो महासुरों को महामाया ने मोहित कर रक्खा था, इसलिये उन्होंने विष्णु भगवान् से कहा कि हम तुम्हारो वीरता से सन्तुष्ट हैं, तुम हमसे वर माँग लो ॥ ८९-९५ ॥

भगवान् विष्णु ने कहा—॥ ९६ ॥

यदि तुम दोनों मुझ पर प्रसन्न हो तो मेरे हाथ से ही तुम्हारी मृत्यु हो। अन्य वरदान की मुझे कोई भी आवश्यकता नहीं है, केवल यही वर मैं चाहता हूँ ॥ ९७-९८ ॥

ऋषि ने कहा—॥ ९९ ॥

जब वे दोनों इस प्रकार भगवान् के धोखे में आ गये तब सम्पूर्ण विश्व को जलमय देखकर बोले—जहाँ पृथ्वी पानी में डूबी न हो वहाँ हमको मारो ॥ १००-१०१ ॥

ऋषि बोले—॥ १०२ ॥

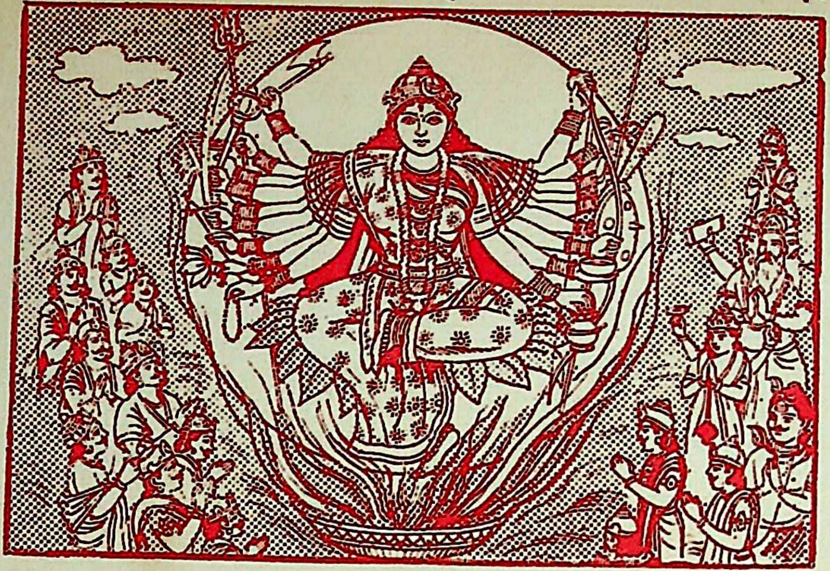
तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता ।
कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥१०३॥
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ॥ऐं ॐ॥१०४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
उवाच १४, अर्द्धश्लोकाः २४, श्लोकाः ६६,
एवमादितः ॥ १०४ ॥

तब तथास्तु कहकर शङ्ख, चक्र, गदा, धारण किये हुए भगवान् विष्णु ने उन दोनों की गर्दन अपनी जाँघ पर रखकर चक्र से काट डाली ॥ १०३ ॥

इस प्रकार महामाया ब्रह्माजी की स्तुति करने पर स्वयं प्रकट हुई थीं। अब पुनः उन देवी महामाया के प्रभाव को मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो ॥ १०४ ॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की
कथा के अन्तर्गत देवी माहात्म्य में 'मधु-कैटभवध' नामक
पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥



द्वितीयोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिर्महालक्ष्मीर्देवता उष्णिक् छन्दः शाकम्भरी शक्तिः दुर्गा बीजं वायुस्तत्त्वं यजुर्वेदः स्वरूपं श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः।

ध्यानम्—

ॐ अक्षस्रक्परशूं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

'ॐ ह्रीं' ऋषिरुवाच॥ १॥

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे॥ २॥

द्वितीय अध्याय—(देवताओं के तेजों द्वारा महामाया देवी का प्रादुर्भाव और महिषासुर की सेनाओं का विनाश।)

ध्यान—मैं कमलासन पर बैठी हुई प्रसन्नमुखवाली महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मी की यहाँ सेवा करता हूँ, जिसने अपने हाथों में रुद्राक्षमाला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, कमल, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शङ्ख, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और चक्र धारण किये हैं।

ऋषि ने कहा—पहले लगातार सौ वर्ष तक देव और दानवों में युद्ध हुआ। जिसमें महिषासुर[1] असुरों के एवं इन्द्र देवताओं के नायक थे॥ १–२॥

---

१. महिषासुर की उत्पत्ति—आज से कई हजार वर्ष पूर्व महिषासुर के पिता रम्भासुर ने पुत्रप्राप्ति की अभिलाषा से उत्तराखण्ड के सघन जंगल में घोर तपस्या की। अतिदयालु भगवान शङ्कर बहुत दिनों से भगवान विष्णु को

तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम् ।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः ॥ ३ ॥
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥ ४ ॥
यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ ५ ॥

उस युद्ध में महावीर्यशाली असुरों के द्वारा देवताओं की सेनाएँ परास्त हो गईं और सम्पूर्ण देवताओं को जीतकर महिषासुर स्वयं इन्द्र बन गया। तब हारे हुए देवगण ब्रह्माजी को आगे करके उस स्थान पर गये, जहाँ भगवान शङ्कर और विष्णु विराजमान थे। देवताओं ने सविस्तर अपनी पराजय तथा महिषासुर के प्रताप का यथाविधि सम्पूर्ण वृत्तान्त उन दोनों देवेशों से कह सुनाया ॥३-५॥

भगवती महामाया के सिंहरूप में वहनकार्य करते देख उन्हें वहनकार्य से मुक्त करने की इच्छा से उसी जंगल में दूसरे वाहन खोजने गये, जहाँ रम्भासुर भगवान शङ्कर के ध्यान में तल्लीन था। उसकी ओर तपस्या से अति प्रसन्न भगवान शङ्कर उसे देख वर देने को उद्यत हुए और कहे,—भक्त, तुम पर मैं प्रसन्न हूँ, तुम अपने अभिलषित वर माँग लो। शङ्कर जी के बार-बार कहने पर ध्यानसागर में अत्यन्त डूबा हुआ वह अपने नेत्र-पट को नहीं खोल सका। अन्त मे भगवान शंकर अपने सच्चे रूपों से उसके सामने प्रकट हुए तथा आश्वासन दिये, जिससे रम्भासुर के नेत्रपट खुले और अपने अभिलषित वर को माँगा। रम्भासुर के वर कालिका-पुराण में प्रसिद्ध हैं।

"अपुत्रोऽहं महादेव, यदि ते मय्यनुग्रहः ।
मम जन्मत्रये पुत्रो भवान् भवतु शङ्करः ॥
अवध्यः सर्वभूतानां जेता त्रिदिवौकसाम् ।
चिरायुश्चयशस्वी च लक्ष्मीवान् सत्यसङ्गरः ॥"

अर्थात् हे महादेव, मुझ पर यदि तुम प्रसन्न हो तो तुम्हीं तीन जन्म तक मेरे पुत्र होओ, जो कि प्राणीमात्र से न मारने वाला, देवताओं को जीतने वाला,

२४७ ॐ पद्मनयनायै नमः
२४८ ॐ पद्मरागसमप्रभायै नमः
२४९ ॐ पञ्चप्रेतासनासीनायै नमः
२५० ॐ पञ्चब्रह्मस्वरूपिण्यै नमः
२५१ ॐ चिन्मय्यै नमः
२५२ ॐ परमानन्दायै नमः
२५३ ॐ विज्ञानघनरूपिण्यै नमः
२५४ ॐ ध्यानध्यातृध्येयरूपायै नमः
२५५ ॐ धर्माधर्मविवर्जितायै नमः
२५६ ॐ विश्वरूपायै नमः
२५७ ॐ जागरिण्यै नमः
२५८ ॐ स्वपन्त्यै नमः
२५९ ॐ तैजसात्मिकायै नमः
२६० ॐ सुप्तायै नमः
२६१ ॐ प्राज्ञात्मिकायै नमः
२६२ ॐ तुर्यायै नमः
२६३ ॐ सर्वावस्थाविवर्जितायै नमः
२६४ ॐ सृष्टिकर्त्र्यै नमः
२६५ ॐ ब्रह्मरूपायै नमः
२६६ ॐ गोप्त्र्यै नमः
२६७ ॐ गोविन्दरूपिण्यै नमः
२६८ ॐ संहारिण्यै नमः
२६९ ॐ रुद्ररूपायै नमः

२२४ ॐ महासिद्ध्यै नमः

२२५ ॐ महायोगीश्वरेश्वर्यै नमः

२२६ ॐ महातन्त्रायै नमः

२२७ ॐ महामन्त्रायै नमः

२२८ ॐ महायन्त्रायै नमः

२२९ ॐ महासनायै नमः

२३० ॐ महायागक्रमाराध्यायै नमः

२३१ ॐ महाभैरवपूजितायै नमः

२३२ ॐ महेश्वरमहाकल्पमहाताण्डवसाक्षिण्यै नमः

२३३ ॐ महाकामेशमहिष्यै नमः

२३४ ॐ महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः

२३५ ॐ चतुःषष्ट्युपचाराढ्यायै नमः

२३६ ॐ चतुःषष्टिकलामय्यै नमः

२३७ ॐ महाचतुःषष्टिकोटियोगिनीगणसेवितायै नमः

२३८ ॐ मनुविद्यायै नमः

२३९ ॐ चन्द्रविद्यायै नमः

२४० ॐ चन्द्रमण्डलमध्यगायै नमः

२४१ ॐ चारुरूपायै नमः

२४२ ॐ चारुहासायै नमः

२४३ ॐ चारुचन्द्रकलाधरायै नमः

२४४ ॐ चराचरजगन्नाथायै नमः

२४५ ॐ चक्रराजनिकेतनायै नमः

२४६ ॐ पार्वत्यै नमः

सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च ।
अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ६ ॥
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि ।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥ ७ ॥
एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम् ।
शरणं च प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ ८ ॥
इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः ।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ ९ ॥
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः ।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ॥ १० ॥

महिषासुर ने सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्र, यम, वरुण एवं अन्यान्य सब देवताओं के अधिकारों को छीनकर स्वयं ही अधिपति बन गया है ॥ ६ ॥

उस दुरात्मा महिषासुर ने सभी देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया है, इसलिये वे पृथ्वी पर मनुष्यों की भाँति विचरण करते हैं। हे प्रभु, देवताओं के शत्रु महिषासुर का सब समाचार हमने कह सुनाया। अब हम लोग आपके शरणागत हैं। आप उसके वध का उपाय सोचें ॥ ७–८ ॥

इस प्रकार देवताओं की समस्त बातों को सुन कर भगवान विष्णु और शङ्कर अतिक्रुद्ध हुए, जिससे उनकी भौंहें कुटिल तथा मुख लाल हो गये। तब अत्यन्त क्रोधपूर्ण विष्णु, ब्रह्मा और शङ्कर भगवान के मुख-मण्डल से एक महान तेज निकला। इसी प्रकार अन्य सभी इन्द्रादि देवताओं के शरीर से भी बहुत

यशस्वी, दीर्घायु, श्रीमान् एवं दृढ़प्रतिज्ञ हो। शङ्कर जी के द्वारा 'एवमस्तु' कहने पर रम्भासुर अपने आसुरी स्वभाव के कारण कामोन्मत्त होकर रास्ते में ही एक महिषी पशु के साथ संभोग किया, जिसका परिणामस्वरूप भगवान शङ्कर को महिषासुर के रूप में आविर्भूत होना पड़ा।

अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः ।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥ ११ ॥
अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ १२ ॥
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥ १३ ॥
यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् ।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥ १४ ॥
सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत् ।
वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ॥ १५ ॥
ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा ।
वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका ॥ १६ ॥

तेज निकल कर सब एकत्रित हुए । उन तेजों का देदीप्यमान समुदाय, जो कि पर्वत के समान अत्यन्त ऊँचा था तथा जिसकी ज्वाला से व्याप्त दिशाओं क मध्यवर्ती देश थे, उस तेजोराशि को देवताओं ने देखा ॥ ९–१२ ॥

तब समस्त देवताओं के शरीर से निकला हुआ वह एकत्रित अतुल तेज अपने प्रकाश से तीनों लोकों को प्रकाशित करता हुआ एक स्त्री के रूप में परिणत हो गया । भगवान शङ्कर के तेज़ से महामाया का मुख, यमराज के तेज से उनके सिर के बाल एवं विष्णु के तेज से उनकी भुजाएँ आविर्भूत हुईं । दोनों स्तन चन्द्रमा के तेज से, शरीर के मध्यभाग इन्द्र के तेज से, जंघा तथा ऊरुदेश वरुण के तेज से और नितम्ब (स्त्री-कटि के पश्चात् भाग) पृथ्वी के तेज से प्रकट हुए । ब्रह्मा के तेज से दोनों चरण, सूर्य के तेज से चरणों की अँगुलियाँ, वसुओं के तेज से हाथों की अँगुलियाँ और कुबेर के तेज से नासिका प्रकट हुई ॥ १३–१६ ॥

तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा ।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ॥ १७ ॥
भ्रुवौ च संध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च ।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥ १८ ॥
ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ॥ १९ ॥
शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक् ।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाटय स्वचक्रतः ॥ २० ॥
शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः ।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥ २१ ॥
वज्रमिन्द्रः समुत्पाटय कुलिशादमराधिपः ।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥ २२ ॥
कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥ २३ ॥

प्रजापति के तेज से देवी के दाँत और अग्नि के तेज से तीनों नेत्र प्रकट हुए । सन्ध्या के तेज से भौहें, वायु के तेज से दोनों कान तथा अन्यान्य देवताओं के तेजों से शिवा देवी की उत्पत्ति हुई । तब समस्त देवताओं के तेज से उत्पन्न उस स्त्री रूप को देख कर महिषासुर द्वारा पीड़ित देवगण अत्यन्त आनन्दित हुए । तत्पश्चात् पिनाकपाणि महादेव अपने शूलास्त्र से एक शूल और भगवान विष्णु ने अपने चक्र से एक चक्र उत्पन्नकर उस भगवती को दिया । वरुण ने शंख, अग्नि ने शक्ति और वायु ने धनुष तथा बाण से भरे हुए दो तरकस दिये । सहस्रलोचन देवराज इन्द्र ने अपने वज्र से उत्पन्नकर एक वज्र तथा ऐरावत हाथी से घण्टा लेकर भगवती को प्रदान किया ॥ १७–२२ ॥

वरुण ने पाश, प्रजापति ने अक्षमाला और ब्रह्माजी ने कमण्डलु प्रदान

समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम् ॥ २४ ॥
क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे ।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥ २५ ॥
अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु ।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥ २६ ॥
अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च ।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥ २७ ॥
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम् ।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥ २८ ॥
अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम् ।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥ २९ ॥
ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ।

किया । सूर्य ने देवी के समस्त रोमकूपों में अपनी किरणें भर दीं । यमराज ने अपनी चमकती हुई ढाल तथा तलवार प्रदान की । क्षीरसागर ने निर्मल हार, सदा नूतन रहने वाले दो दिव्यवस्त्र, अतिमनोहर मुकुट, दो कुण्डल तथा अष्टादश भुजाओं के लिए अट्ठारह कंकण, मस्तक के लिए उज्ज्वल अर्धचन्द्र, सब बाहुओं के लिए बाजूबन्द, चरणों के लिए विमल पायल, गले के लिए सुन्दर हँसली तथा सब अंगुलियों में पहनने के लिए रत्नों से बनी अंगूठियाँ दीं । विश्वकर्मा ने उन्हें अत्यन्त निर्मल फरसा प्रदान किया । एवं विविध अस्त्र, अभेद्य कवच और मस्तक तथा वक्षःस्थल पर धारण करने योग्य सदा नवीन रहने वाली कमलों की मालाएँ दीं ॥ २३–२८ ॥

समुद्र ने उन्हें सुन्दर कमल का फूल तथा हिमालय ने सवारी के लिए सिंह और अनेकों प्रकार के रत्न प्रदान किये ॥ २० ॥

कुबेर ने मदिरा से भरा हुआ पीने के लिए एक लघुपात्र दिया । सब

शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥ ३० ॥
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥ ३१ ॥
सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥ ३२ ॥
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ॥ ३३ ॥
चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥ ३४ ॥
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ।
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥ ३५ ॥
संनद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥ ३६ ॥

सर्पों के राजा वासुकि ने, जो कि इस पृथ्वी को धारण किये हुए हैं, महामणि याने हीरकादि से जडित नागहार नामकी माला उस देवी को अर्पित किया। एवं अन्य देवताओं ने भी अनेक अस्त्र-शस्त्र तथा विविध भूषणों के द्वारा उन देवी को सम्मानित किया, जिससे अनेकों बार देवी उच्चस्वर से ठहठहाकर हँसी। उनकी भयंकर हँसी की आवाज से आकाश-मण्डल गूँज उठा ॥३०—३२॥

असम्भव एवं अति विशाल ऐसी प्रतिध्वनि हुई, जिससे सभी लोक क्षुभित हो गए और सारा समुद्र कम्पित हो उठा। पृथ्वी प्रकम्पित होने लगी और सभी पर्वत हिलने लगे। तब सभी देवगण उस सिंहवाहिनी देवी की जय-जयकार करने लगे। तथा मुनियों ने भी भक्तिभाव से विनम्र होकर उनकी प्रार्थना की। समस्त तीनों लोकों को संत्रस्त देखकर असुरगण अपने समस्त सैन्यों को अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित करके युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हुए। उस समय महिषासुर ने बड़े क्रोध में आकर कहा—'आह, यह क्या हुआ'। फिर वह सम्पूर्ण

अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ॥ ३७ ॥
पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥ ३८ ॥
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम् ।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ॥ ३९ ॥
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः ॥ ४० ॥
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः ।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ॥ ४१ ॥
अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥ ४२ ॥

असुरों से घिरकर उस सिंहनाद की ओर लक्ष्य करके दौड़ पड़ा और वहाँ उसने अपनी कान्ति से तीनों लोकों को व्याप्त करती हुई उस देवी को देखा ॥३३-३७॥

जो कि अपने चरणों के भार से पृथ्वी को दबा रही थी, माथे के मुकुट से आकाश-मण्डल को चिन्हित करती हुई धनुष की टंकार से समग्र पाताल लोकों को क्षुभित कर रही थी तथा अपनी सैकड़ों भुजाओं से समग्र दिशाओं को व्याप्तकर स्थित थी। इसके बाद उन देवी के साथ युद्ध आरम्भ हुआ। अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से सारी दिशाओं के मध्यवर्ती देश चमक उठे। उस युद्ध में चिक्षुर नाम का महासुर महिषासुर का सेनापति था ॥३८—४०॥

चामर नाम का असुर हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकों को साथ में लेकर और उदग्र नामक महासुर साठ हजार रथ के सहित सैनिकों को साथ में लेकर युद्ध करने लगा ॥ ४१ ॥

महाहनु नामक राक्षस एक करोड़ रथ तथा सैनिकों को साथ लेकर और असिलोमा असुर पाँच करोड़ सैनिकों को लेकर युद्ध करने लगे ॥ ४२ ॥

अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे ।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः ॥ ४३ ॥
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ।
बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥ ४४ ॥
युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ।
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥ ४५ ॥
युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ।
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥ ४६ ॥
हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥ ४७ ॥
युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ॥ ४८ ॥

बाष्कल नामक दैत्य साठ लाख असुरों को लेकर युद्ध-भूमि में युद्ध करने लगा । परिवारित नामक राक्षस अनेकों हाथी, सवार तथा घुड़सवार सैनिकों को लेकर और विडाल नामक दैत्य पचास करोड़ सैनिकों से सुसज्जित होकर युद्ध करने लगा । अन्यान्य भी बहुत से महासुर गण युद्ध क्षेत्र में रथ, हाथी और घोड़ों की सेना साथ में लेकर देवी के साथ युद्ध करने लगे । स्वयं महिषासुर भी उस रणक्षेत्र में करोड़ों रथ, हाथी और घोड़ों की सेना से परिवृत था । उस समय कोई दैत्य तोमर (गड़ासे की तरह एक पुराना अस्त्र), कोई भिन्दिपाल (वह जाली, जिसमें ढेला रखकर चिड़ियों या शत्रुओं पर फेंका जाता है), कोई शक्ति (एक प्रकार की प्राचीन बर्छी), कोई मुषल (मुद्गर), कोई खड्ग, कोई परशु (फरसा), और कोई पट्टिश (लघु खड्ग विशेष) आदि अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करते हुए युद्ध करने लगे । कुछ दैत्यों ने उन पर शक्ति का प्रहार किया तो कोई पाश फेंकने लगा ॥ ४३–४८ ॥

देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ।। ४९ ।।
लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ।
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ।। ५० ।।
मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ।
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेशरी ।। ५१ ।।
चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ।। ५२ ।।
त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ।। ५३ ।।
नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः ।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे ।। ५४ ।।

बहुत से राक्षसों ने तो खड्गप्रहार करके भगवती को मारने का प्रयास किया। देवी ने तो क्रोध में आकर खेल-खेल में ही अपने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा द्वारा दैत्यों की समस्त अस्त्र-शस्त्र की वर्षा को काट डाला और समस्त जगत की नियन्त्री अविकृतमुखवाली देवी, जिनकी स्तुति देव, ऋषि लोग करते थे, असुरों की देहों पर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगी। साथ ही देवी का वाहन सिंह ने भी क्रोध में आकर गर्दन के बालों को हिलाता हुआ असुरों की सेना में इस प्रकार घूमने लगा मानो वनों में दावानल फैल रहा हो। युद्धस्थल में युद्ध करती हुई भगवती ने जितने निश्वास छोड़े, वे सभी तत्काल सैकड़ों हजारों, गणों के रूप में प्रकट हो गए और परशु, भिन्दिपाल तलवार और पट्टिश आदि अस्त्र लेकर असुरों का सामना करने लगे ॥ ४९–५३ ॥

वे गण देवी के सामर्थ्य के द्वारा उत्कर्ष को प्राप्त करते हुए समस्त असुर-गणों को नाश करते हुए नगाड़े तथा शंख बजाने लगे। उस युद्धमहोत्सव में

मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे ।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिऋष्टिभिः ॥ ५५ ॥
खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥ ५६ ॥
असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥ ५७ ॥
विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥ ५८ ॥
केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ॥ ५९ ॥
श्येनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ।
केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥ ६० ॥
शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ।
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ॥ ६१ ॥

अन्य गण मृदङ्ग बजाने लगे और देवो ने त्रिशूल एवं गदा-शक्ति तथा ऋष्टि खड्ग आदि के द्वारा सैकड़ों महादैत्यों का संहार कर डाला। कितनों को घण्टे की दारुण आवाज से मूर्च्छित करते हुए भूमि पर मार गिराया। कितने ही दैत्य उनकी तीखी तलवार के घात से दो-दो टुकड़े हो गये। कतिपय दैत्य शूल से वक्षस्थल फट जाने के कारण पृथिवी पर गिर पडे। कुछ दैत्य प्राङ्गण में वाण समूहों की वृष्टि से हतोत्साह होकर ज्यों के त्यों खड़े रह गये ॥५४–५९ ॥

श्येन पक्षी की तरह दूसरे पक्षियों को झपटनेवाले तथा देवताओं को पीड़ा देनेवाले कितने ही दैत्यगण अपने प्राणों का परित्याग किया। कितने की बाहें छिन्न-भिन्न हो गयीं तथा कितने की गर्दनें कट गईं। कितने के सिर कट-कटकर गिरने लगे। कितने के शरीर के मध्य भाग विदीर्ण हो गये। कितने ही

एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः ।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ॥ ६२ ॥
कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः ।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥ ६३ ॥
कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥ ६४ ॥
पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा ।
अगम्या साऽभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ॥ ६५ ॥
शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः ।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥ ६६ ॥
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।

महासुर जाँघें कट जाने से धराशायी हो गये। कितने को देवी ने एक बाँह, एक पैर तथा एक नेत्रवाले बनाकर दो टुकड़ों में चीर डाला। कितने ही दैत्य मस्तक कट जाने पर भी गिरकर, फिर उठ-उठकर—केवल सिर-रहित कलेवर के रूप में अच्छे-अच्छे हथियार हाथ में लेकर देवी के साथ युद्ध करने लगे। कितने मस्तक-रहित धड़ युद्ध के बाजों की लय पर नाचते थे ॥ ६०–६३ ॥

कितने ही बिना सिर के धड़ हाथों में खड्ग, शक्ति तथा ऋष्टि (सूक्ष्म खड्ग) लिये एवं देवी को 'ठहरो ? ठहरो ?' यह आवाज करते हुए युद्ध के लिये ललकारते थे। जहाँ वह दारुण संग्राम हुआ था, वहाँ की पृथ्वी देवी के द्वारा गिराये गये रथ, हाथी, घोड़े और असुरों से इस तरह भर गई थी कि वहाँ जाना असम्भव सा हो गया था। दैत्य की सेनाओं के बीच हाथी, घोड़े और असुरों की देहों से जो रक्तस्राव हुआ था, वह मध्य में बड़ी-बड़ी नदियों के रूप में बहने लगा ॥ ६४–६६ ॥

जिस तरह तृण और लकड़ी की विशाल राशि को अग्नि थोड़े ही समय में भस्मसात् करदेता है, ठीक वैसे ही अम्बिका ने असुरों की विशाल सेना को

निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥ ६७ ॥
स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेशरः ।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥ ६८ ॥
देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः ।
यथैषां तुष्टुवुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ ॐ ॥ ६९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
उवाच १, श्लोकाः ६८, एवम् ६९,
एवमादितः १७३ ॥

क्षण भर में नष्ट कर दिया। उधर सिंह ने भी अपनी गर्दन के बालों को हिलाते हुए ऐसी गर्जना की, जिससे दैत्यों के शरीरों में मानो उनके प्राण चले जाते हों। वहाँ देवी के गणों ने भी उन महादैत्यों के साथ ऐसा युद्ध किया, जिससे आकाश में स्थित देवगण अतिसंतुष्ट होकर पुष्पों की वर्षा करने लगे ॥ ६७–६९ ॥

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी-माहात्म्य में 'महिषासुर की सेना का वध' नामक
दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६९–२ ॥

तृतीयोऽध्यायः

ध्यानम्—

ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम् ।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः ।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥ २ ॥
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः ।
यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥ ३ ॥
तस्यच्छित्त्वा ततो देवो लीलयैव शरोत्करान् ।

तृतीय अध्याय—(ससैन्य महिषासुर का वध ।)

ध्यान—जो सैकड़ों सूर्य की कान्ति के समान अपनी कान्ति से रक्त वस्त्र को धारण की हुई हैं । जिनके गले में मुण्डमालाएँ शोभा पा रही हैं । जिनके स्तनों पर रक्तचन्दन का लेप लगा हुआ है । जिसने अपने करकमलों से जयमालिका तथा अविद्या, अभय तथा वर नामक मुद्राएँ धारण की हुई हैं । जो तीन नेत्रों से मुखारविन्द की शोभा पा रही हैं । जिनके मस्तक पर चन्द्रमा के साथ रत्नजडित मुकुट बँधा है, और वे कमल के आसन पर स्थित हैं । ऐसी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

ऋषि ने कहा—महासुर सेनापति चिक्षुर उस सैन्य-समूहों का संहार होते देखकर क्रोध से अम्बिका के साथ युद्ध करने लगा । वह असुर देवी के ऊपर इस प्रकार बाणों की वर्षा करने लगा, जैसे मेघ सुमेरु पर्वत की चोटी पर जल वर्षाता हो । यह देख देवी ने अपने बाणों से शत्रु के समुदाय को

महिषासुर-वधः



जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ॥ ४ ॥
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥ ५ ॥
सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥ ६ ॥
सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि ।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥ ७ ॥
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन ।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥ ८ ॥
चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः ।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत ।

अनायास ही काटकर उसके घोड़े एवं रथ के सारथी को मार डाला। तथा तत्काल ही उस महासुर के धनुष और अत्यन्त ऊंचो ध्वजा को काट डाला तथा धनुष कट जाने पर उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों को अपने बाणों से बींध डाला ॥१–५॥

धनुष कट जाने पर तथा घोड़े एवं सारथी के नष्ट हो जाने पर रथ से रहित ढाल तथा तलवार धारण कर वह असुर गण देवी की ओर दौड़ पड़ा और तीक्ष्ण धार वाली तलवार से सिंह के मस्तक पर प्रहार करके बड़े वेग से देवी की बायीं भुजा पर प्रहार किया। हे राजन् ! जब वह तलवार देवी की भुजा पर पहुँचते ही टूट गयी, तब असुर ने क्रोध से लाल आँखे करके हाथ में त्रिशूल ग्रहण किया। उसके बाद महासुर ने भद्रकाली के ऊपर उस त्रिशूल को फेंका, वह त्रिशूल आकाश-पर्यन्त सूर्यमण्डल की तरह अपने तेजों से प्रज्वलित हो उठा ॥ ६–९ ॥

देवी ने भी उस त्रिशूल को अपनी ओर आते देख अपना त्रिशूल फेंका

तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च महासुरः ॥ १० ॥
हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥ ११ ॥
सोऽपि शक्तिमुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम् ।
हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥ १२ ॥
भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः ।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥ १३ ॥
ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः ।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥ १४ ॥
युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥ १५ ॥

और उस महासुर के त्रिशूल को सैकड़ों टुकड़े कर दिये तथा उस महासुर को भी मार दिया ॥ १० ॥

जब पराक्रमी सेनापति चिक्षुर मारा गया तब देवताओं को पीडा देनेवाला चामर नामक राक्षस हाथी पर सवार होकर आया ॥ ११ ॥

चामर दैत्यने देवी के रथपर शीघ्र ही शक्ति नामक हथियार को फेका, किन्तु देवी ने उसे हुँकारमात्र से ही आहत एवं निष्प्रभ करके जमीन पर गिरा दिया ॥ १२ ॥

शक्ति को टूटकर गिरते देख चामर ने क्रोधित हो अपना त्रिशूल फेका, देवी ने उसे भी अपने बाणों से काट डाला ॥ १३ ॥

तदनन्तर देवी का वाहन सिंह उछलकर चामर के हाथी के मस्तक पर चढ़ बैठा और उस असुर से मल्लयुद्ध करने लगा ॥ १४ ॥

उसके बाद चामर युद्ध और सिंह दोनों लड़ते-लड़ते हाथी से पृथ्वी पर उतरकर क्रोधित हो भयंकर प्रहार के द्वारा अतिघोर युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा ।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥ १६ ॥
उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः ।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥ १७ ॥
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।
वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥ १८ ॥
उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् ।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥ १९ ॥
बिडालस्यासिना कायात् पातयामास वै शिरः ।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ २० ॥
एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः ।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान् ॥ २१ ॥

उसके बाद सिंह ने बड़े वेग से आकाश की ओर उछला और नीचे उतरकर अपने पञ्जों की मार से चामर का मस्तक धड़ से अलग कर दिया ॥ १६ ॥

उधर उदग्र नामक असुर को देवी ने रणक्षेत्र में पत्थर, वृक्ष आदि से मार डाला। कराल नामक राक्षस सिंह के दाँतों, मुक्कों और पत्थरों के प्रहार से धराशायी हो गया ॥ १७ ॥

देवी ने क्रुद्ध होकर गदा के प्रहार से उद्धत नामक दैत्य को चूर्ण-चूर्ण कर दिया। भिन्दिपाल (ढेलवाँस या गोफल) से वाष्कल तथा अन्धक को और ताम्र नामक दैत्य को बाणों से मार दिया ॥ १८ ॥

तीन नेत्रवाली परमेश्वरी ने त्रिशूल से उग्रास्य, उग्रवीर्य एवं महाहनु नामक असुरों को भी उसी भाँति मार डाला ॥ १९ ॥

तलवार से विडालासुर के मस्तक को शरीर से अलग गिरा दिया तथा दुर्द्धर और दुर्मुख नामक दोनों असुरों को बाणों द्वारा यमराज के घर पहुँचाया ॥२०॥

इस प्रकार अपनी सेनाओं का विनाश होते देख महिषासुर ने तब भैंसे का रूप धारण कर देवी के गणों को भय देना प्रारम्भ कर दिया ॥ २१ ॥

काांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान् ।
लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान् ॥ २२ ॥
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च ।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥ २३ ॥
निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः ।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ॥ २४ ॥
सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः ।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥ २५ ॥
वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत ।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥ २६ ॥
धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः ।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥ २७ ॥

कुछ गणों को थूथुन के प्रहार से, कुछ को खुरों से, कुछ को पूंछ की झटकार से और कुछ को सींगों की टक्कर से मारने लगा ॥ २२ ॥

किसी को तेज से दौड़कर, किसी को गर्जना करके, कुछ को भ्रमण तथा श्वास के तीक्ष्ण वायु से धराशायी कर दिया ॥ २३ ॥

उस महिषासुर ने दुष्टों को सताने वाले देवी के गणों की सेनाओं को गिराकर जब देवी के वाहन सिंह को मारने के लिये दौड़ा, तब देवी अति क्रुद्ध हो उठीं ॥ २४ ॥

उधर बलवान महिषासुर भी क्रोध करके खुरों से धरती को खोदता हुआ, अपने सींगों से ऊंचे-उंचे पर्वतों को फेकता हुआ गरजने लगा ॥ २५ ॥

उसके वेग के साथ चक्कर देने से पृथ्वी क्षुब्ध होकर फट गयी और पूंछ से टकराकर समुद्र चारों ओर पृथ्वी को डुबोने लगा ॥ २६ ॥

कम्पित सींगों के द्वारा विदीर्ण होकर मेघ समुदाय टुकड़े-टुकड़े हो गये । उसके श्वास की प्रचण्ड वायु से सैकड़ों पर्वत आकाश से गिरने लगे ॥ २७ ॥

इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम् ।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥ २८ ॥
सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् ।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥ २९ ॥
ततः सिंहोऽभवत् सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः ।
छिनत्ति तावत् पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥ ३० ॥
तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः ।
तं खड्गचर्मणा सार्द्धं ततः सोऽभून्महागजः ॥ ३१ ॥
करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च ।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥ ३२ ॥
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः ।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार क्रोध से गरजता हुआ महिषासुर को अपनी ओर आते देख चण्डिका को बहुत क्रोध हुआ और उन्होंने (वारुण नामक) पाश को फेंककर महिषासुर को बाँध लिया। पाश में बंध जाने पर उसने भैंसे का रूप छोड़कर सिंह का रूप धारण कर लिया। देवी जब उसका सिर काटने लगीं तब वह हाथ में खड्ग लेकर पुरुष रूप से दिखाई पड़ने लगा ॥ २८–३० ॥

तदनन्तर देवी ने बाणों के द्वारा ढाल, तलवार आदि से उस पुरुषाकार दैत्य को बेध डाला, तब वह महान् गजराज के रूप में प्रकट हो गया और भगवती के महासिंह को अपनी विशाल सूँड़ से खींचता हुआ गरजने लगा। तब देवी ने अपनी तलवार से उसकी सूंड को काट डाला ॥ ३१–३२ ॥

तब वह महिषासुर फिर भैंसे का शरीर धारण कर लिया और तीनों लोकों के चराचरों को पहले की भाँति क्षुब्ध करने लगा ॥ ३३ ॥

ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् ।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ।। ३४ ।।
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः ।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ।। ३५ ।।
सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः ।
उवाच तं महोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ।। ३६ ।।

देव्युवाच ।। ३७ ।।

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम् ।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ।। ३८ ।।

ऋषिरुवाच ।। ३९ ।।

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम् ।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ।। ४० ।।

तब जगन्माता चण्डिका देवी क्रोधित होकर बार-बार अत्युत्तम सुरापान करने लगीं और लाल-लाल आँखे करके हसने लगीं ।। ३४ ।।

उधर बल, पराक्रम एवं अभिमान से उन्मत्त हुआ वह महिषासुर भी गरजने गा और अपने सिंग से चण्डिका के ऊपर पहाड़ों को फेकने लगा ।। ३५ ।।

तब चण्डिका उन पहाड़ों को चूर्ण करती हुई अस्पष्ट शब्द से उसको कहने लगीं, । उस समय उनका मुखमण्डल सुरा पीने के कारण अत्यन्त लाल हो गया था ।। ३६ ।।

देवी ने कहा—रे मूढ़ ? जब तक मैं सुरा न पीलूं तब तक खूब गरज ले । यहीं पर मेरे हाथ से तेरी मृत्यु होजाने पर शीघ्र ही देवतालोग गर्जना करेंगे ।। ३७–३८ ।।

ऋषि ने कहा—इतना कहकर देवी उस महिषासुर के ऊपर चढ़ गईं और अपने पैर से उसे दबाकर शूल से उसके कण्ठ में आघात करने लगीं ।।३९-४०।।

ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः ।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृत्तः ॥ ४१ ॥
अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः ।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥ ४२ ॥
ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् ।
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥ ४३ ॥
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः ।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमहात्म्ये
महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
उवाच ३, श्लोकाः ४१, एवम् ४४,
एवमादितः ॥ २२७ ॥

तब उनके पैर से दबकर महिषासुर ने ज्यों ही अपने मुख से दूसरा शरीर निकालने लगा, त्यों ही उसके आधे शरीर बाहर निकलते ही देवी ने अपने पराक्रम से उसे रोक दिया ॥ ४१ ॥

आधे शरीर निकलने पर भी महिषासुर ने देवी से युद्ध करने लगा । अन्त में देवी ने अपनी तलवार से उसके सिर को काट डाला ॥ ४२ ॥

तब हाहाकार करती हुई दैत्यों की सेनाएँ भाग गईं और उधर देवतागण अत्यन्त प्रसन्न हो उठे ॥ ३४ ॥

तथा दिव्य महर्षियों के साथ सभी देवगण भगवती की प्रार्थना करने लगे । गन्धर्व राज गाने लगे तथा अप्सरायें नाचनें लगीं ॥ ४३–४४ ॥

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी-महात्म्य में 'महिषासुर वध' नामक
तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

ध्यानम्—

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

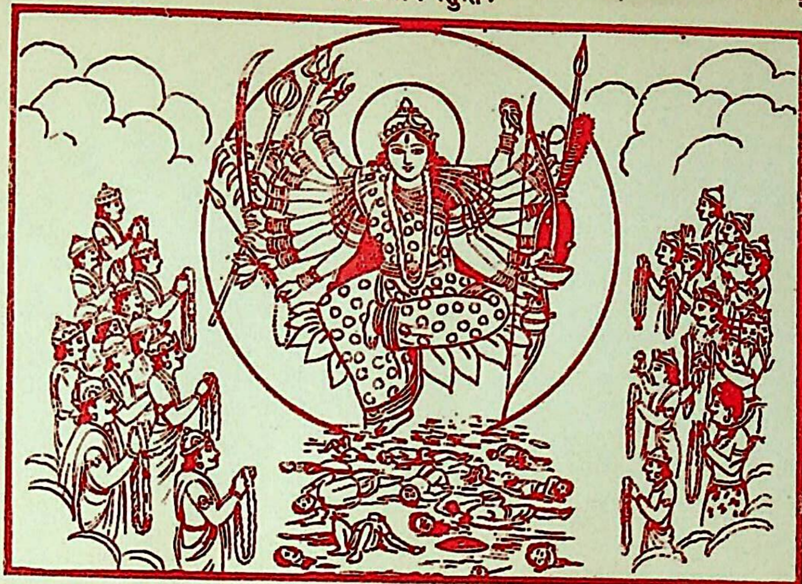
शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन् दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ २ ॥

ध्यान का अर्थ—जिनके अङ्गों की कान्ति मेघ के समान श्याम है। अपने कटाक्षों से शत्रुगण को भयप्रदान करती हैं। जिसके मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की रेखा पाई जाती है। अपने हाथों में शंख, चक्र, कृपाण एवं त्रिशूल धारण करती हैं। जिनके तीन नेत्र हैं। जो सिंह के कन्धे पर सवार हैं तथा अपने तेज से तीनों लोकों को व्याप्त करती हैं। जो सिद्धि की इच्छा करनेवाले मानव के द्वारा सेवित हैं एवं देवताओं के द्वारा सब ओरों से घिरी हुई हैं। उन जया नाम की दुर्गा का ध्यान करना चाहिये।

मेघा ऋषि ने कहा—॥ १ ॥

(हे सुरथ) जब महापराक्रमी दुष्टात्मा महिषासुर और उनकी सेनाओं को देवी ने मार डाला, तब इन्द्र आदि देवता सिर और शरीर को झुकाकर, हर्ष से पुलकित होकर, सुकोमल वाक्यों से भगवती की प्रार्थना करने लगे ॥ २ ॥

श्रीशक्रादि-स्तुतिः



(देवा ऊचुः)

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥ ३ ॥
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥ ४ ॥
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ ५ ॥

देवता बोले—जो देवी अपनी शक्ति से सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर रही हैं, जो सब देवताओं की शक्ति से आविर्भूत हुई हैं, जिनकी पूजा समस्त देवगण तथा महर्षिगण करते हैं, ऐसी देवी को हम लोग भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं, वे हम लोगों का कल्याण करें ॥ ३ ॥

जिनके अतुलनीय प्रभाव एवं बल का वर्णन ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश भी करने में असमर्थ हैं, वे चण्डिका सम्पूर्ण संसार का भरण-पोषण एवं सभी अशुभ भय का विनाश करने की इच्छा करें ।

जो देवी पुण्यात्माओं के घरों में लक्ष्मी रूप से, पापियों के घरों में अलक्ष्मी (दरिद्रा) रूप से, निर्मलबुद्धिवाले व्यक्तियों के हृदय में बुद्धिरूप से, सज्जनों के हृदय में श्रद्धारूप से और सत्कुलोद्भूत व्यक्तियों में लज्जारूप से निवास करती हैं, उन देवी को हम नमस्कार करते हैं । हे देवि ! आप विश्व का पालन करें ।।५।।

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि ।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ।। ६ ।।

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ।। ७ ।।

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि ।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ।। ८ ।।

हे देवि ! तुम्हारे इस अचिन्त्य रूप का, असुरों का विनाश करनेवाली शक्ति का तथा समस्त देवताओं और दैत्यों के समक्ष युद्ध में प्रकट किये गये अद्भुत चरित्रों का हम लोग किस प्रकार वर्णन करें, अर्थात् आपके गुणों के वर्णन करने की शक्ति हम लोगों में नहीं है ।। ६ ।।

तुम समस्त जगत का कारण हो । सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण से युक्त हो, तथापि तुम में दोषों का लेश भी नहीं दिखाई पड़ता । ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तुम्हारा पार नहीं पा सकते । तुम ही सबका आधारभूता हो । सारा जगत तुम्हारा ही अंशभूत है । तुम ही अव्याकृत तथा परम प्रकृत आदि शक्ति हो ।। ७ ।।

हे देवि ! यज्ञ में जिसका उच्चारण करने से देवताओं की तृप्ति होती है, एवं पितृगण जिससे तृप्त होते हैं वह "स्वाहा" और "स्वधा" रूप तुम ही हो । इसी लिए लोग तुम को स्वाहा और स्वधा के रूप में उच्चारण करते हैं ।। ८ ।।

या मुक्तिहेतुविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥ ९ ॥
शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥ १० ॥
मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा ।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥ ११ ॥

हे देवि ! तुम ही मोक्ष प्राप्ति का कारण तथा अचिन्त्य ब्रह्मज्ञान रूप हो। समस्त दोषों से रहित, तत्त्व के सार को जानने वाले जितेन्द्रिय तथा मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले मुनिगण जिसका अभ्यास करते हैं, वह भगवती परा विद्या रूपा तुम ही हो ॥ ९ ॥

हे देवि ! तुम शब्द रूपिणी हो, अतः तुम उद्गीय एवं रमणीय पद-पाठ-विशिष्ट ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद का आश्रय हो। तुम ही वेदमाता और ऐश्वर्य से युक्त हो। प्राणीमात्र की आजीविका तथा संसार के दुःखों को दूर करनेवाली तुम ही हो ॥ १० ॥

हे देवि ! सब शास्त्रों का मर्म जाननेवाली मेधा तुम ही हो। तुम दुर्गम भवसागर की नौका रूपी दुर्गा हो। तुम्हारी कहीं भी आशक्ति नहीं है। कैटभ को विनाश करने वाले भगवान् विष्णु के हृदय में वास करनेवाली लक्ष्मी और भगवान् चन्द्रशेखर द्वारा सम्मानित गौरी तुम ही हो ॥ ११ ॥

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान् मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥ १३ ॥
देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥ १४ ॥

अत्युत्तम सुवर्ण की मनोहर कान्ति से सुशोभित, ईषद् हास्य से युक्त, पूर्णचन्द्रमा के बिम्ब का अनुकरण करनेवाले तुम्हारे मुखमण्डल को देखकर ही क्रोधित महिषासुर ने तुम्हारे ऊपर प्रहार किया था, यह बड़े ही आश्चर्य की बात है ॥ १२ ॥

हे देवि ! वही मुख जब क्रोध से युक्त होनेपर उदयकालीन चन्द्रमा की भाँति लाल एवं तनी हुई भौंहों के कारण विकराल हो उठा, तब उसे देखकर महिषासुर ने तुरन्त ही अपने प्राणों को क्यों नहीं परित्याग कर दिया, यह उससे भी अधिक आश्चर्य की बात है, क्योंकि कुपित आप के मुख को देखकर कौन जीवित रह सकता है ? ॥ १३ ॥

हे देवि ! आप प्रसन्न हों ? परमात्मा स्वरूपा आपके प्रसन्न होने से ही विश्व का कल्याण होगा और कुपित होने पर अनेकों कुलों का विनाश हो जायगा । यह बात अभी ही मालूम हो चुकी है कि आपने क्रुद्ध होकर महिषासुर की बहुत बड़ी सेना का विनाश कर दिया है ॥ १४ ॥

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥ १५ ॥

धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति ।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥ १६ ॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥ १७ ॥

हे देवि ! सदा अभ्युदय प्रदान करनेवाली आप जिन पर प्रसन्न रहती हैं, वे धन्य हैं। उन्हीं का सभी देशों में सम्मान होता है, उन्हीं को धन और यश मिलता है, उन्हीं का धर्म सुरक्षित रहता है और वे ही अपने हृष्ट-पुष्ट स्त्री, पुत्र और भृत्यों के साथ धन्य माने जाते हैं ॥ १५ ॥

हे देवि ! जिन पुण्यात्माओं पर आप प्रसन्न रहती हैं, वे आपकी दया से, सदा बड़ी श्रद्धा से नित्य-नैमित्तिक धर्मादिक कार्य करते हैं तथा आपकी दया से अन्त में उनको स्वर्ग मिलता है। इसलिये तीनों लोकों में फल देने वाली आप ही हैं ॥ १६ ॥

हे मा दुर्गे ! आप स्मरण करने पर सब प्राणियों के भय को दूर कर देती हैं। स्वस्थ पुरुषों द्वारा स्मरण करने पर उन्हें उत्तम बुद्धि देती हैं। हे दुःख, दरिद्रता और भय को हरनेवाली देवि ! आपके अलावा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सभी के उपकार करने के लिये दयार्द्र रहता हो ॥ १७ ॥

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥ १८ ॥

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥ १९ ॥

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥ २० ॥

हे देवि ! इन असुरों का विनाश करने से संसार में सुख हो और ये असुर नरक में रहने के निमित्त भले ही पाप करते हों, किन्तु युद्ध में मरकर इनको स्वर्ग मिले यह विचार कर ही आप इन असुरों को मारती हैं ॥ १८ ॥

हे देवि ! सभी दैत्यों को आप दृष्टि-ताप-मात्र से ही भस्म क्यों नहीं कर देतीं ? किन्तु इसमें भी एक रहस्य है। ये सभी शत्रु हमारे शस्त्र के प्रहार से निष्पाप होकर स्वर्ग को जायें इस प्रकार उनके प्रति भी आपका विचार उत्तम रहता है ॥ १९ ॥

आपकी तलवार की उग्र प्रभा-पुञ्ज और त्रिशूल के नोक की अत्यन्त चमक से चौंधियाकर उन राक्षसों की आँखें फूट नहीं गईं, इसका यही कारण था कि वे मनोहर किरणों से युक्त चन्द्रमा के समान आनन्द देनेवाले आपके मुख का दर्शन करते थे ॥ २० ॥

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥ २१ ॥

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥ २२ ॥

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा ।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥ २३ ॥

हे देवि ! आपका स्वभाव दुष्टों के दुराचार को नाश करने वाला है। आपका रूप अचिन्त्य तथा अनुपम है । आपका बल और पराक्रम तो उन दैत्यों का भी नाश करनेवाला है जो कि कभी देवताओं के पराक्रम को भी नष्ट कर दिये थे । इस प्रकार आपने अपने शत्रुओं पर भी दया की है ॥ २१ ॥

हे देवि ! आपके पराक्रम की उपमा किससे दी जा सकती है ? शत्रुओं को भय देनेवाला तथा दूसरों का मन हरनेवाला आपके समान किसका रूप है ? हे वरदे ! चित्त में दया और युद्ध में निष्ठुरता, यह दो बातें एक साथ आपमें ही देखी जाती हैं, आपके सिवा तीनों लोकों में कोई दूसरा ऐसा नहीं है ॥२२।

हे देवि! आपने युद्ध में शत्रुओं का विनाश करके तीनों लोकोंका परित्राण किया है । वे शत्रुगण भी आपके द्वारा युद्ध में मरकर स्वर्गगामी हुए हैं । हम लोगों का भी उद्धत असुर कुलजनित भय दूर हुआ है । अतः आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ २४ ॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ २५ ॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ २६ ॥
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ २७ ॥

ऋषिरुवाच ॥ २८ ॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥ २९ ॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता ।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥ ३० ॥

हे देवि ! शूल से हमारी रक्षा करो, हे अम्बिके ! तुम तलवार से, घण्टा की आवाज से तथा धनुष की टंकार से हमलोगों की रक्षा करो ॥ २४ ॥

हे चण्डिके ! पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में आप हमारी रक्षा करें । ईश्वरि ! अपने त्रिशूल को घुमाकर उत्तर दिशा में हमारी रक्षा करें ॥ २५ ॥

आपके जो सब सौम्य एवं भयानक रूप तीनों लोकों में विराजमान हैं, उनके द्वारा आप हमारी तथा संसार की रक्षा करें ॥ २६ ॥

हे अम्बिके ! खड्ग, शूल, गदा आदि जो शस्त्र आपके कर-पल्लवों में शोभा पा रहे हैं, उनके द्वारा हमारी सब ओर से रक्षा करें ॥ २७ ॥

ऋषि बोले—॥ २८ ॥

हे सुरथ, देवताओं ने जब नन्दन वन के दिव्य फूलों और चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओं से पूजन तथा दिव्य धूपों से धूपित करके बड़ी भक्ति से देवी की स्तुति की, तब जगद्धात्री भगवती प्रसन्न होकर बोलीं ॥ २९-३० ॥

देव्युवाच ॥ ३१ ॥

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥ ३२ ॥

देवा ऊचुः ॥ ३३ ॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ॥ ३४ ॥
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥ ३५ ॥
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥ ३६ ॥
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥ ३७ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ३८ ॥

देवी ने कहा—॥ ३१ ॥

हे देवगण ! मैं तुमलोगों की स्तुति एवं पूजन से प्रसन्न हूँ, अतएव तुमलोग अपने अभिलषित वर की प्रार्थना करो, वह मैं प्रेमपूर्वक देती हूँ ॥ ३२ ॥

देवताओं ने कहा—॥ ३३ ॥

हे देवि ! आपने हम लोगों की सब अभिलाषायें पूरी कर दीं, अब कुछ भी अवशिष्ट नहीं है ॥ ३४ ॥

क्योंकि हमलोगों के शत्रु महिषासुर को आपने मार डाला, किन्तु हे महेश्वरि ! यदि आप वर देना चाहती हैं तो, जब जब हमलोग आपका स्मरण करें तब-तब आप हमारी विपत्तियाँ दूर कर दें और हे प्रसन्न मुखि अम्बिके ! जो कोई आपके इन स्तोत्रों से आपकी स्तुति करे, उसे वित्त, ऋद्धि और वैभव देने के साथ ही साथ उसकी धन और स्त्री आदि सम्पत्ति को भी बढ़ावें । हे देवि ! सदा हम पर प्रसन्न रहें ॥ ३५–३७ ॥

ऋषि ने कहा—॥ ३८ ॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः ।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥ ३९ ॥
इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा ।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥ ४० ॥
पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत् ।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ४१ ॥
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥ ह्रीं ॐ ॥ ४२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
उवाच ५, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३५,
एवम् ४२ एवमादितः २५९ ॥

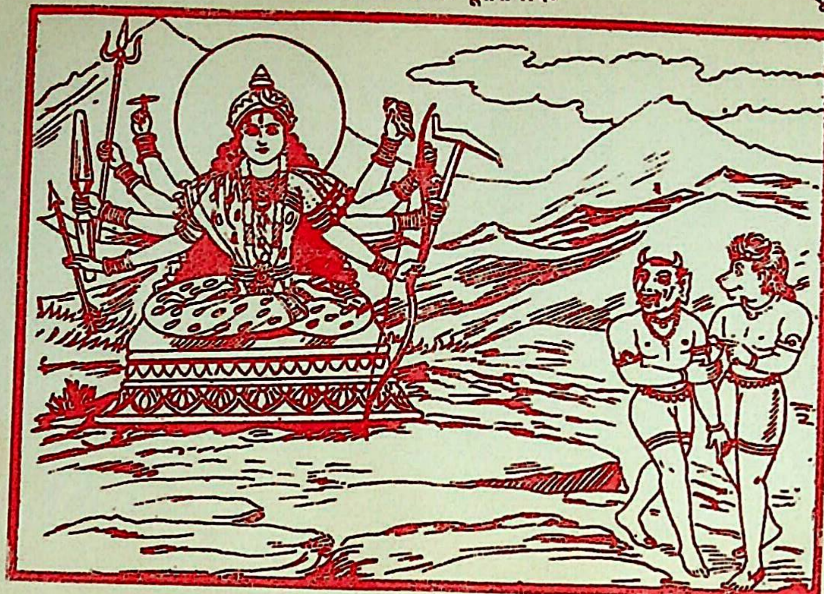
इस प्रकार अपने और सम्पूर्ण जगत् के लिये देवताओं के प्रार्थना करने पर भद्रकाली प्रसन्न होकर "एवमस्तु" कहकर अन्तर्धान हो गईं ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! तीनों लोकों का हित करनेवाली भगवती जिस प्रकार देवताओं के शरीर से उत्पन्न हुईं, वह वृत्तान्त हमने आपको सुनाया ॥ ४० ॥

उसके बाद फिर जिस प्रकार देवताओं का उपकार करनेवाली देवी शुम्भ-निशुम्भ आदि दुष्ट दैत्यों को मारने तथा सब लोगों की रक्षा करने के लिए गौरी के शरीर से उत्पन्न हुईं, वह वृत्तान्त भी विस्तार पूर्वक हमसे सुनो ॥ ४१-४२॥

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सवर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी-महात्म्य में शक्रादादि की स्तुति नामक
चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

श्री १०८ देव्याः दूतसंवादः



पञ्चमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीउत्तरचरित्रस्य रुद्रऋषिः, महासरस्वती देवता, अनुष्टुप् छन्दः, भीमा शक्तिः, भ्रामरी बीजम्, सूर्यस्तत्त्वम्, सामवेदः स्वरूपम् महासरस्वती-प्रीत्यर्थे उत्तरचरित्रपाठे विनियोगः ।

ध्यानम्—

ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥
'ॐ क्लीं' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः ।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥ २ ॥

(देवताओं द्वारा देवी की स्तुति, चण्ड-मुण्ड द्वारा अम्बिका के रूप की प्रशंसा सुनकर महासुर सुग्रीव को दूत बनाकर भेजना और उसका निराश होकर लौटना ।)

ध्यान का अर्थ—मैं उन महासरस्वती भगवती का भजन करता हूँ, जो अपने करकमलों में घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मूसल, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं। जिनकी कान्ति शरद ऋतु की शोभा से सुशोभित चन्द्रमा की तरह सुन्दर है। जो गौरी के शरीर से उत्पन्न हुई हैं तथा जो तीनों लोकों का आधार-स्वरूपा तथा शुम्भ और निशुम्भ का विनाश करने वाली है।

ऋषि ने कहा—॥ १ ॥

पहले शुम्भ और निशुम्भ नामक दो महासुरों ने गर्व एवं बल के कारण इन्द्र के तीनों लोकों के राज्य एवं यज्ञभाग को छीन लिया ॥ २ ॥

तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् ।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥ ३ ॥
तावेव पवनर्द्धि च चक्रतुर्वह्निकर्म च ।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥ ४ ॥
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥ ५ ॥
तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥ ६ ॥
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥ ७ ॥

देवा ऊचुः ॥ ८ ॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।

वे दोनों सूर्य, चन्द्र, कुवेर एवं वरुण के अधिकारों को छीनकर उपयोग करने लगे ॥ ३ ॥

वायु और अग्नि के कार्यभार को भी वे हरण कर लिये । इसके वाद देवताओं को अपमानित, राज्यभ्रष्ट, पराजित एवं अधिकारहीन करके स्वर्ग से निकाल दिये ॥ ४ ॥

तब असुरों से पराजित एवं अधिकारहीन देवताओं ने अपराजिता देवी का स्मरण किया । एवं सोचने लगे कि देवी ने पहले हमलोगों को वरदान दिया है कि मैं आपत्ति के समय स्मरण करने पर तुम्हारे सभी संकटों को तत्काल दूर कर दूँगी ॥ ५–६ ॥

यह सोचकर देवता पर्वतेश्वर हिमालय पर जाकर देवी विष्णुमाया की स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥

देवताओं ने कहा—॥ ८ ॥

देवी और महादेवी को हमारा नमस्कार है । शिवा को सदा नमस्कार है ।

नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ ९ ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ १० ॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ११ ॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ १२ ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ १३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै ॥१४॥ नमस्तस्यै ॥१५॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥

प्रकृति एवं भद्रा देवी को नमस्कार है। नियम पूर्वक हमलोग जगन्माता को नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥

रौद्रा (रुद्रस्वरूपा) नित्या, गौरी, धात्री, ज्योत्सना, इन्द्ररूपिणी और परमानन्दमयो देवी को निरन्तर नमस्कार है ॥ १० ॥

कल्याण करनेवाली, वृद्धि और सिद्धि देनेवाली भगवती को नमस्कार है। नैर्ऋति (राक्षसों की लक्ष्मी), देवी को नमस्कार है। राजाओं के यहाँ राजलक्ष्मी के रूप में निवास करनेवाली तथा शर्वाणी देवी को बार-बार नमस्कार है ॥ ११ ॥

दुर्गा, दुर्गपारा (संसार सागर से पार करनेवाली), सारा (सबकी सारभूता) सर्वकारिणी ख्याति (विख्यात रूपिणी), कृष्णा और धूमा देवी को सदा नमस्कार है ॥ १२ ॥

जो अति सौम्य तथा रौद्ररूपा हैं उस भगवती को नमस्कार है। जगत्प्रतिष्ठा और कृतिस्वरूपा भगवती को बार-बार नमस्कार है ॥ १३ ॥

जो देवी सब प्राणियों में विष्णुमाया के नाम से कही जाती हैं उनको वारम्बार नमस्कार है ॥ १४–१६ ॥

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै॥१७॥नमस्तस्यै॥१८॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १९ ॥

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥२०॥नमस्तस्यै॥२१॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥२३॥नमस्तस्यै॥२४॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २५ ॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥२६॥नमस्तस्यै॥२७॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २८ ॥

या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥२९॥नमस्तस्यै॥३०॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३१ ॥

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥३२॥नमस्तस्यै॥३३॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३४ ॥

जो देवी सब प्राणियों में चेतना कही जाती हैं, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥

जो देवी सब प्राणियों में बुद्धिरूपा से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ २०–२२ ॥

जो देवी सभी प्राणियों में निद्रा रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ २३–२५ ॥

जो देवी सभी प्राणियों में क्षुधा रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ २६–२८ ॥

जो देवी सब प्राणियों में छाया रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ २९–३१ ॥

जो देवी सब प्राणियों में शान्ति (क्षमा) रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ३२–३४ ॥

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥३५॥नमस्तस्यै॥३६॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥३८॥नमस्तस्यै॥३९॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४० ॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥४१॥नमस्तस्यै॥४२॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥४४॥नमस्तस्यै॥४५॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥४७॥नमस्तस्यै॥४८॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४९ ॥
या देवीं सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥५०॥नमस्तस्यै॥५१॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५२ ॥

जो देवी सब प्राणियों में तृष्णा रूप में स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ३५–३७ ॥

जो देवी सब प्राणियों में शान्तिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ३८–४० ॥

जो देवी सब प्राणियों में जाति रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४१–४३ ॥

जो देवी सब प्राणियों में लज्जा रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४४–४६ ॥

जो देवी सब प्राणियों में शान्ति रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४७–४९ ॥

जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ५०–५२ ॥

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥५३॥नमस्तस्यै॥५४॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥५६॥नमस्तस्यै॥५७॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५८ ॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥५९॥नमस्तस्य॥६०॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६१ ॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥६२॥नमस्तस्यै॥६३॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥६५॥नमस्तस्यै॥६६॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै॥६८॥नमस्तस्यै॥६९॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७० ॥

जो देवी सब प्राणियों में कान्ति रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ५३–५५ ॥

जो प्राणी सब प्राणियों में लक्ष्मी रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ५६–५८ ॥

जो देवी सब प्राणियों में वृतिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ५९–६१ ॥

जो देवी सब प्राणियों में स्मृति रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ६२–६४ ॥

जो देवी सब प्राणियों में दया रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ६५–६७ ॥

जो देवी सब प्राणियों में तुष्टिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ६८–७० ॥

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥७१॥नमस्तस्यै॥७२॥नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ७३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥७४॥नमस्तस्यै॥७५॥नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ७६ ॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥ ७७ ॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै॥७८॥नमस्तस्यै॥७९॥नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८० ॥
स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
स्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा न शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ ८१ ॥

जो देवी सब प्राणियों में माता रूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ७१-७३ ॥

जो देवी सब प्राणियों में भ्रांति रूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ७४-७६ ॥

जो देवी सब इन्द्रियों की ओर संसार भर के प्राणियों की अधिष्ठात्री हैं तथा सब प्राणियों में निरन्तर व्याप्त हैं, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ७७ ॥

जो देवी सम्पूर्ण संसार में चैतन्य रूप से व्याप्त होकर स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ७८-८० ॥

पूर्व समय में अपने अभीष्ट फल को पाने के लिए सभी देवताओं ने जिनकी स्तुति की थी, देवेन्द्र ने बहुत दिनों तक जिनकी सेवा की थी, वह सभी मंगलों की कारणभूता ईश्वरी हमारा कल्याण और मंगल करें तथा सभी आपत्तियों को नाश करें ॥ ८१ ॥

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ८२ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ८३ ॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥ ८४ ॥
साऽब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥ ८५ ॥
स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥ ८६ ॥
शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ ८७ ॥

प्रबल दैत्यों से कष्ट पाकर हम लोग जिनको प्रणाम करते हैं, जो भक्तिभाव से विनम्र पुरुषों द्वारा स्मरण करने पर तत्काल ही सभी आपत्तियों को नाश कर देती हैं, वे कल्याणकारिणी भगवती हमारी आपत्तियों को दूर करें ॥ ८२ ॥

ऋषि ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार जब देवतागण स्तुति कर रहे थे, उसी समय वहाँ पार्वती गङ्गाजल में स्नान करने के लिए आयीं ॥ ८३-८४ ॥

वे सुन्दर भौं वाली देवी ने देवताओं से कहा कि आप लोग जिसकी प्रार्थना कर रहे हैं, इतना कहते ही पार्वती जी के शरीरकोश से शिवा प्रकट होकर कहने लगीं ॥ ८५ ॥

इन समस्त देवताओं को शुम्भ ने स्वर्ग से निकाल दिया है और निशुम्भ ने परास्त कर दिया है, इस कारण ये सब मेरी प्रार्थना कर रहे हैं ॥ ८६ ॥

पार्वती देवी के शरीरकोश से अम्बिका देवी की उत्पत्ति हुई, इसलिए वे समस्त लोकों में कौशिकी नाम से प्रसिद्ध हुईं ॥ ८७ ॥

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती ।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥ ८८ ॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् ।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ८९ ॥
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा ।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥ ९० ॥
नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥ ९१ ॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥ ९२ ॥
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो ।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥ ९३ ॥

पार्वती के शरीर से जब कौशिकी निकल आयी, तब पार्वती काले रंग की हो गईं और कालिका नाम से प्रसिद्ध होकर हिमालय पर रहने लगीं ॥ ८८ ॥

तदनन्तर परम सुन्दरी अम्बिका देवी को शुम्भ और निशुम्भ के दूत चण्ड और मुण्ड ने देखा ॥ ८९ ॥

और दोनों ने शुम्भ से जाकर कहा कि हे महाराज ! अति सुन्दरी कोई स्त्री हिमालय को प्रकाशित कर रही है ॥ ९० ॥

हे असुरेश्वर ! उस स्त्री के समान परम सुन्दरी कहीं पर किसी ने नहीं देखा। आप पता लगाइये कि वह देवी कौन है और उसे ग्रहण कीजिये ॥ ९१ ॥

हे दैत्येन्द्र ! वह स्त्रियों में रत्नरूपा है । उसका प्रत्येक अंग बहुत सुन्दर है। वह अपनी कान्ति से सारी दिशाएँ प्रकाशित कर रही है । अभी वह हिमालय पर ही मौजूद है, आप देखना चाहें तो देख सकते हैं ॥ ९२ ॥

हे प्रभो ! तीनों लोकों में जितने रत्न, मणि, हाथी और घोड़े हैं, वे सब आपके पास मौजूद हैं ॥ ९३ ॥

ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात्।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥ ९४ ॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥ ९५ ॥
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात्।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥ ९६ ॥
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः ॥ ९७ ॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥ ९८ ॥
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥ ९९ ॥

आपने हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावत हाथी, घोड़ों में श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा घोड़ा और परिजात वृक्ष इन्द्र से छीन लिया है ॥ ९४ ॥

हंस से युक्त विमान आपके आंगन में रक्खा है। यह रत्न से जड़ित विमान पहले जो ब्रह्माजी के पास था, अब वह आपके यहाँ लाया गया है ॥ ९५ ॥

यह पद्म नामक निधि आपने कुवेर से छीन ली है। समुद्र ने भी आपको किञ्जल्किनी नाम की माला प्रदान की है, जिसके कमल कभी मुरझाते नहीं हैं ॥

सुवर्ण की वर्षा करने वाला वरुण का छत्र और प्रजापति का यह उत्तम रथ भी आपके यहाँ मौजूद है ॥ ९६-९७ ॥

आपने यमराज से उत्क्रान्ति (मृत्यु देने वाली) शक्ति छीन ली है। आपके भाई निशुम्भ ने भी वरुण का पाश और समुद्र के सभी रत्नों को छीन लिया है। अग्नि ने स्वतः शुद्ध कियेहुए दो वस्त्र पहनने के लिए दिये हैं ॥ ९८-९९ ॥

एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥ १०० ॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयो ।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥ १०२ ॥

इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम ।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥ १०३ ॥

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने ।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥ १०४ ॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥ १०६ ॥

हे असुरराज ! आपने इस प्रकार सभी रत्नों को एकत्रित कर लिया है, फिर यह जो स्त्रियों में रत्नरूपा कल्याण करने वाली देवी है, उसे आप क्यों नहीं ग्रहण कर लेते ॥ १०० ॥

ऋषि ने कहा—शुम्भ ने इस प्रकार चण्ड-मुण्ड की बातों को सुनकर महासुर सुग्रीव को दूत बनाकर देवी के पास भेजा ॥ १०१–१०२ ॥

और उससे कहा कि तुम मेरी आज्ञा से इन बातों को देवी से कहना और ऐसा उपाय करना जिससे वह स्वयं ही प्रसन्न होकर यहाँ आ जाय ॥ १०३ ॥

तब सुग्रीव ने अति रमणीय पर्वत पर, जहाँ भगवती विराजमान हो रही थीं, वहाँ जाकर उनको देखा और नम्रतापूर्वक अति मधुरवाणी में उनसे कहा ॥१०४॥

दूत ने कहा—हे देवि ! दैत्यों के राजा शुम्भ, जो इस समय तीनों लोकों का स्वामी हैं, उनका भेजा हुआ मैं दूत बनकर आपके पास आया हूँ ॥१०५-१०६॥

अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु ।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥ १०७ ॥
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः ।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥ १०८ ॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः ।
तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥ १०९ ॥
क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः ।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥ ११० ॥
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥ १११ ॥
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् ।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥ ११२ ॥

उनकी आज्ञा का उल्लंघन कोई देवता भी नहीं करते। उन्होंने समस्त देवताओं को परास्त कर दिया है। आपके लिए उन्होंने जो सन्देश कहा है, उसे सुनिए ॥ १०७ ॥

समस्त त्रैलोक्य मेरे अधिकार में है। सभी देवता मेरे आज्ञानुसार चलते हैं। मैं ही उन लोगों के पृथक्-पृथक् यज्ञ भागों को भोगता हूँ। १०८ ॥

तीनों लोकों के उत्तम रत्न हमारे ही पास हैं। इन्द्र का वाहन ऐरावत, जो हाथियों में रत्न के समान है, उसे भी मैंने छीन लिया है ॥ १०९ ॥

समुद्र मन्थन करने से जो अश्वरत्न उच्चैःश्रवा प्रकट हुआ था, देवताओं ने उसे विनयपूर्वक मुझको समर्पण कर दिया है ॥ ११० ॥

हे शोभने ! इसके अलावा अन्य जो कुछ भी रत्न देवता, गन्धर्व और नागों के पास था, वह सभी इस समय मेरे पास है ॥ १११ ॥

हे देवि ! हम तुमको संसार की स्त्रियों में रत्न समझते हैं, अतः तुम हमारे पास आ जाओ, क्योंकि रत्नों के भोगने वाले केवल हम ही हैं ॥ ११२ ॥

मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥ ११३ ॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥ ११४ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ११५ ॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥ ११६ ॥

देव्युवाच ॥ ११७ ॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ॥ ११८ ॥
किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् ।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात् प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥ ११९ ॥

हे चञ्चल नेत्र वाली ! तुम मेरी या मेरे परम पराक्रमी भाई निशुम्भ की सेवा में आ जाओ, क्योंकि तुम रत्नरूपा हो ॥ ११३ ॥

मेरे आश्रय में आने से तुम अतुल ऐश्वर्य को प्राप्त करोगी । अतः इन बातों को विचार कर तुम हमारी स्त्री बन जाओ ॥ ११४ ॥

ऋषि बोले—इस प्रकार दूत के कहने पर मंगलमयी भगवती दुर्गा देवी, जो सम्पूर्ण संसार को धारण करती हैं, मन ही मन गम्भीर भाव से मुसकराती हुई बोलीं ॥ ११५–११६ ॥

देवी ने कहा—हे दूत ! तुमने यहाँ जो कुछ भी कहा है, सब सत्य है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं । शुम्भ तीनों लोकों का राजा है और निशुम्भ भी उसी के समान है ॥ ११७–११८ ॥

किन्तु मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे कैसे झूठा करूँ । मैंने पहले जो मूर्खतावश प्रतिज्ञा कर ली है, उसे सुनो ॥ ११९ ॥

योमां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति ।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥ १२० ॥
तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः ।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥ १२१ ॥

दूत उवाच ॥ १२२ ॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः ।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ॥ १२३ ॥
अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि ।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ॥ १२४ ॥
इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे ।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ॥ १२५ ॥
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ।

जो मुझे संग्राम में जीत लेगा, जो मेरे घमण्ड को तोड़ देगा तथा जो मेरे समान बलवान् होगा, वही मेरा पति होगा ॥ १२० ॥

इसलिये महासुर शुम्भ या निशुम्भ यहाँ आवें और मुझे युद्ध में जीतकर मेरे साथ पाणिग्रहण कर लें, इसमें विलम्ब करने की क्या आवश्यकता है ॥१२१॥

दूत बोला—हे देवि ! तुझे बड़ा ही घमण्ड है, मेरे सामने इस प्रकार की बातें मत कहो। तीनों लोकों में कौन पुरुष है, जो शुम्भ और निशुम्भ के आगे ठहर सकता हो ॥ १२२–१२३ ॥

शुम्भ और निशुम्भ की तो बात ही क्या, अन्य असुरों के सामने सारे देवतागण भी युद्ध में नहीं ठहर सकते, फिर तुम अकेली स्त्री किस तरह उनके सामने ठहर सकोगी ॥ १२४ ॥

इन्द्रादि सभी देवता जिन शुम्भ और निशुम्भ के सामने नहीं ठहर सके तो तुम स्त्री होकर उनके सामने किस तरह ठहर सकोगी ॥ १२५ ॥

अतः तुम मेरे कथनानुसार शुम्भ और निशुम्भ के पास मेरे साथ चलो

केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ।। १२६ ।।

देव्युवाच ।। १२७ ।।

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ।। १२८ ।।
स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः ।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ।।ॐ।। १२९ ।।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
देव्या दूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।। ५ ।।
उवाच ९, त्रिपान्मन्त्राः ६६, श्लोकाः ५४,
एवम् १२९, एवमादितः ३८८ ।।

अन्यथा केश पकड़ कर घसीटते हुए उनके पास तुम्हें ले जाना पड़ेगा, जिससे तेरा अपमान होगा ।। १२६ ।।

देवी ने कहा—तुमने जो कुछ कहा वह सब सत्य है, शुम्भ ऐसा ही पराक्रमी है और निशुम्भ भी अधिक बलवान् है, परन्तु क्या करूँ, मैं पहले ही बिना विचारे प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ ।। १२७-१२८ ।।

अब तुम जाओ और मैंने जो कुछ भी कहा है, वह सब आदरपूर्वक शुम्भ को कहना, तब वह जो उचित समझे सो करे ।। १२९ ।।

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी-महात्म्य में देवी-दूतसंवाद नामक
पञ्चम अध्याय समाप्त हुआ ।। ५ ।।

षष्ठोऽध्यायः

ध्यानम्—

ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम्।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां
सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात्॥ २॥
तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम्॥ ३॥
हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम्॥ ४॥

ध्यान का अर्थ—सिंह के ऊपर बैठी हुई, सर्पों के फणां में सुन्दर लगने वाली मणिमाला से प्रकाशमान देहलतावाली, तीन नेत्रों से शोभायमान, कुम्भ, कपाल और कमल हाथों में लिये मस्तक में अर्धचन्द्र के मुकट से सुशोभित, सर्वज्ञेश्वर भैरव के अङ्क में निवास करनेवाली सर्वोत्कृष्ट पद्मावती देवी का मैं चिन्तन करता हूँ।

ऋषि बोले—दूत ने देवी की इन बातों को सुनकर क्रोधित हो दैत्यराज के पास जाकर विस्तारपूर्वक सब कह सुनाया। तब दूत से समस्त बातों को सुनकर दैत्यराज क्रोधित हो असुरों के नायक धूम्रलोचन से कहा—हे धूम्रलोचन ? तुम अपनी सेनाओं के साथ शीघ्र हो जाकर उस दुष्टा स्त्री का केश पकड़ कर घसीटते हुए ले आओ। यदि उसकी रक्षा करने के लिए कोई दूसरा खड़ा हो जाय

धूम्रलोचनवधः





तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः ।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥ ५ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ६ ॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥ ७ ॥
स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ८ ॥
न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति ।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ९ ॥

देव्युवाच ॥ १० ॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः ।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥ ११ ॥

ऋषिरुवाच ॥ १२ ॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥ १३ ॥

तो उसे निश्चय ही मार डालना, चाहे वह देव, गन्धर्व या यक्ष ही क्यों न हो। ऋषि ने कहा—तब दैत्य धूम्रलोचन शुम्भ की आज्ञा पाकर तुरन्त साठ हजार असुरों की सेनाओं को साथ में लेकर चल दिया। वहाँ जाकर धूम्रलोचन ने हिमालय पर बैठी हुई देवी को देखा और गरजते हुए कहा लि तुम शुम्भ-निशुम्भ के पास चलो। यदि प्रसन्नतापूर्वक आज मेरे राजा के पास नहीं चलेगी तो मैं तेरे केश पकड़ कर घसीटता हुआ जबरदस्ती ले जाऊँगा ॥ १–९ ॥

देवी ने कहा—दैत्येश्वर शुम्भ ने सेनाओं के साथ तुम्हें भेजा है। तुम स्वयं भी बड़े बलवान् हो। ऐसी हालत में यदि तुम मुझको ले जाओगे तो मैं क्या कर सकती हूँ। ऋषि ने कहा—देवी के ऐसा कहने पर असुर धूम्रलोचन देवी के आगे दौड़ा। अम्बिका ने उसी समय हुँकार मात्र से ही उस असुर को भस्म

अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥ १४ ॥
ततो धुतसटः कोपात् कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ॥ १५ ॥
कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।
आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ॥ १६ ॥
केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी ।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥ १७ ॥
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥ १८ ॥
क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥ १९ ॥
श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहितं धूम्रलोचनम् ।

कर दिया । इसके बाद क्रोधित हो असुरों की विशाल सेना और अम्बिका एक दूसरे पर तीखे सायकों, शक्तियों तथा फरसों की वर्षा करने लगीं । इतने ही में देवी का वाहन सिंह अपनी गर्दन के बालों को हिलाता हुआ क्रोध से भयङ्कर नाद करके असुर सेनाओं के बीच कूद पड़ा । सिंह ने कितने ही असुरों को पञ्जों के प्रहार से और दूसरे को मुख से तथा कितने ही महादैत्यों को होठ या दाढ़ों से घायल करके मार दिया । सिंह ने कितने असुरों के पेट को अपने नखों से फाड़ दिया तथा कितने को पंजों के प्रहार से धड़ से सिर अलग कर दिया ॥ १०–१७ ॥

उसने कितने असुरों की भुजाएँ और सिर काट डाला । अपने सिर के बालों को हिलाता हुआ, अन्य कितने ही दैत्यों का उदर फाड़ कर रक्तपान किया । अति क्रोधित देवी के वाहन पराक्रमी सिंह ने क्षणभर में ही सब असुर

बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥ २० ॥
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भ प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ २१ ॥
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥ २२ ॥
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि ।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥ २३ ॥
तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते ।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॐ ॥२४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भनिशुम्भसेनानीधूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
उवाच ४, श्लोकाः २०, एवम् २४,
एवमादितः ४१२ ॥

सेनाओं का विनाश कर दिया। जब महासुर शुम्भ ने सुना कि देवी ने धूम्रलोचन को मार दिया है और उसके वाहन सिंह ने उसकी सारी सेनाओं को नष्ट कर दिया है तब वह क्रोधित हो उठा। उसके होठ फरकने लगे तथा चण्ड और मुण्ड नामक दोनों दैत्यों को आज्ञा दी—हे चण्ड-मुण्ड! तुम दोनों एक विशाल सेना के साथ वहाँ जाओ और शीघ्र ही वहाँ से उस स्त्री को केश पकड़ कर या बाँध कर ले आओ। यदि इस प्रकार लाने में किसी प्रकार सन्देह हो तो युद्ध में सभी प्रकार के हथियारों का प्रयोग करके उसे मार डालना। उस दुष्टा को हत्या होने तथा सिंह के मारे जाने पर उसे जल्दी से बाँधकर मेरे पास ले आना ॥१८–२४॥

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी-महात्म्य में शुम्भ-निशुम्भ के सेनानी धूम्रलोचन-वध
नामक छठा अध्याय समाप्त।

सप्तमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं
न्यस्तैकाङ्घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम् ।
कह्लाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां
मातङ्गीं शङ्खपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिभालाम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः ।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ २ ॥
ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृंगे महति काञ्चने ॥ ३ ॥
ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः ।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥ ४ ॥

ध्यान का अर्थ—रत्नजड़ित सिंहासन पर स्थित तोते की मधुरवाणी को श्रवण करने वाली श्याम रंग, कमल के आसन पर एक पैर स्थित, मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण करने वाली कह्लार पुष्पों की माला गले में धारण कर, वीणा बजाती हुई, चोली और लाल वस्त्र धारण करने वाली, कर-कमलों में शंख का पात्र लिये ईषद् मद से युक्त, मस्तक में बिन्दी लगी हुई ऐसी जो मातंगी देवी उनका मैं ध्यान करता हूँ ।

ऋषि ने कहा—इसके बाद शुम्भ की आज्ञा पारकर चतुरंगिणी सेना के साथ अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर चण्ड और मुण्ड चल दिये । और हिमालय के स्वर्ग शिखर पर आकर उन्होंने सिंह पर स्थित देवी को हँसते हुये देखा । उनको देखकर दैत्यों ने उन्हें पकड़ने का प्रयास किया । कोई राक्षस धनुष को सँभाला तो कोई तलवार ग्रहण किया तथा अन्य राक्षस उनके समक्ष आकर खड़ा हो गया ।

चण्डमुण्डवधः



ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति ।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ॥ ५ ॥
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम् ।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥ ६ ॥
विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा ।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥ ७ ॥
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा ।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥ ८ ॥
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् ।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत् तद्बलम् ॥ ९ ॥
पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान् ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥ १० ॥
तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह ।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥ ११ ॥

तब अम्बिका को उन शत्रुओं पर बड़ा ही क्रोध हुआ जिससे उनका मुख काला हो गया। ललाट में भौंहें टेढ़ी हो गईं और उसी समय भयानक मुखवाली काली तलवार और पाश धारण किये हुए प्रकट हुईं। वे विचित्र खड्वाङ्ग (मुर्दे का पञ्जर अथवा खाट की पट्टी) लिये नर-मुण्डों की माला से विभूषित थीं। शरीर का मांस सुख गया था, अति भयानक दिखाई पड़ती थीं। आँखें लाल तथा भीतर धँसी हुई थीं। उनके भयानक शब्द से दिशायें गूँज रही थीं। बड़े-बड़े असुरों को मारतीं हुई काली वहाँ पर बड़े हो वेग से शत्रुओं की सेनाओं पर झपटीं और असुरों तथा उनकी सेनाओं का भक्षण करने लगीं। वे पार्श्वरक्षकों, अङ्कुश आदि लिये महावतों तथा घण्टा सहित कितने हाथियों को पकड़-पकड़ कर मुख में डालने लगीं। उसी तरह घोड़े तथा सारथियों से युक्त रथ और

एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् ।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥ १२ ॥
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः ।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥ १३ ॥
बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् ।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत् तदा ॥ १४ ॥
असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः ।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥ १५ ॥
क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम् ।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥ १६ ॥
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः ।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥ १७ ॥

योद्धाओं को मुख में डालकर बड़े ही भयानक रूप से चबाने लगीं। किसी का केश पकड़ कर, किसी का गला दबा कर, किसी को पाँवों से गिरा कर और किसी को छाती का धक्का देकर मार डालीं ॥ १–१२ ॥

वे उन असुरों के द्वारा छोड़े गये शस्त्रों तथा बड़े-बड़े अस्त्रों को अपने मुख से पकड़ लेती थीं और क्रोध में आकर उसे दाँतों से चबा डालती थीं ॥ १३ ॥

दुरात्मा असुरों तथा उनकी सेनाओं को काली मर्दन कर डालीं, खा गईं और कितनों को मार डालीं ॥ १४ ॥

कितने तलवारों से मार दिये गये, कोई खट्वाङ्ग से पीटे गये तथा कितने ही असुर दाँतों के अग्रभाग से आहत हो-हो कर मर गये ॥ १५ ॥

देवी ने क्षण मात्र में ही बड़े-बड़े असुरों तथा उनकी सारी सेनाओं को मार गिराया। इसे देखकर चण्ड अत्यन्त भयानक उस काली की ओर दौड़ा ॥ १६ ॥

महादैत्य मुण्ड ने भी अत्यन्त भयङ्कर बाणों की वर्षा से तथा हजारों फेंके गये चक्रों से भयानक आँखों वाली काली को ढक दिया ॥ १७ ॥

तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् ।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥ १८ ॥
ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी ।
काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥ १९ ॥
उत्थाय च महासिंहाद् देवी चण्डमधावत ।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥ २० ॥
अथ मुण्डोऽप्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
तमप्यपातयद् भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥ २१ ॥
हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥ २२ ॥
शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च ।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥ २३ ॥

काली के मुख में प्रवेश करते हुए वे अनेकों चक्र इस तरह दिखाई देने लगे जैसे कि बादलों में सूर्य के अनेकों प्रतिबिम्ब घुस रहे हों ॥ १८ ॥

तब विकराल मुख के भीतर कठिनता से दिखाई देने वाली दाँतों की कान्ति से युक्त, अत्यन्त भयानक गरजने वाली काली ने अत्यन्त क्रोध से अट्टहास की ॥ १९ ॥

देवी बहुत बड़ी तलवार को उठा कर 'हूं' उच्चारण करती हुई चण्ड की ओर दौड़ी और उसके केश को पकड़ कर सिर काट डाला ॥ २० ॥

तब चण्ड को मरा हुआ देखकर मुण्ड भी देवी की ओर दौड़कर आया । देवी ने बड़े ही क्रोध से उसे भी खड्ग से काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥२१॥

महापराक्रमी चण्ड और मुण्ड को मरा हुआ देखकर शेष बची हुई सेना भय से व्याकुल हो चारों दिशाओं में भाग गई ॥ २२ ॥

तब चण्ड और मुण्ड के सिर को लेकर काली चण्डिका देवी के पास गईं और अट्टहास करके बोलीं ॥ २३ ॥

मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू ।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥ २४ ॥

ऋषिरुवाच ॥ २५ ॥

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥ २६ ॥

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता ।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॥ॐ॥२७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
उवाच २, श्लोकाः २५, एवम् २७,
एवमादितः ४३९ ॥

मैं महापशु चण्ड और मुण्ड को मार कर आपकी भेंट के लिये लायी हूँ। अब आप ही युद्ध-यज्ञ में शुम्भ और निशुम्भ को मारियेगा ॥ २४ ॥

ऋषि ने कहा—काली द्वारा लाये हुए मृतक चण्ड और मुण्ड को देखकर कल्याणी देवी मधुर वचन बोलीं ॥ २५–२६ ॥

हे देवि ! तुम चण्ड और मुण्ड को मार कर मेरे सामने आयी हो, अतः तुम इस संसार में चामुण्डा के नाम से प्रसिद्ध होगी ॥ २२ ॥

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सार्वणिक मन्वन्तर की कथा के
अन्तर्गत देवीमहात्म्य में चण्डमुण्ड-वध नामक
सातवाँ अध्याय समाप्त ।

रक्तबीज-वधः



अष्टमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशाङ्कुशबाणचापहस्ताम् ।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम् ॥

ॐ ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते ।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥ २ ॥
ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान् ।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ ३ ॥
अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः ।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥ ४ ॥
कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै ।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥ ५ ॥

ध्यान का अर्थ—मैं उन अणिमा आदि सिद्धमयी किरणों से आवृत्त भवानी का ध्यान करता हूँ, जिनके शरीर का रंग लाल है, नेत्रों में करुणा लहरा रही है और हाथों में पाश, अंकुश, वाण और धनुष शोभा पाते हैं ।

ऋषि ने कहा—चण्ड और मुण्ड नामक महादैत्य के मारे जाने पर तथा बहुत-सी सेनाओं का विनाश होने पर असुरराज महापराक्रमी शुम्भ को बड़ा ही क्रोध हुआ और उसने दैत्यों की सभी सेनाओं को प्रस्तुत होने के लिये आदेश दिया ॥ १-३ ॥

आज उदायुध नाम के छियासी दैत्य सेनापति और कम्बू नाम के चौरासी सेना नायक अपनी सेनाओं को लेकर युद्ध में चले ॥ ४ ॥

पचास कोटि वीर्यकुल के और धूम्रवंश के सौ असुर मेरी आज्ञा से लड़ने के लिये चले ॥ ५ ॥

कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥ ६ ॥
इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः ।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥ ७ ॥
आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥ ८ ॥
ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप ।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ॥ ९ ॥
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा ।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ॥ १० ॥
तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः ॥ ११ ॥

काल, सुहृद और मौर्यवंश के असुर तथा कालका के पुत्र शीघ्र ही मेरी आज्ञा से युद्ध के लिए प्रस्तुत होवें ॥ ६ ॥

कठोर शासन करने वाला असुरराज शुम्भ इस प्रकार आज्ञा देकर हजारों महादैत्यों से परिवेष्टित होकर निकल पड़ा ॥ ७ ॥

अतिभयानक उसकी सेनाओं को आती हुई देखकर चण्डिका ने अपने धनुष की टङ्कार से आकाश और पृथ्वी को गुञ्जित कर दिया ॥ ८ ॥

हे राजन् ! तब सिंह ने भी अत्यन्त भयानक गर्जना की । अम्बिका ने घण्टा के शब्द से उसके शब्द को और भी बढ़ा दिया ॥ ९ ॥

धनुष की टङ्कार, सिंह को गर्जना और घण्टे की आवाज से सभी गुञ्जित हो उठा । काली ने भी मुँह फैलाकर भयङ्कर नाद की । उनका वह भयङ्कर शब्द सभी शब्दों से बढ़कर हुआ ॥ १० ॥

दैत्य की सेनाओं ने उस शब्द को सुनकर क्रोधित हो चारों दिशाओं से सिंह तथा काली देवी को घेर लिया ॥ ११ ॥

एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥ १२ ॥
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥ १३ ॥
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥ १४ ॥
हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥ १५ ॥
माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी ।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा ॥ १६ ॥
कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना ।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ॥ १७ ॥

हे राजन् ! इसी बीच दैत्यों का संहार करने तथा देवताओं के कल्याण के लिए ब्रह्मा, शंकर, कार्तिकेय, विष्णु तथा इन्द्र की शक्तियाँ उनके शरीर से निकल कर उन्हीं के रूप में चण्डिका देवी के पास आईं ॥ १२-१३ ॥

ये शक्तियाँ जो जैसे देवता थे वे उन्हीं के समान रूप, आभूषण और वाहन से युक्त होकर असुरों से लड़ने के लिए आईं ॥ १४ ॥

हंसयुक्त विमान पर आरूढ़, अक्षसूत्र और कमण्डलु से युक्त हो ब्रह्मा की शक्ति आई। वह ब्रह्माणी के नाम से पुकारी गई ॥ १५ ॥

महेश्वर की शक्ति माहेश्वरी बैल पर बैठकर आयी। वह त्रिशूल हाथ में लिए, महानाग का कंकण पहने, मस्तक में चन्द्ररेखा सुशोभित थी ॥ १६ ॥

स्वामी कार्तिकेय की शक्ति कौमारी अम्बिका देवी श्रेष्ठ मोर पर बैठ कर शक्ति (एक शस्त्रविशेष) को अपने हाथ में लिए असुरों से युद्ध करने के लिए आई ॥ १७ ॥

तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥ १८ ॥
यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः ।
शक्तिः साप्ययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥ १९ ॥
नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥ २० ॥
वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता ।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥ २१ ॥
ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः ।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम् ॥ २२ ॥
ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा ।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥ २३ ॥

उसी प्रकार विष्णु को शक्ति गरुड़ पर बैठी हुई शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और खड्ग हाथों में लिए हुए वहाँ आयी ॥ १८ ॥

अनुपम वाराह रूप को धारण करनेवाली विष्णु की शक्ति वाराही रूप को धारण करके वहाँ आयी ॥ १९ ॥

नृसिंह भगवान की नारसिंही शक्ति, जिनके गर्दन के केश हिलाने से आकाश के सभी तारे हिलने लगते थे, वह उन्हीं के समान शरीर को धारण करके वहाँ आई ॥ ५० ॥

उसी तरह इन्द्र की शक्ति ऐरावत हाथी पर बैठकर हाथ में वज्र लिए सहस्र नेत्रों से युक्त इन्द्र के समान रूप को धारण करके आयी ॥ २१ ॥

तब समस्त देव शक्तियों से घिरे हुए शिवजी चण्डिका देवी से कहा तुम मेरी प्रसन्नता के लिए शीघ्र ही असुरों का विनाश करो ॥ २२ ॥

तब देवी के शरीर से अति भयानक एवं उग्ररूप धारण करके सैकड़ों गीदड़ की तरह आवाज करने वाली चण्डिका शक्ति का आविर्भाव हुआ ॥ २३ ॥

सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता ।
दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ॥२४॥
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥२५॥
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥२६॥
बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः ।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥२७॥
यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥२८॥
तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः ।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥२९॥

तब किसी से पराजय नहीं होनेवाली वह देवी धूम्रवर्ण जटाओं से सुशोभित महादेवजी से कही—"भगवन्, आप दूतरूप से शुम्भ-निशुम्भ के पास जाइये ॥२४॥

और अति घमण्डी शुम्भ-निशुम्भ तथा अन्यान्य भी दानवों से कहिये कि यदि तुम लोग जीवित रहना चाहते हो तो पाताल लोक को चले जाओ। अब इन्द्र को तीनों लोकों का राज्य मिल जाय और देवता भी अपने-अपने यज्ञ-भाग ग्रहण करें ॥ २५-२६ ॥

यदि तुम अपने बल के घमण्ड से युद्ध ही करना चाहते हो तो आओ। हमारी शिवायें (योगिनियाँ) तुम्हारे मांस से तृप्त हों" ॥ २७ ॥

देवी ने शिवजी को दूत कार्य में नियुक्त किया था इसलिये वह संसार में "शिवदूती" के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥ २८ ॥

शङ्करजी के द्वारा देवी की बातों को सुनकर असुर लोग क्रोधित हो जहाँ कात्यायनी थी, वहाँ आ गये ॥ २९ ॥

ततः प्रथमेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ।
ववर्षु रुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥३०॥
सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥३१॥
तस्याग्रतस्तथा कालो शूलपातविदारितान् ।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ॥३२॥
कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः ।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ॥३३॥
माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥३४॥
ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥३५॥

तब वे असुरगण क्रोध से व्याकुल हो पहले देवी पर बाण, शक्ति और ऋष्टि (तलवार) की वर्षा करने लगे ॥ ३० ॥

देवी ने भी असुरों द्वारा चलाये गये बाण, शूल, शक्ति और फरसों को अपने बाणों की टङ्कार से अनायास ही काट डाला ॥ ३१ ॥

तब काली जी उनके सामने शत्रुओं को अपने शूल से विदीर्ण करती हुई तथा खट्वाङ्ग (शिव का एक अस्त्र) से कुचलती हुई युद्धभूमि में विचरण करने लगी ॥ ३२ ॥

ब्रह्माणी जिधर-जिधर दौड़ती हुई जाती थीं वहाँ असुरों पर अपने कमण्डलु से जल लेकर छिड़क देती थी, जिससे वे बलहीन तथा निस्तेज हो जाते थे ॥३३॥

माहेश्वरी ने त्रिशूल से, वैष्णवी चक्र से और कौमारी क्रोध में आकर शक्ति से असुरों का संहार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ३४ ॥

इन्द्राणी के वज्र के प्रहार से विदीर्ण होकर सैकड़ों दैत्य और दानवों ने रक्त की धारा बहाते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३५ ॥

तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥३६॥
नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान् ।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥३७॥
चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥३८॥
इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् ।
दृष्ट्वाऽभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥३९॥
पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥४०॥
रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः ।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदाऽसुरः ॥४१॥

वाराही देवी ने कितने ही दानवों को अपने थूथुन की मार से नष्ट कर दिया। कितने के वक्षस्थल को अपने दाँतों के अग्रभाग से फाड़ दिया और कितने को चक्र से काट-काटकर पृथ्वीपर सुला दिया ॥ ३६ ॥

नारसिंही देवी भी बहुत से असुरों को नखों से फाड़कर खा गई तथा गरजती हुई युद्धभूमि में विचरण करने लगी ॥ ३७ ॥

शिवदूती भयानक अट्टहास करने लगी, जिसके भय से व्याकुल हो असुरगण पृथ्वी पर गिरने लगे और देवी उसे खाने लगी ॥ ३८ ॥

इस प्रकार देवियाँ क्रोधित हो अनेक उपायों द्वारा बड़े-बड़े असुरों का विनाश करने लगीं, जिसे देखकर दैत्यगण भागने लगे ॥ ३९ ॥

तब देवियों द्वारा असुर सेनाओं को पीड़ित हो भागते हुए देखकर रक्तबीज नामक महासुर क्रोधित हो युद्ध करने के लिए आया ॥ ४० ॥

उसकी देह से जब रक्त की बूंद पृथ्वी पर गिरती थी तब उसीके समान दूसरा असुर पैदा हो जाता था ॥ ४१ ॥

युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः ।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥४२॥
कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् ।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥४३॥
यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः ।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥४४॥
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः ।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ॥४५॥
पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा ।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥४६॥
वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह ।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४७॥

रक्तबीज हाथ में गदा लेकर इन्द्राणी से युद्ध करने लगा । देवीं ने भी उस पर वज्र का प्रहार किया ॥ ४२ ॥

तब वज्र का प्रहार होते ही उसके शरीर से बहुत सा रक्त गिरा और उसी के समान पराक्रमी अनेकों असुर पैदा हो गये ॥ ४३ ॥

उसके शरीर से रक्त की जितनी ही बूँदे गिरी, उतने ही उसी के समान बलवान् और पराक्रमी पुरुष उत्पन्न हो गये ॥ ४४ ॥

रक्त से उत्पन्न वे असुरगण भयङ्कर शस्त्र का प्रहार करते हुए देवियों से घोर युद्ध करने लगे ॥ ४५ ॥

फिर भी इन्द्राणी देवी ने वज्र के प्रहार से रक्तबीज का सिर फोड़ दिया और उससे रक्त बहने लगा । तब हजारों असुर पैदा हो गये ॥ ४६ ॥

रण में वैष्णवी देवी ने उस असुर पर प्रहार किया और इन्द्राणी ने गदा मारी ॥ ४७ ॥

वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः ।
सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥ ४८ ॥
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥ ४९ ॥
स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् ।
मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥ ५० ॥
तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि ।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥ ५१ ॥
तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥ ५२ ॥
तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा ।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥ ५३ ॥
मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान् ।

वैष्णवी के चक्र से कट जाने पर रक्तबीज के शरीर से जो रक्त निकला, उससे उसी के समान हजारों असुर उत्पन्न होकर सारा विश्व व्याप्त हो गया ॥ ४८ ॥

तब कौमारी ने शक्ति से, वाराही ने खड्ग से और माहेश्वरी ने त्रिशूल से उस महासुर रक्तबीज को मारा ॥ ४९ ॥

रक्तबीज भी क्रोध में आकर सभी देवियों पर गदा से पृथक्-पृथक् प्रहार किया ॥ ५० ॥

उसके बाद शक्ति, त्रिशूल आदि के प्रहार से उस असुर के शरीर से जो रक्त की धारायें पृथ्वी पर गिरीं, उससे सैकड़ों असुर पैदा हो गये ॥ ५१ ॥

इस प्रकार रक्तबीज के रक्त से उत्पन्न असुरों द्वारा सारा विश्व व्याप्त हो गया । यह देखकर देवगण बहुत ही भयभीत हो गये ॥ ५२ ॥

देवताओं को उदास देखकर चण्डिका ने शीघ्र ही काली से कहा—'हे चामुण्डे ! तुम अपना मुंह फैलाओ और मेरे अस्त्र के प्रहार से उसके

रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ॥ ५४ ॥
भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् ।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥ ५५ ॥
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे ।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥ ५६ ॥
मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ।
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ॥ ५७ ॥
न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि ।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥ ५८ ॥
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ॥ ५९ ॥
तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ।
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥ ६० ॥

शरीर से जो रक्त गिरे उसे पी लो। उससे यदि असुर पैदा हों तो उन्हें भी खा डालो ॥ ५३–५४ ॥

इस प्रकार रक्त भक्षण करती हुई तुम रण-क्षेत्र में भ्रमण करो, जिससे शीघ्र ही यह दैत्य क्षीणरक्त हो विनष्ट हो जायगा ॥ ५५ ॥

तुम्हारे द्वारा रक्त भक्षण करने पर अन्य असुर पैदा नहीं हो सकेंगे'। काली से यह कहकर चण्डिका ने रक्तबीज को शूल से मारा ॥ ५६ ॥

काली ने तुरन्त ही रक्तबीज के रुधिर को अपने मुँह में ले लिया। तब असुर ने चण्डिका देवी पर गदा का प्रहार किया ॥ ५७ ॥

उसकी गदा के प्रहार से देवी को कुछ भी पोड़ा नहीं हुई, लेकिन देवी के शूल लगने से उसके शरीर से बहुत-सा रक्त निकला ॥ ५८ ॥

ज्योंही उसके शरीर से रक्त निकला त्योंही चण्डिका ने उसे अपने मुख में ले लिया। उस रक्त से जो उनके मुख में असुर पैदा हुआ, उसको भी खा लिया

जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ।
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसंघसमाहतः ॥६१॥

नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः ।
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ॥६२॥

तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ॐ॥६३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥
उवाच १, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ६१,
एवम् ६३, एवमादितः ५०२ ॥

तथा रक्त भी पी लिया। तब देवी ने शूल, वज्र, बाण, तलवार और ऋष्टि से रक्तबीज को, जिसका रक्त काली ने पी लिया था, मार दिया। हे राजन् ! इस प्रकार शस्त्र के प्रहार से घायल तथा रक्तहीन होकर वह महासुर रक्तबीज पृथ्वी पर गिर गया। हे नृप ! इससे देवगण अत्यधिक आनन्दित हुए ॥ ५९–६२ ॥

और रुधिर पान करने के मद से उद्धत हो देवियाँ नाचने लगीं ॥ ६३ ॥

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवीमाहात्म्य में रक्तबीजवध नामक
अष्टम अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां
पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः ।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि ॥

'ॐ' राजोवाच ॥ १ ॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम ।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥ २ ॥
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते ।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥ ३ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ४ ॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते ।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥ ५ ॥

जिनका वर्ण बन्धूक ('दुपहरिया' नामक) पुष्प और सुवर्ण के सदृश रक्त-पीत मिश्रित है तथा जिनके हाथों में सुन्दर अक्षमाला, पाश, अंकुश और वरद मुद्रा हैं तथा अर्धचन्द्र जिनके आभूषण हैं ऐसे तीनों नेत्रों से सुशोभित अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर के श्रीविग्रह का मैं निरन्तर आश्रय लेता हूँ ।

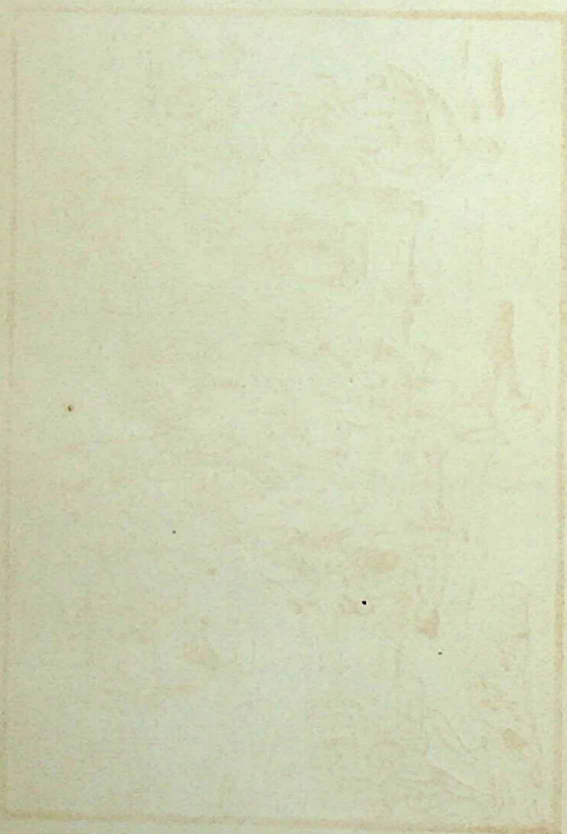
राजा सुरथ ने कहा—हे भगवन् ! आपने रक्तबीज के वध-सम्बन्धी देवी के चरित्र का यह विचित्र महात्म्य कहा ॥ १–२ ॥

रक्तबीज के मरने पर अत्यन्त क्रोधित शुम्भ और निशुम्भ ने जो काम किया उसे भी मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

ऋषि ने कहा—राजन् ! जब रक्तबीज तथा अन्य बहुत से असुर युद्ध में मारे गये तब शुम्भ और निशुम्भ अत्यन्त क्रोधित हो उठे ॥ ४–५ ॥

निशुम्भ-वधः





हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् ।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ॥ ६ ॥
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः ।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥ ७ ॥
आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः ।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥ ८ ॥
ततो युद्धमतीवासीद् देव्या शुम्भनिशुम्भयोः ।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥ ९ ॥
चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः ।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥१०॥
निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् ।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥११॥

इसके बाद अपनी सेनाओं को मरी हुई देखकर क्रोधित हो निशुम्भ असुरों की प्रधान सेनाओं को साथ में लेकर दौड़ा ॥ ६ ॥

उसके आगे पीछे और दांयें-बाँयें बड़े-बड़े असुर क्रोध से ओठ चबाते हुए देवी को मारने के लिए आये ॥ ७ ॥

पराक्रमी शुम्भ भी अपनी सेनाओं के साथ मातृगणों से युद्ध करके कुपित हो चण्डिका को मारने लिये आया ॥ ८ ॥

तब शुम्भ और निशुम्भ के साथ देवी का घोर संग्राम हुआ । जैसे बादल पानी बरसता है उसी भाँति दोनों तरफ से बाणों की वर्षा होने लगी ॥ ९ ॥

चण्डिका अपने बाणों से शुम्भ और निशुम्भ के द्वारा छोड़े गये बाणों को काट डाली और उन दोनों असुरों के अंगों में बाणों द्वारा चोट पहुँचायी ॥१०॥

निशुम्भ ने तीखी तलवार और चमकती हुई ढाल से देवी के प्रधान वाहन सिंह के मस्तक पर प्रहार किया ॥ ११ ॥

ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१२॥
छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥१३॥
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः ।
आयातं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥१४॥
आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१५॥
ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् ।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥१६॥
तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥१७॥

देवी अपने वाहन सिंह के सिर पर प्रहार होते देख क्षुरप्र नामक अस्त्र से निशुम्भ की तलवार तथा अष्टचन्द्रक ढाल को काट डाली ॥ १२ ॥

ढाल और तलवार के कट जाने पर निशुम्भ ने शक्ति चलाई, किन्तु सामने आने पर देवी उसे भी काट डाली ॥ १३ ॥

तब क्रोध में आकर दानव निशुम्भ ने शूल ग्रहण किया। देवी ने आते हुए शूल को मुक्के से चूर-चूर कर दिया ॥ १४ ॥

फिर उसने देवी पर गदा का प्रहार किया। देवी ने गदा को भी त्रिशूल से काटकर भस्म कर दिया ॥ १५ ॥

इसके बाद हाथों में फारसा लिए हुए दैत्यों में श्रेष्ठ निशुम्भ को देवी ने बाण-समूहों से घायल कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ १६ ॥

महापराक्रमी निशुम्भ को पृथ्वी पर गिरा हुआ देखकर उसका भाई शुम्भ अत्यन्त क्रोधित हो देवी को मारने के लिये गया ॥ १७ ॥

स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥ १८ ॥
तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥ १९ ॥
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च ।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥ २० ॥
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः ।
पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥ २१ ॥
ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥ २२ ॥
अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह ।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥ २३ ॥

वह रथ पर सवार होकर अपनी बड़ी-बड़ी आठ भुजाओं में उत्तम हथियारों को लेकर सम्पूर्ण आकाश मण्डल को व्याप्त कर दिया ॥ १८ ॥

उसे आते देख देवी ने शङ्ख बजाया और धनुष की प्रत्यञ्चा का भी दुःसह शब्द किया ॥ १९ ॥

सभी दैत्य-सेनाओं का तेज नष्ट करने वाला घण्टे का शब्द किया, जिससे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं ॥ २० ॥

उसके बाद सिंह ने भी बड़े-बड़े हाथियों के मद को चूर करने वाली अपनी दहाड़ से आकाश, पृथ्वी और दशों दिशाओं को भर दिया ॥ २१ ॥

तब काली ने आकाश में उछल कर दोनों हाथ पृथ्वी पर पटक दिया, जिससे (भयानक शब्द होने के कारण) पहले के सभी शब्द विलीन हो गये ॥ २२ ॥

फिर शिवदूती बहुत जोर से अट्टहास की जिसके सुनते ही असुरों की सेनायें डर गई तथा शुम्भ को बड़ा ही क्रोध हुआ ॥ २३ ॥

दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा ।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥ २४ ॥
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा ।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥ २५ ॥
सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् ।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥ २६ ॥
शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २७ ॥
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥ २८ ॥

तब अम्बिका ने शुम्भ से कहा—'रे दुष्ट ! खड़ा रह', यह सुनकर आकाश में स्थित देवता जय जयकार करने लगे ॥ २४ ॥

शुम्भ ने वहाँ आकर अत्यन्त चमकती हुई जिस भयानक शक्ति को छोड़ा, उस अग्नि के पर्वत के समान शक्ति को आती देख देवी ने महोल्का के द्वारा उसे नष्ट कर दिया ॥ २५ ॥

शुम्भ सिंह के समान गरजा । उसके गरजने का शब्द तीनों लोकों में फैल गया । हे राजन् ! उसी समय सेना में "मारो-मारो" का शब्द हुआ । उस शब्द में शुम्भ के गरजने का शब्द विलीन हो गया ॥ २६ ॥

उसके बाद शुम्भ के द्वारा चलाये हुए सैकड़ों बाणों को देवी ने तथा देवी के द्वारा छोड़े गये बाणों को शुम्भ ने अपने बाणों से काट डाला ॥ २७ ॥

तब क्रोधित हो चण्डिका ने शुम्भ को त्रिशूल से मारा, जिससे वह घायल हो मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ २८ ॥

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः ।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥२९॥
पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः ।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥३०॥
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥३१॥
ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् ।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥३२॥
तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका ।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३३॥
शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् ।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥३४॥

उसी समय निशुम्भ को होश आया और उसने धनुष लेकर बाणों से काली देवी और सिंह को मारा ॥ २९ ॥

फिर असुरराज निशुम्भ ने दस हजार भुजाएँ बनाकर चक्रों के प्रहार से देवी को ढक लिया ॥ ३० ॥

तब संकट को नाश करने वाली भगवती दुर्गा क्रोधित हो उन सब चक्रों और बाणों को अपने बाणों से काट डाली ॥ ३१ ॥

उसके बाद दैत्य-सेनाओं के साथ निशुम्भ बड़े वेग से गदा लेकर देवो को मारने के लिए आगे को दौड़ा ॥ ३२ ॥

अपनी ओर आती हुई गदा को देखकर चण्डिका ने अपनी तेज धारवाली तलवार से उसे काट डाला, तब उसने शूल उठाया ॥ ३३ ॥

शूल लेकर आते हुए निशुम्भ को देखकर चण्डिका ने तत्काल ही अपने शूल से उसके हृदय में मारा ॥ ३४ ॥

भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः ।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥३५॥
तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः ।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥३६॥
ततः सिंहश्चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥३७॥
कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः ।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥३८॥
माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे ।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥३९॥
खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः ।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ॥४०॥

शूल लगने से उसकी छाती फट गई और उसमें से एक दूसरा बलवान् और पराक्रमी पुरुष देवी से 'खड़ी रह' यह कहता हुआ निकल पड़ा ॥ ३५ ॥

तब देवी ने हँस कर तलवार से उसकी गर्दन काट दिया और वह भूमि पर गिर पड़ा ॥ ३६ ॥

तदनन्तर सिंह अपने तेज दाँतों से असुरों के सिर तथा धड़ खाने लगा। दूसरी काली और शिवदूती भी अन्य असुरों को खाने लगीं ॥ ३७ ॥

कितने ही असुरों को कौमारी ने अपनी शक्ति से नष्ट कर दिया तथा अन्य कितने ही महासुर ब्रह्माणी के मन्त्र के पवित्र जल से निस्तेज नष्ट हो गये ॥३८॥

माहेश्वरी ने कितने को त्रिशूल से काट कर गिरा दिया तथा अन्य कितने ही वाराही के थूथुन के प्रहार से चूर-चूर होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३९ ॥

वैष्णवी ने चक्र से कितने ही दानवों को खण्ड-खण्ड कर डाला। ऐन्द्री ने बहुतों को अपने हाथों से छोड़े गये वज्र से मार दिया ॥ ४० ॥

केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् ।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥ ॐ ॥ ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥
उवाच २, श्लोकाः ३९, एवम्
४१, एवमादितः ५४३

कितने ही संग्राम में मारे गये। कितने डरकर भाग गये। कितनों को काली शिवदूती और सिंह ने खा डाला ॥ ४१ ॥

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवीमाहात्म्य में निशुम्भवध नामक नवम
अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

ॐ उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्नि-
नेत्रां धनुश्शरयुताङ्कुशपाशशूलम्।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां
कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम्॥

'ॐ ऋषिरुवाच॥ १॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम्।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः॥ २॥
बलावलेपाद् दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्धयसे यातिमानिनी॥ ३॥

देव्युवाच॥ ४॥

ध्यान का अर्थ—अपने मस्तक पर अर्धचन्द्र को धारण करने वाली शिवशक्ति-स्वरूपा कामेश्वरी देवी का मैं हृदय में भजन करता हूँ। वे तपाये हुए सोने के समान सुन्दर हैं। सूर्य-चन्द्रमा और अग्नि ये तीनों ही उनकी आँखे हैं तथा अपने सुन्दर हाथों में धनुष, बाण, अंकुश, पाश और शूल धारण की हुई हैं।

ऋषि बोले—॥ १॥

प्राणों के समान प्रिय अपने भाई निशुम्भ तथा समस्त सेनाओं को मरा हुआ देखकर शुम्भ क्रोधित हो बोला॥ २॥

दुष्ट दुर्गे! तुम अपने बल का घमण्ड मत करो। तुम दूसरे के बल पर ही युद्ध करती हो तथा अपने को अभिमानिनी बनती हो॥ ३॥

देवी ने कहा—॥ ४॥

शुम्भवधः



एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥ ५ ॥
ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥ ६ ॥

देव्युवाच ॥ ७ ॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥ ८ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥ १० ॥
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः।
तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥ ११ ॥

रे दुष्ट! मैं इस संसार में अकेली ही हूं, मेरे सिवा दूसरा कौन है? देख, ये सब शक्तियाँ मेरी ही हैं जो मुझ में ही लीन होती हैं ॥ ५ ॥

उसके बाद ब्रह्माणी आदि सभी शक्तियाँ देवी के शरीर में लीन हो गई और केवल एक अम्बिका का रूप ही शेष बच गया ॥ ६ ॥

देवी ने कहा—॥ ७ ॥

मैं अपनी विभूतियों द्वारा अनेक रूपों से युद्धस्थल में उपस्थित थी। अब मैं सभी रूपों को एकत्रित कर अकेली ही खड़ी हूं। तुम युद्ध के लिये सावधान हो जाओ ॥ ८ ॥

ऋषि ने कहा—॥ ९ ॥

उसके बाद देवताओं और दैत्यों के देखते ही देखते देवी और शुम्भ दोनों में युद्ध होने लगा ॥ १० ॥

तीक्ष्ण बाणों की वर्षा तथा दारुण अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से सब लोगों को भय देनेवाला महायुद्ध छिड़ गया ॥ ११ ॥

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ १२ ॥
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥ १३ ॥
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ।
सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥ १४ ॥
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे ।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥ १५ ॥
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ।
अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥ १६ ॥
तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥ १७ ॥

अम्बिका ने जो सैकड़ों दिव्यास्त्र छाड़ा; उन्हें दैत्यराज शुम्भ ने अपने निवारक अस्त्रों से काट डाला ॥ १२ ॥

इसी तरह शुम्भ ने जिन अस्त्रों को छोड़ा, उनको देवी ने भी भयङ्कर हुँकार के उच्चारण से ही अनायास काट डाला ॥ १३ ॥

तब वह असुर सैकड़ों वाणों से देवी को ढँक लिया। देवी ने भी क्रोधित होकर अपने वाणों से उसके धनुष को काट डाला ॥ १४ ॥

धनुष कटकर गिरजाने पर दैत्यराज शुम्भ ने एक शक्ति उठायीं। देवी ने उसे भी अपने चक्र से काट डाला ॥ १५ ॥

तब दैत्येन्द्र शुम्भ ने सैसड़ों चन्द्रमा और सूर्य के समान चमकती हुई ढाल तलवार को लेकर देवी की ओर दौड़ा ॥ १६ ॥

चण्डिका ने अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा सूर्य की किरणों की तरह चमकने वाली उसकी ढाल और तलवार को भी काट डाला ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् घोड़े, धनुष, और सारथि नष्ट हो जाने पर वह दैत्य देवी को मारने के लिये मुदगर ग्रहण किया ॥ १८ ॥

हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः ।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥१८॥
चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः ।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥१९॥
स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः ।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥२०॥
तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले ।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥२१॥
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः ।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥२२॥
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् ।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥२३॥

देवी ने अपनी ओर आते हुए उसके मुद्गर को भी अपने तीक्ष्ण बाणों से काटकर गिरा दिया । तब वह दैत्यराज मुक्के को संभालकर बड़े वेग से देवी को मारने के लिये दौड़ा ॥ १९ ॥

और देवी की छाती में मुक्के को जमा दिया । देवी ने भी उसकी छाती में एक थप्पर मारा ॥ २० ॥

थप्पर लगते ही वह दैत्य पृथ्वी पर गिर गया किन्तु शीघ्र ही पूर्ववत् उठ खड़ा हो गया ॥ २१ ॥

फिर वह उछल कर देवी को पकड़ा तथा आकाश में स्थित हो गया । वहाँ निराधार होकर भी चण्डिका शुम्भ के साथ युद्ध करने लगीं ॥ २२ ॥

तब आकाश में चण्डिका और दैत्य दोनों परस्पर लड़ने लगे । वह युद्ध इस प्रकार हुआ कि पहले समस्त सिद्ध और मुनि आश्चर्य युक्त हो गये ॥ २३ ॥

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह ।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥२४॥
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः ।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥२५॥
तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥२६॥
स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः ।
चालयन् सकलां पृथिवीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥२७॥
ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥२८॥
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः ।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥२९॥

उसके बाद अम्बिका ने उसके साथ बड़ी देर तक युद्ध किया और उठाकर घुमाया तथा पृथ्वी पर पटक दिया ॥ २४ ॥

पृथ्वी पर गिरकर भी वह दुष्ट चण्डिका को मारने की इच्छा से बड़ी तेजी से घूसा तानकर देवी की ओर दौड़ा ॥ २५ ॥

देवी ने दैत्यराज शुम्भ को अपनी ओर आते देखकर शूल से उसकी छाती को विदीर्ण कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २६ ॥

देवी के शूल से घायल होकर वह दैत्य पृथ्वी पर गिरकर मर गया । जिस समय वह पृथ्वी पर गिरा था । उस समय सम्पूर्ण पृथ्वी, समुद्र, पर्वत, तथा द्वीप कम्पायमान हो गये थे ॥ २७ ॥

उस दुरात्मा के मरते ही सारा विश्व सुखी हो गया और आकाश स्वच्छ हो गया ॥ २८ ॥

मेघ से जो पहले अनिष्टसूचक उल्कापात होते थे वे सभी शान्त हो गये । नदियाँ भी अपने-अपने मार्ग से बहने लगीं ॥ २९ ॥

ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भमानसाः ।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ॥३०॥
अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥३१॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः॥ॐ॥३२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः २७, एवम्
३२, एवमादितः ५७५ ॥

उसके मरते ही सभी देवगण आनन्द से गद्-गद् हो गये और गन्धर्व सुन्दर गीतों को गाने लगे ॥ ३० ॥

बहुत से गन्धर्व बाजे बजाने लगे । अप्सरायें नाचने लगीं । स्वच्छ हवायें बहने लगीं । सूर्य की किरणें प्रभा-युक्त हो गईं ॥ ३१ ॥

यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित हो उठी । दिशाओं में जो हाहाकार शब्द सुनायी पड़ता था, वह सब शान्त हो गया ॥ ३२ ॥

श्री मार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवीमाहात्म्य में शुंभवध नामक दशम अध्याय
समाप्त हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

ध्यानम्—'ॐ' उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदांकुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद् विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥२॥
देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥३॥
आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥४॥

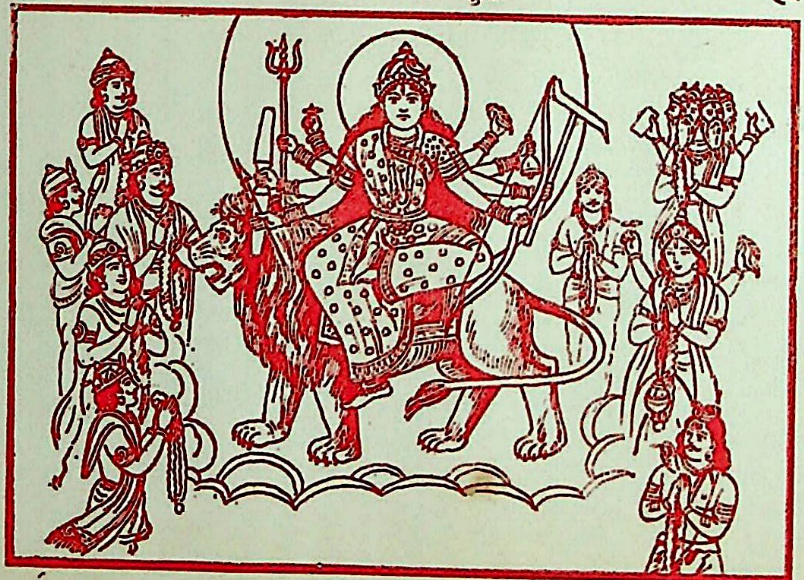
जिनकी कान्ति उदयकालीन सूर्य के समान है, मस्तक पर चन्द्रमा का मुकुट, है, उत्तुंग स्तनों और तीन नेत्रों से युक्त हैं, मुस्कान भर रही हैं तथा जिनके हाथों में वरद, अंकुश, पाश तथा अभय मुद्रा शोभित हो रही है, उन भुवनेश्वरी देवी का मैं ध्यान करता हूँ ।

ऋषि ने कहा—॥ १ ॥

वहाँ देवी द्वारा असुरराज शुम्भ के मारे जाने पर इन्द्र सहित सभी देवता अग्नि को आगे करके अभीष्ट की प्राप्ति होने से प्रसन्न होकर कात्यायनी देवी की स्तुति करने लगे ॥ २ ॥

शरणागतों के दुःख को दूर करने वाली हे देवि ! प्रसन्न होओ । सम्पूर्ण संसार की माता ! प्रसन्न होओ । हे विश्वेश्वरि ! प्रसन्न होओ तथा संसार की रक्षा करो । हे देवि ! चराचर की तुम्हीं ईश्वरी हो ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण संसार का एकमात्र आधार तुम्हीं हो क्योंकि तुम पृथ्वी रूप में स्थित



त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥५॥
विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥६॥
सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी ।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥ ७ ॥
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥
कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनी ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥

हो । हे देवि ! तुम्हारा पराक्रम अलङ्घनीय है । तुम जल रूप से स्थित होकर सम्पूर्ण संसार को सन्तुष्ट करती हो ॥ ४ ॥

तुम अनन्त बल से युक्त वैष्णवी शक्ति हो । संसार का आदि कारण तथा महामाया तुम्हीं हो । इस सम्पूर्ण विश्व को तुमने ही मोहित कर रक्खा है । हे देवि ! तुम्हारी प्रसन्नता ही संसार में मोक्ष का कारण है ॥ ५ ॥

हे देवि ! सभी विद्यायें आप ही के भेद हैं । संसार में सभी स्त्रियाँ आप ही की मूर्ति हैं । अकेली आपने ही इस सारे संसार को व्याप्त कर रक्खा है । आपकी स्तुति क्या हो सकती है, आप तो स्तुति करने योग्य पदार्थों से भी परे हैं ॥ ६ ॥

जब तुम सर्वस्वरूपा एवं स्वर्ग और मोक्ष को देनेवाली हो, तब तुम्हारी स्तुति हो गयी, तुम्हारी स्तुति के लिये इससे अच्छी उक्ति क्या हो सकती है ॥७॥

तुम समस्त प्राणियों के हृदय में बुद्धि रूप से स्थित हो । स्वर्ग और मोक्ष को देने वाली हो । हे नारायणि देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ८ ॥

तुम कला-काष्ठा आदि के रूप से परिणाम अर्थात् अवस्था-परिवर्तन करने वाली हो । संसार को संहार करने में समर्थ हे देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ९ ॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१०॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥११॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१२॥
हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोस्तु ते ॥१३॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१४॥
मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१५॥

तुम सभी मंगलों को देने वाली मंगलमयी हो । सभी कार्य को सिद्ध करने वाली हो । शरण देने वाली, त्रिनयनी, गौरी तुम्हीं हो । हे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ १० ॥

तुम सृष्टि, पालन और संहार-शक्तिस्वरूपिणी, सनातनी, सभी प्रकार के गुणों को आश्रय देनेवाली तथा सभी गुणों से युक्त हो । हे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ११ ॥

शरण में आये हुए सभी दीन दुःखियों के दुःख को दूर करने में तत्पर रहनेवाली तथा सभी प्रकार की पीडाओं का नाश करनेवाली हे नाराणि देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ १२ ॥

ब्रह्माणी का रूप धारण करके हंस-युक्त विमान पर स्थित तथा कुश से अभिमंत्रित जल को छिड़कने वाली हे नारायणि देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१३॥

माहेश्वरी रूप से त्रिशूल, चन्द्र, और सर्प को धारण करने वाली तथा महा-वृषभ को वाहन बनानेवाली हे नारायणि देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ १४ ॥

मयूरों और मुर्गों से परिवेष्टित महाशक्ति को धारण करने वाली पापों से रहित एवं कौमारी रूप को धारण करनेवाली हे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥१५॥

शंखचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १७ ॥
नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २० ॥
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ।

शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष तथा उत्तम-उत्तम आयुधों को धारण करने वाली हे वैष्णवीस्वरूपे ! नारायणि ! तुम प्रसन्न होओ। तुम्हें नमस्कार है ॥ १६ ॥

भयानक महाचक्र को धारण करनेवाली तथा अपने दाँतों पर पृथ्वी को उठानेवाली कल्याण-कारिणी वाराहरूपिणी हे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है॥१७॥

भयानक नृसिंह स्वरूप को धारण कर असुरों को मारने के लिये प्रयास करनेवाली तथा तीनों लोकों की रक्षा करने में तत्पर हे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ १८ ॥

मस्तक पर किरीट तथा हाथों में महाचक्र धारण करने वाली, सहस्रनेत्रों से प्रकाशमान् तथा वृत्रासुर के प्राणों को हरनें वाली इन्द्रशक्तिस्वरूपे ! हे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥। १९ ॥

शिवदूती का स्वरूप धारण करके महाबलशाली असुर-समूह का संहार करनेवाली भयङ्कर रूप को धारण करने वाली तथा विकट गर्जन करनेवाली हे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ २० ॥

बड़े-बड़े दाँतों के कारण विकराल मुखवाली, मुण्ड की मालाओं से सुशोभित,

चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे ।
महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २२ ॥
मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ २४ ॥
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥ २६ ॥

मुण्ड असुर का मर्दन करनेवाली चामुण्डारूपा हे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥

तुम लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महाविद्यारूपा हो । हे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ २२ ॥

तुम मेधा, सरस्वती, सर्वोत्कृष्टा, ऐश्वर्यरूपिणी, बाभ्रवि (पार्वती), तामसी (महाकाली), नियता (नियमनशीला) ईश्वरी हो । हे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ २३ ॥

तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वशक्तिमती हो हे दुर्गे देवि ! तुम सब प्रकार के भयों से हमलोगों की रक्षा करो । हे देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ २४ ॥

हे कात्यायनि ! आपका यह तीन नेत्रों से सुशोभित मुख सभी भयों से हमारी रक्षा करे, आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥

हे भद्रकालि ! समस्त असुरों का विनाश करनेवाला और ज्वालाओं के समान भयानक आपका त्रिशूल सभी भयों से हमारी रक्षा करे । आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत्।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्यो नः सुतानिव ॥ २७ ॥
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥ २८ ॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति।२९
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य धर्मद्विषां देवि महासुराणाम्।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥३०॥
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥३१॥

जिस घण्टा ने अपनी ध्वनि के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को व्याप्तकर असुरों के तेज का विनाश कर दिया है, वह पापों से हमलोगों की रक्षा उसी प्रकार करे, जिस प्रकार माता अपने पुत्रों को बुरे कर्मों से रक्षा करती है ॥ २७ ॥

हे चण्डिके ! तुम्हारे हाथों में चमकता हुआ खड्ग, जो असुरों के रक्त और चर्बी से सुशोभित है, हमारा मंगल करे। हमलोग अति नम्रभाव से तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ २८ ॥

हे देवि ! तुम प्रसन्न होकर सब प्रकार के रोगों का विनाश करती हो, एवं अप्रसन्न होने पर सब अभीष्टों का नाश भी कर देती हो। जो मनुष्य तुम्हारे आश्रित होते हैं, उनके पास कभी भी आपत्ति नहीं आती, एवं वे स्वयं दूसरों का आश्रय बन जाते हैं ॥ २९ ॥

हे अम्बिके देवि ! तुमने विविध स्वरूपों को धारण कर इन धर्मद्रोही असुरों का संहार किया है, यह कार्य तुम्हारे सिवा दूसरा कौन कर सकता है ॥ ३० ॥

समस्त विद्याओं में, ज्ञान को प्रकाशित करनेवाले शास्त्रों में एवं आदि वाक्यों (वेदों) में तुम्हारे सिवा और किसका वर्णन है ? तुम्हारे अतिरिक्त ऐसी कौन सी शक्ति है जो इस संसार को अन्धकारमय ममता के गड्ढे में निरन्तर घुमा सकती है ? ॥ ३१ ॥

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्।।३२।।
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः।।३३।।
देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ।। ३५ ।।

देव्युवाच ।। ३६ ।।

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ।। ३७ ।।

जहाँ राक्षस, भयानक विषैले सर्प, शत्रुगण, लुटेरों के दल एवं दावानल हैं, वहाँ तथा समुद्र के मध्य में भी तुम विश्व की रक्षा करती हो ।। ३२ ।।

हे विश्वश्वरि ! तुम विश्व की रक्षा करती हो । तुम्हीं विश्वात्मिका रूप से विश्व को धारण करती हो । तुम्हारी प्रार्थना भगवान् विश्वेश्वर भी करते हैं ।।

हे देवि ! तुम प्रसन्न होओ । तुमने इस समय जिस प्रकार असुरों का विनाश करके तत्काल ही हमारी रक्षा की है, उसी तरह असुरों से सदा हमारी रक्षा करती रहो और विश्व के पापों तथा उत्पात के कारण होनेवाले महामारी आदि बड़े-बड़े उपद्रवों को शीघ्र ही शमन करो ।। ३४ ।।

हे संसार की पीड़ा हरण करने वाली देवि ! तुम प्रणत भक्तों के ऊपर प्रसन्न होओ और हे त्रैलोक्य वासियों के वन्दनीया देवि ! तुम लोगों को अभीष्ट वर देने वाली होओ ।। ३५ ।।

देवी ने कहा—।। ३६ ।।

हे देवता गण ! मैं वर देने के लिये तैयार हूं । तुम लोग संसार की भलाई करनेवाले जिस वर की अपने मन में अभिलाषा करते हो, उसे माँग लो मैं अवश्य उसे दूंगी ।। ३७ ।।

देवा ऊचुः ॥ ३८ ॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥३९॥

देव्युवाच ॥ ४० ॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे ।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥४१॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा ।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥४२॥
पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥४३॥
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान् ।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥४४॥

देवताओं ने कहा ॥ ३८ ॥

हे अखिलेश्वरि ! तुम इसी तरह तीनों लोकों की समस्त बाधाओं को शान्त करो और हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥ ३९ ॥

देवी बोलीं ॥ ४० ॥

वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाइसवें युग में शुम्भ और निशुम्भ नामक दो अन्य महासुर पैदा होंगे ॥ ४१ ॥

तब मैं नन्द नामक ग्वाले के घर में उनकी स्त्री यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होकर विन्ध्याचल में निवास करूँगी और उन दोनों (शुंभ-निशुंभ नामक) असुरों का विनाश करूँगी ॥ ४२ ॥

उसके बाद फिर अत्यन्त भयानक रूप में पृथ्वी पर अवतार लेकर वैप्रचित्त असुरों को मारूँगी ॥ ४३ ॥

उन भयानक वैप्रचित्त महाअसुरों का भक्षण करते करते मेरे दाँत अनार के फूल के समान लाल दिखाई पड़ेंगे ॥ ४४ ॥

ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥४५॥
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥४६॥
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिस्यामि यन्मुनीन् ।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥४७॥
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥४८॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥४९॥
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥५०॥

तब स्वर्ग में देवता और मृत्युलोक में मनुष्यगण मेरी निरन्तर स्तुति करेंगे और मुझे रक्तदन्तिका कहेंगे ॥ ४५ ॥

फिर जब सौ वर्ष तक वर्षा नहीं होगी और मुनि लोग जल के लिये मेरी स्तुति करेंगे, तब मेरा अयोनिज अवतार होगा ॥ ४६ ॥

तदनन्तर मैं सौ नेत्रों से मुनियों को देखूँगी, तब लोग मुझे शताक्षी कहेंगे ।।

हे देवताओ ! तब मैं अपने शरीर से लोगों के प्राणों की रक्षा करनेवाले शाक को उत्पन्न करके जबतक वर्षा नहीं होगी तब तक उसी से सम्पूर्ण विश्व का भरण-पोषण करूँगी ॥ ४८ ॥

तब मैं शाकम्भरी नाम से संसार में विख्यात होऊँगी । उसी समय दुर्ग नामक महा असुर को मारूँगी ॥ ४९ ॥

जिससे मेरा नाम "दुर्गादेवी" के रूप में विख्यात होगा । फिर मैं भयानक रूप को धारण करके मुनियों की रक्षा के लिये हिमालय पहाड़ पर असुरों का

रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ॥५१॥
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥५२॥
तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥५३॥
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥५४॥
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ॐ॥५५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
देव्याः स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
उवाचः अर्धश्लोकः ४१, श्लोकाः ५०,
एवम् ५५, एवमादितः ॥ ६३० ॥

भक्षण करूंगी, तब मुनिगण नम्रतापूर्वक मेरी प्रार्थना करेंगे ॥ ५०–५१ ॥

तब मेरा नाम भीमादेवी के रूप में प्रसिद्ध होगा । जब अरुण नामक दैत्य तीनों लोकों में भयंकर उपद्रव मचायेगा ॥ ५२ ॥

तब मैं छः पैर वाले असंख्य भौंरों का रूप बनाकर तीनों लोकों की भलाई के लिये उस असुर का वध करूंगी ॥ ५३ ॥

तब चारों ओर मनुष्य मुझे भ्रामरी नाम से स्तुति करके प्रसन्न करेंगे । इस प्रकार जब-जब इस संसार में दानवों के द्वारा उपद्रव होगा तब-तब मैं अवतार लेकर उन शत्रुओं का विनाश करूंगी ॥ ५४–५५ ॥

श्री मार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवीमाहात्म्य में देवीस्तुति नामक ग्यारहवां
अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

'ॐ' देव्युवाच ॥१॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥२॥
मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् ।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥३॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥४॥

ध्यान का अर्थ—जिनकी कान्ति बिजली के समान चमक रही है, सिंह के कन्धे पर बैठी हुई भयंकर प्रतीत हो रही हैं, अनेक बालिकायें हाथों में तलवार और ढाल लिये जिनके अगल-बगल में खड़ी हैं, स्वयं भी अपने हाथों में जो चक्र, गदा, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश तथा तर्जनीय मुद्रा धारण किये हुए हैं, जिनका रूप अग्निमय है, माथे पर चन्द्रमा विराजमान हैं उन तीनों नेत्रों वाली दुर्गा देवी का मैं ध्यान करता हूँ ।

देवी बोलीं—॥ १ ॥

जो मनुष्य एकाग्र मन से नित्य प्रति इस स्तोत्र (दुर्गा सप्तशती) से मेरी प्रार्थना करेगा, उसकी सभी बाधाओं को अवश्य ही मैं दूर कर दूँगी ॥ २ ॥

जो कोई मधुकैटभ का नाश, महिषासुर का वध और शुम्भ-निशुम्भ के संहारविषयक कथा कहेंगे ॥ ३ ॥

जो कोई अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी को एकाग्र मन से मेरे इस महात्म्य को भक्ति.पूर्वक सुनेंगे ॥ ४ ॥

श्री १०८ दुर्गा-वरदानम्



न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः ।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ ५ ॥
शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः ।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ ६ ॥
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥ ७ ॥
उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् ।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ ८ ॥
यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम ।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ ९ ॥
बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे ।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥ १० ॥

उनपर कभी भी न कोई पाप ही आयेगा, न उससे उत्पन्न विपत्तियाँ ही आयेंगी। उनके यहाँ दरिद्रता नहीं रहेगी और न स्वजनों का वियोग ही होगा ॥

ऐसे मनुष्यों को शत्रु, चोर, राजा, शस्त्र, अग्नि और जल आदि का भी भय नहीं होगा ॥ ६ ॥

इसलिये एकाग्र मन से मेरे इस माहात्म्य का पाठ तथा श्रवण करना चाहिये यह उत्तम माहात्म्य सदा कल्याणप्रद है ॥ ७ ॥

मेरा यह माहात्म्य महामारी से उत्पन्न समस्त उपद्रव तथा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों प्रकार के सन्तापों का शमन करता है।८।

जिस घर में इस माहात्म्य का प्रतिदिन पाठ होता है, उस घर को मैं कभी भी नहीं छोड़ती हूँ, उसी के समीप स्थित रहती हूँ ॥ ९ ॥

बलिदान, पूजा, यज्ञ और अन्य महोत्सव आदि में मेरे सम्पूर्ण चरित्र का पाठ सुनना चाहिये ॥ १० ॥

जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम् ।
प्रतीक्षिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥ ११ ॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥ १२ ॥
सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ १३ ॥
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः ।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥ १४ ॥
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते ।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥ १५ ॥
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥ १६ ॥
उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।

जानकर या अज्ञानता से जो बलि, पूजा और होमादि करता है, उसे मैं प्रेमपूर्वक ग्रहण करती हूँ ॥ ११ ॥

प्रतिवर्ष शरत्कालमें जो महापूजा की जाती है, उस समय मेरा यह माहात्म्य भक्तिपूर्वक सुनने से मनुष्य समस्त बाधाओं से मुक्त होकर मेरी दया से निश्चय धन-धान्य तथा पुत्र-पौत्रो से परिपूर्ण हो जाता है ॥ १२-१३ ॥

जो मनुष्य मेरे इस माहात्म्य, शुम्भ आदि की उत्पत्ति और पराक्रम का श्रवण करते हैं, वे युद्ध में निर्भय हो जाते हैं ॥ १४ ॥

मेरे इस माहात्म्य को सुननेवाले व्यक्तियों का शत्रु-नाश हो जाता है, कल्याण की वृद्धि होती है और कुल में सब प्रसन्न रहते हैं ॥ १५ ॥

सब प्रकार के शान्ति कर्मों में, बुरे स्वप्न देखने पर तथा भयानक ग्रह-पीड़ा आदि में जो मनुष्य मेरे इस माहात्म्य को सुनता है, उसका सभी कष्ट शान्त हो

दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ १७ ॥
बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ १८ ॥
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥ १९ ॥
सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥ २० ॥
विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥ २१ ॥
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते ।
श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति ॥ २२ ॥

जाता है, भयङ्कर ग्रह-पीड़ाएँ नष्ट हो जाती हैं और बुरे स्वप्न भी अच्छे स्वप्न में परिणत हो जाते हैं ॥ १६–१७ ॥

मेरा यह माहात्म्य बालग्रहों से पीड़ित बालकों के लिये शान्तिकारक है और परस्पर के विरोध को मिटाकर मैत्री कराने वाला है ॥ १८ ॥

सभी दुराचारी मनुष्यों के बल को नाश करने में यह माहात्म्य श्रेष्ठ है। इसके पाठ करने मात्र से राक्षस, भूत और पिशाचों का नाश हो जाता है ॥

मेरा यह माहात्म्य मनुष्यों को मेरे समीप लाने वाला है। पशु, पुष्प अर्घ्य, धूप, दीप, गन्ध, ब्राह्मण-भोजन, हवन और रात-दिन अभिषेक तथा नाना प्रकार के भोग चढ़ाकर निरन्तर एक साल तक जो मेरी पूजा करता है, उससे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी प्रसन्नता मेरे इस उत्तम चरित्र का एकबार श्रवण मात्र से हो जाती है। इस माहात्म्य के सुनने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य नीरोग हो जाता है ॥ २०–२२ ॥

रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ।
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥ २३ ॥
तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ २४ ॥
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ।
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥ २५ ॥
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ।
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥ २६ ॥
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा ।
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥ २७ ॥
पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे ।
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ॥ २८ ॥
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात् ।
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥ २९ ॥

मेरी उत्पत्ति-विषयक कथा पढ़ने से समस्त भूतों से रक्षा होती है और युद्ध-विषयक मेरा चरित्र दुष्ट दैत्यों का नाश करने वाला है ॥ २३ ॥

इसे श्रवण करने से मनुष्यों को शत्रु का भय नहीं रहता है। देवताओ ! जो स्तुति तुम लोगों ने, ब्रह्मर्षियों ने और ब्रह्मा ने की है, उसके पढ़ने से सद्बुद्धि मिलती है। जो मनुष्य वन में दावाग्नि से घिर गया हो, जिसे निर्जन स्थान में चोरों ने घेर लिया हो, जिसे शत्रुओं ने पकड़ लिया हो, वन में सिंह, बाघ या जंगली हाथियों ने घेर लिया हो, राजा ने कुपित होकर जिसे प्राणदण्ड की आज्ञा दे दी हो, जो बन्धन में पड़ा हो, जिसकी नाव समुद्र में तूफान की चपेट में पड़ गयी हो, युद्ध में जिस पर भयङ्कर बाणों की वर्षा होती हो तथा भयानक बाधाओं से दुखी हो, वह मनुष्य मेरे इस माहात्म्य का स्मरण कनने से सब दुःखों से विमुक्त

दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥ ३० ॥

ऋषिरुवाच ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥ ३२ ॥
पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत ।
तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान् यथा पुरा ॥ ३३ ॥
यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ।
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥ ३४ ॥
जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे ।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥ ३५ ॥
एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः ।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥ ३६ ॥
तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥ ३७ ॥

हो जाता है। इस चरित्र का स्मरण करने से मेरे प्रभाव के कारण सिंह आदि हिंसक जन्तु, डाकू और शत्रु सभी दूर से ही भाग जाते हैं ॥ २४-३० ॥

ऋषि बोले—॥ ३१ ॥

इस प्रकार कहकर प्रचण्ड पराक्रमवाली भगवती चण्डिका देवताओं के देखते देखते ही वहीं अन्तर्धान हो गयीं। तब देवतागण शत्रुरहित होकर निर्भयपूर्वक पहले की भाँति अपने-अपने अधिकार के भागी हो गये तथा यज्ञ भाग भी प्राप्त करने लगे। देवी के द्वारा देवताओं के शत्रु जगद्विध्वंसी, महापराक्रमी शुम्भ और निशुम्भ के मारे जाने पर अवशिष्ट असुरगण भी पाताल लोक में चले गये ॥

ये राजन्? इस प्रकार भगवती नित्य होती हुई भी अनेक वार जन्म लेकर संसार की रक्षा करती हैं ॥ ३६ ॥

उन्हीं के द्वारा विश्व मोहित होता है। वे ही संसार को जन्म देतीं तथा प्रार्थना करने पर सन्तुष्ट हो, विज्ञान और ऋद्धि (वैभव) प्रदान करती हैं ॥३७॥

व्याप्तं तयै तत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥ ३८ ॥
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥ ३९ ॥
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे ।
सैवाभावे तथालक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥ ४० ॥
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा ।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम्॥ॐ॥ ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
फलस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

उवाच २, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३७, एवम् ४१, एवमादितः ६७१ ॥

हे राजन् ! वह इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। वह महाप्रलय के समय में महाकाली और महामारी का रूप धारण करती हैं ॥ ३८ ॥

वे ही समय-समय पर महामारी होती तथा अजन्मा होती हुई भी सृष्टि के रूप में प्रकट होती हैं। समय-समय पर वही सनातनी देवी सभी प्राणियों की रक्षा करती हैं ॥ ३९ ॥

उन्नति के समय वही मनुष्यों के घर में लक्ष्मी-रूप होकर स्थित होती हैं और अवनति के समय वही लक्ष्मी विनष्ट हो जाती हैं ॥ ४० ॥

पुष्प, धूप, गन्ध आदि से पूजा करने तथा स्तुति करने पर वही देवी धन, पुत्र, सद्बुद्धि तथा उत्तम मार्ग प्रदर्शित करती हैं ॥ ४१ ॥

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवीमाहात्म्य में फलस्तुति नामक बारहवाँ अध्याय
समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

ध्यानम्—

ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे ॥

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥ २ ॥

विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥ ३ ॥

मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ॥ ४ ॥

ध्यान का अर्थ—उदयकालीन सूर्य-मण्डल के समान कान्ति से युक्त चारों भुजाओं में पाश, अङ्कुश, वर, और अभय को लिये हुए तीन नेत्रवाली शिवा का मैं भजन करता हूँ ॥

ऋषि ने कहा—राजन् ! इस प्रकार मैंने देवी का यह श्रेष्ठ माहात्म्य तुमसे कहा। वे देवी ऐसी प्रभावशालिनी हैं, जिन्होंने इस विश्व को धारण कर रखा है ॥

वही देवी ज्ञान उत्पन्न करती हैं। वह भगवान् विष्णु की माया हैं उन्हीं के प्रभाव से तुमको और इस वैश्य को मोह हुआ है। उनके प्रभाव से अन्य बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुष मोहित हो चुके हैं, मोहित हैं और मोहित होंगे। अतः हे महाराज !

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ६ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥ ७ ॥
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥ ८ ॥

जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ।
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥ ९ ॥

स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ॥ १० ॥
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥ ११ ॥

ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ।

तुम उसी देवी की शरण में जाओ। जो मनुष्य उनकी आराधना करते हैं, उनको वे भोग, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करती हैं ॥ ३–५ ॥

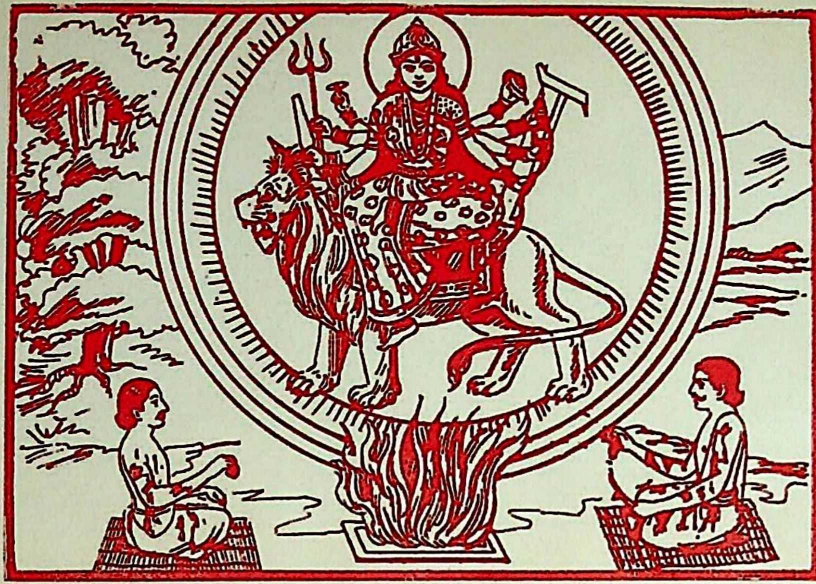
मार्कण्डेय ऋषि बोले—॥ ६ ॥

मेधा ऋषि का यह वचन सुनकर, राज्य छिन जाने से और ममता से दुःखित महाराज सुरथ अति प्रभाव-सम्पन्न, व्रतधारी उन ऋषि को प्रणाम करके तपस्या करने चले गये।

हे महामुने ! वह वैश्य भी भगवती के दर्शन की अभिलाषा से तपस्या करने के लिये नदी के किनारे गया ॥ ७–९ ॥

वैश्य ने देवी सूक्त का जप करके कठोर तपस्या प्रारम्भ की। राजा और वैश्य दोनों नदी के तट पर देवी की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर पुष्प, धूप, होम और तर्पण करके नित्य पूजा करने लगे। वे पहले धीरे-धीरे भोजन कम कर दिये।

श्रीसुरथ-वैश्ययोर्वरदानम्



एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥ १२ ॥
परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥ १३ ॥

देव्युवाच ॥ १४ ॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ १६ ॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥ १७ ॥
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ १८ ॥

फिर बिलकुल निराहार रहकर एकाग्रचित्त होकर भगवती के ध्यान में लीन हो गये। उन दोनों ने अपने शरीर से रक्त निकालकर बलि दी। इस प्रकार तीन वर्ष तक संयम से आराधना करने पर संसार को धारण करनेवाली चण्डिका प्रसन्न हो प्रकट होकर कहने लगी ॥ १०–१३ ॥

देवी ने कहा—॥ १४ ॥

हे राजन्! तथा अपने कुल को प्रसन्न करनेवाले वैश्य! मैं तुम पर सन्तुष्ट हूँ। तुम लोग जिस वस्तुकी इच्छा रखते हो, वह मुझसे माँग लो। मैं उसे अवश्य दूँगी ॥

मार्कण्डेय ऋषि बोले—॥ १६ ॥

तब राजा ने कहा—मुझे दूसरे जन्म में कभी नष्ट न होने वाला चिरस्थायी राज्य मिले और इस जन्म में मैं अपने बल से सभी शत्रुओं को मारकर अपना राज्य प्राप्त करूँ ॥ १७ ॥

उसके बाद बुद्धिमान् वैश्य ने संसार से विरक्त एवं खिन्न होकर यह संसार है, मैं इसका स्वामी हूँ इस प्रकार के मोह का विनाश करने वाला तत्त्वज्ञान माँगा ॥

देव्युवाच ॥ १९ ॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥ २० ॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ २१ ॥
मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥ २२ ॥
सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥ २३ ॥
वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥ २४ ॥
तं प्रयच्छामि संसिद्धच तव ज्ञानं भविष्यति ॥ २५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ २६ ॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥ २७ ॥
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ।
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥ २८ ॥
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ।

देवी ने कहा—॥ १९ ॥

हे राजन् ! तुम थोड़े ही दिनों में अपने शत्रुओं को बलपूर्वक मारकर अपना राज्य प्राप्त करोगे। वह राज्य तुम्हारे लिये सर्वदा स्थायी रहेगा और जब शरीर त्यागोगे तब सूर्य से जन्म पाकर सावर्णि नामक मनु से विख्यात होओगे ॥ २०–२२ ॥

हे वैश्यों में श्रेष्ठ ! तुमने मुझसे जो वर माँगा है, मैं तुम्हारे लिये वही वर देती हूँ। तुझे मोक्ष देने वाला ज्ञान प्राप्त होगा ॥ २४–२५ ॥

मार्कण्डेय ऋषि बोले—॥ २३ ॥

इस प्रकार देवीने राजा और वैश्य को अभीष्ट वर दिया। उन दोनों ने भक्तिपूर्वक देवी की स्तुति की। उसके बाद देवी अन्तर्धान हो गयीं।

सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ क्लीं ॐ ॥२९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
सुरथवैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
उवाच ६, अर्धश्लोकाः ११, श्लोकाः १२, एवं २९,
एवमादितः ७०० ॥ समस्ता उवाचमन्त्राः ५७,
अर्धश्लोकाः ४२, श्लोकाः ५३५,
अवदानानि ६६ ॥

इस प्रकार क्षत्रियों में श्रेष्ठ राजा सुरथ सूर्य से जन्म लेकर सावर्णि नामक मनु होंगे ॥ २७–२९ ॥

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सावर्णिक मन्वन्तर की कथा के अन्तर्गत
देवी माहात्म्य में राजा और वैश्य के लिये वरदान
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

दुर्गासप्तशती समाप्त

दिङ्न्यासः

ॐ ऐं प्राच्यै नमः । ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः । ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः । ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः । ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः । ॐ क्लीं वायव्यै नमः । ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः । ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः ॥

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥ १ ॥
अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥ २ ॥
घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार न्यास और ध्यान के पश्चात् 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस नवार्णमन्त्र का १०८ या १००८ वार जप करना चाहिए। जप के पहले ॐ ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' इस मन्त्रसे मालाकी पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे ।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा ।

प्रार्थना के पश्चात् जप पूरा करके उसे भगवतीको समर्पित करे—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥

जप समर्पित करने के पश्चात् निम्न लिखित करादिन्यास करे—

करन्यासः

ॐ ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ चं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ डिं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ कां अनामिकाभ्यां नमः । ॐ यैं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं चण्डिकायै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ हृदयाय नमः ।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ शिरसे स्वाहा ।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ शिखायै वषट् ।
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ कवचाय हुम् ।
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

अथ ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्

ध्यानम्

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला ॥

देवीसूक्तम्

ॐ अहंरुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

ध्यान का अर्थ—जो सिंह की पीठ पर आरूढ हैं, जिनके मस्तक पर चन्द्रमा का मुकुट है, जो मरकतमणि की तरह कान्तिवाली अपनी चारों भुजाओं में शङ्ख, चक्र, धनुष और बाण को धारण करती हैं, तीन नेत्रों से सुशोभित हैं, जिनके विभिन्न अंग बँधे हुए बाजूबन्द, हार, कंकण, खनखनाती हुई करधनी और रुनझुन करते हुए नूपुरों से विभूषित हैं तथा जिनके कानों में रत्नजटित कुण्डल सुशोभित हैं वे देवी दुर्गा हमारी दुर्गति को विनाश करनेवाली हों।

(महर्षि अम्भृण की कन्या का नाम वाक् था। वह ब्रह्मज्ञानी थी। वह देवी को अपने से अभिन्न समझती थी। अतः देवी उन्हीं के मुख से बोल रही हैं)

मैं एकादश रुद्र के रूप में विचरण करती हूँ। मैं सब वस्तुओं के रूप में स्थित हूं। मैं ही विष्णु आदि द्वादश आदित्य होकर विचरण करती हूँ। मैं ही समस्त देवताओं के रूप में स्थित हूँ। मैं ही इन्द्र, अग्नि तथा दोनों अश्विनीकुमारों को धा... करती हूँ ॥ १ ॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ४ ॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।

मैं ही देवताओं के शत्रुओं के नाशक सोम को धारण करती हूँ। मैं ही त्वष्टा, पूषा और भग को धारण करती हूँ। सोमयज्ञ के द्वारा जो देवताओं को तृप्त करता है, उसको उस यज्ञ का फलरूप धनादि मैं ही प्रदान करती रहती हूँ ॥ मैं निखिल ब्रह्माण्ड की ईश्वरी हूँ। अपने उपासकों को धन की प्राप्ति करानेवाले, साक्षात्कार करने योग्य परब्रह्म को अपने से अभिन्न रूप में जाननेवाले तथा पूजनीय देवताओं में मैं ही प्रधान हूँ। मैं ही सर्वत्र सब जीवदेह में विराजमान हूँ। अनन्त ब्रह्माण्डवासी देवतागण, जहाँ कहीं रहकर जो कुछ करते हैं, वे सब मेरी ही आराधना करते हैं ॥ २– ३॥

मैं ही सबकी भोजनशक्ति हूँ, मैं दर्शनशक्ति रूपा हूँ, मैं ही जीवनशक्ति हूँ। मैं ही श्रवणशक्ति हूँ। इसलिये मेरे द्वारा ही लोग भोजन करते हैं, देखते हैं, और जीवित रहते हैं। मेरे द्वारा ही लोग श्रवणादि कार्य करते हैं। जो लोग मुझको तत्वतः नहीं जानते वे लोग संसार में जन्म मृत्यु रूप क्लेश से पीड़ित होते हैं। हे बहुश्रुत ! तुम को यह दुर्लभ उपदेश प्रदान करती हूँ, सुनो ॥४॥

देवताओं और मनुष्यों द्वारा सेवित इस दुर्लभ तत्व को मैं स्वयं तुमको कहती हूँ। मैं जिन्हे जो चाहती हूँ उन्हें इच्छा मात्र से ब्रह्मा, महायोगी, अतीन्द्रियदर्शी और तत्वज्ञानी बनाती हूँ ॥ ५ ॥

रुद्र ने जो त्रिपुरासुर का नाश किया था, सो मेरा ही कार्य है, मैंने ही उस

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ६ ॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वितिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥ ७ ॥

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवापर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव ॥ ८ ॥

इति देवीसूक्तं समाप्तम्

ब्राह्मणों के शत्रु त्रिपुरासुर को मारने के लिये अपनी शक्ति द्वारा रुद्र के धनुष को विस्तृत किया था । मैं ही साधुओं की रक्षा के लिये युद्ध किया करती हूँ । मैं इस विश्व ब्रह्माण्ड के बाहर और भीतर ओत-प्रोत भाव से प्रविष्ट होकर विराजमान हूँ ॥ मैं हो इस संसार के मूल कारण स्वरूप आकाश को उत्पन्न करती हूं । अपने चैतन्य रूप से आकाशादि को प्रकाशित करती हूँ । समुद्र तथा जल में मेरे कारण ही उत्पत्ति की स्थिति है । अतएव मैं समस्त विश्व में व्याप्त रहती हूँ तथा उस स्वर्गलोक का भी अपने शरीर से स्पर्श करती हूँ ॥ ६-७ ॥

मैं स्वाधीन हूँ, मेरे किसी कार्य में किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती । मैं स्वयं इस त्रिभुवन की सृष्टि करके इसके अन्दर और बाहर वायु की तरह विराजमान हूं । स्वेच्छा से ही कार्य करती हूँ । मैं पृथ्वी और आकाश दोनों से परे हूँ । अपनी महिमा से ही में ऐसी हुई हूँ ॥ ८ ॥

देवीसूक्त समास

अथ तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्

(तन्त्रोक्त देवीसूक्त की हिन्दी टीका सप्तशती के ५ वें अध्याय में देखें)

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताःस्म ताम् ॥ १ ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ २ ॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ३ ॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ ४ ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ ५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८ ॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १० ॥

या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ११ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १८ ॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २० ॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २१ ॥

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्यै नमो नमः ॥ २६ ॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥ २७ ॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २८ ॥
स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदाः ॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ३० ॥

इति तन्त्रोक्तं देवीसूक्तं समाप्तम्

अथप्राधानिकं रहस्यम्

ॐ अस्य श्रीसप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, महाकाली महालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, यथोक्तफलावाप्त्यर्थं जपे विनियोगः ।

राजोवाच

भगवन्नवतारा मे चण्डिकायास्त्वयोदिताः ।
एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन् प्रधानं वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज ।
विधिना ब्रूहि सकलं यथावत्प्रणतस्य मे ॥ २ ॥

ऋषिरुवाच

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते ।
भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं नराधिप ॥ ३ ॥
सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी ।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥ ४ ॥

इन सप्तशती के तीनों रहस्यों के नारायण ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और महाकाली, महालक्ष्मी, एवं महासरस्वती देवता हैं। शास्त्र द्वारा प्रतिपादित उत्तम फल की प्राप्ति के लिए जप में इसका विनियोग होता है।

राजा ने कहा—हे भगवन्, आपने चण्डिका देवी के अवतारों का वर्णन किया है, किन्तु हे ब्रह्मन्, अब उन अवतारों का मूलभूत मुख्य स्वरूप बतलाइये और हे द्विज ! देवी के जिस स्वरूप की आराधना जिस विधि से मुझे करनी चाहिये वह स्वरूप और आराधना करने की विधि मुझे विनीत से विधिपूर्वक कहिये ॥ १–२ ॥

ऋषि ने कहा—यह रहस्य परम गुप्त है, अर्थात् किसी से कहने योग्य नहीं है, परन्तु हे राजन् ! तुम भक्त हो, इसलिये ऐसा कोई विषय नहीं है, जो तुमसे न कहूँ सबकी आदि रूपा सत्व रज तम तीनों गुणवाली परमेश्वरी महालक्ष्मी है। वह लक्ष्य और अलक्ष्य स्वरूपा है तथा सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है ॥ ३–४ ॥

मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती ।
नागं लिङ्गं च योनिं च बिभ्रती नृप मूर्द्धनि ॥ ५ ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा ।
शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा ॥ ६ ॥
शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी ।
बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि ॥ ७ ॥
सा भिन्नाञ्जनसंकाशा दंष्ट्राङ्कितवरानना ।
विशाललोचना नारी बभूव तनुमध्यमा ॥ ८ ॥
खड्गपात्रशिर:खेटैरलंकृतचतुर्भुजा ।
कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि सिर:स्रजम् ॥ ९ ॥
सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसी प्रमदोत्तमा ।
नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः ॥ १० ॥

हे राजन् ! वह हाथों में मातुलिङ्ग, गदा, खेट और पानपात्र तथा सिर पर नाग, लिंग और योनि धारण करती है वह तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्ति वाली, तपाये हुए सोने के सुन्दर आभूषण को धारण की हुई देवी अपने तेज से सम्पूर्ण आकाश को परिपूर्ण करती है ॥ ५–६ ॥

उस परमेश्वरी ने सम्पूर्ण संसार को शून्य देखकर केवल तमोगुण से एक दूसरा श्रेष्ठ रूप धारण किया ॥ ७ ॥

वह काजल के ढेर के समान कान्तिवाली, दाढ़ों से शोभायमान सुन्दर मुखवाली, विशाल नेत्रों से शोभित तथा पतली कमरवाली स्त्री हुई ॥ ८ ॥

ढाल, तलवार, प्याले और कटे हुए मस्तक से सुशोभित चार भुजा वाली और वक्षस्थल पर कबन्ध (धड़) तथा मस्तक पर मुण्डों की माला धारण की हुई उस तामसी स्त्री ने महालक्ष्मी से कहा—हे माता, तुम मेरा नाम रखो और मुझे काम बताओ, मैं तुमको नमस्कार करती हूँ ॥ ९–१० ॥

तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम् ।
ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥ ११ ॥
महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा ।
निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ॥ १२ ॥
इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः ।
एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम् ॥ १३ ॥
तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप ।
सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ॥ १४ ॥
अक्षमालाङ्कुशधरा वीणापुस्तकधारिणी ।
सा बभूव वरा नारी नामान्यस्यै च सा ददौ ॥ १५ ॥
महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती ।
आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ॥ १६ ॥
अथोवाच महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम् ।
युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः ॥ १७ ॥

महालक्ष्मी ने उस तामसी स्त्री से कहा—मैं तुम्हें नाम और कर्म बताती हूँ महामाया, महाकाली, महामारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, तृष्णा, एकवीरा, कालरात्रि और दुरत्यया ये तुम्हारे नाम कर्मों के अनुसार हैं। इन नामों से तुम्हारे कर्मों को जानकर जो मनुष्य इनको पढ़ता है वह सुख पाता है ॥११–१३॥

हे राजन्, महालक्ष्मी ने उससे यह कहकर अतिशुद्ध, सतोगुणी चन्द्रमा के समान कान्तिवाला दूसरा स्वरूप धारण किया ॥ १४ ॥

वह उत्तम स्त्री अक्षमाला, अंकुश, वीणा और पुस्तक धारण की हुई थी। महालक्ष्मी ने उसके भी ये नाम रख दिये—महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, बीजगर्भा और धीश्वरी ॥ १५–१६ ॥

उसके बाद महालक्ष्मी ने महाकाली और महासरस्वती से कहा—तुम दोनों देवी अपने स्वरूप के अनुसार स्त्री-पुरुष का जोड़ा उत्पन्न करो ॥ १७ ॥

इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम् ।
हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥ १८ ॥
ब्रह्मन् विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम् ।
श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तास्त्रियम् ॥ १९ ॥
महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह ।
एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते ॥ २० ॥
नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम् ।
जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम् ॥ २१ ॥
स रुद्रः शंकरः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः ।
त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा ॥ २२ ॥
सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णां च पुरुषं नृप ।
जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते ॥ २३ ॥

महालक्ष्मी ने उन दोनों से यह कहकर हिरण्यगर्भ (निमल ज्ञान से सम्पन्न) सुन्दर, कमल पर बैठा हुआ स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा स्वयं उत्पन्न किया ॥१८॥

इसके बाद माता महालक्ष्मी ने पुरुष को ब्रह्मन् ! विधे ! विरञ्चि ! तथा धातः ! इस प्रकार सम्बोधित किया और स्त्री को श्री ! पद्मा, कमला ! लक्ष्मी इत्यादि नामों से पुकारा ॥ १९ ॥

महाकाली और महासरस्वती ने भी स्त्री-पुरुष के जोड़े उत्पन्न किये । हे राजन्, उनके भी स्वरूप और नाम को कहता हूँ ॥ २० ॥

महाकाली ने नीलकण्ठ, रक्तबाहु, श्वेताङ्ग तथा चन्द्रशेखर पुरुष और एक गोरी स्त्री को उत्पन्न किया । पुरुष के रुद्र, शंकर, स्थाणु, कपर्दी और त्रिलोचन, तथा स्त्री के त्रयी, विद्या, कामधेनु, भाषा, अक्षरा और स्वरा नाम रक्खे ॥ २१–२२ ॥

हे राजन्, सरस्वती ने गौरी स्त्री और कृष्ण पुरुष को उत्पन्न किया । उन दोनों के नाम को भी कहता हूँ ॥ २३ ॥

विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः ।
उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ।। २४ ।।
एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे ।
चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ।। २५ ।।
ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मीर्नृप त्रयीम् ।
रुद्राय गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम् ।। २६ ।।
स्वरया सह संभूय विरिञ्चोऽण्डमजीनत् ।
बिभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान् ।। २७ ।।
अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप ।
महाभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।। २८ ।।
पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः ।
संजहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ।। २९ ।।

पुरुष के विष्णु, कृष्ण, ऋषिकेश, वासुदेव और जनार्दन तथा स्त्री के उमा, गौरी, सती, चण्डी, सुन्दरी, सुभगा और शिवा नाम रक्खा ।। २४ ।।

इस प्रकार वे तीनों स्त्रियाँ शीघ्र ही पुरुषत्व को प्राप्त हो गयीं। उनको दिव्य दृष्टि वाले पुरुष ही देखते हैं न कि दूसरे लोग। हे राजन्! महालक्ष्मी ने त्रयी विद्यारूपा सरस्वती को पत्नी के रूप से ब्रह्मा को समर्पित किया, तथा वर देने वाली गौरी को शङ्कर एवं लक्ष्मी देवी को भगवान् वासुदेव के लिए समर्पण किया ।। २५–२६ ।।

ब्रह्मा ने सरस्वती के साथ मिलकर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया और वीर्यवान् भगवान् रुद्र ने गौरी के साथ मिलकर उसे भेदन किया ।। २७ ।।

हे राजन्! उस ब्रह्माण्ड से महत्तत्व आदि तेईस तत्त्व एवं स्थावर जंगम-रूप महाभूतात्मक सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुए ।। २८ ।।

भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी के साथ उस जगत् का पालन किया और महादेव ने गौरी के साथ उसका संहार किया। हे महाराज! महालक्ष्मी सर्वसत्वमयी

महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी ।
निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥ ३० ॥
नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित् ।ॐ। ३१ ॥

इति प्राधानिकं रहस्यं समाप्तम्

—:०:—

ईश्वरी है। वह निराकार होते हुए भी साकार है अतः उनके अनेक नाम हैं वह अपने नामों के सिवा अन्य किसी प्रत्यक्षादि प्रमाण से नहीं जानी जा सकती है॥ २९–३१ ॥

प्रधानिक रहस्य समाप्त

अथ वैकृतिकं रहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता ।
सा सर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ॥ १ ॥
योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा ।
मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः ॥ २ ॥
दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा ।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया ॥ ३ ॥
स्फुरद्दशनदंष्ट्रासा भीमरूपापि भूमिप ।
रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः ॥ ४ ॥
खड्गबाणगदाशूलचक्रशङ्खभुशुण्डिभृत् ।
परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ ॥ ५ ॥

ऋषि ने कहा—हे राजन् ! मैंने जिस तामसी, सात्त्विकी और राजसी (त्रिगुणा) देवी का वर्णन किया है वह शर्वा, चण्डिका, दुर्गा, भद्रा और भगवती भी कहाती है तमोगुण वाली महाकाली विष्णु भगवान् की योगनिद्रा है, जिसकी स्तुति मधुकैटभ के नाश के लिए ब्रह्मा जी ने की थी ॥ १–२ ॥

वह काजल के समान कान्तिवाली है । उसके दस मुंह, दस भुजाएँ, दस पैर और तीस विशाल नेत्र हैं । हे राजन् ! उनके दांत और दाढ़ें चमकती हैं । यद्यपि उनका रूप भयङ्कर है तथापि वे भक्तों को रूप, सौभाग्य, कान्ति एवं महती सम्पदा को देनेवाली हैं ॥ ३–४ ॥

वह अपने हाथों में खड्ग, बाण, गदा, शूल, शंख, चक्र, भुशुंडी, परिघ, धनुष, और रुधिर चपकता हुआ सिर धारण करती हैं ॥ ५ ॥

एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया ।
आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥ ६ ॥
सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा ।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥ ७ ॥
श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला ।
रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुरुन्मदा ॥ ८ ॥
सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा ।
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी ॥ ९ ॥
अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती ।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् ॥ १० ॥
अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा ।
चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः ॥ ११ ॥

वह दुरत्यया महाकाली विष्णु की माया है, जिसकी आराधना करने से चराचर जगत वश में हो जाता है ॥ ६ ॥

जो सम्पूर्ण देवताओं के शरीर से उत्पन्न हुई है वह अतुल कान्तिवाली महिषमर्दिनी तथा तीन गुण वाली साक्षात् महालक्ष्मी है ॥ ७ ॥

उसका मुख श्वेत, भुजाएँ नीली, स्तनमण्डल श्वेत, कटि और चरण लाल जाँघें नीली हैं । वह उत्कट मदवाली है ॥ ८ ॥

उसका जघन विचित्र है और वह चित्र-विचित्र माला, वस्त्र और आभूषण को धारण करती है । वह विचित्र लेपन करती है । वह रूप-लावण्यवती और सौभाग्यवती है ॥ ९ ॥

यद्यपि उनकी भुजाएँ असंख्य हैं, तथापि उनको अट्ठारहभुजा वाली मानकर पूजा करनी चाहिये । अब उनके दाहिनी ओर के निचले हाथों से लेकर बायीं ओर के निचले हाथों तक में क्रमशः जो अस्त्र हैं, उनका वर्णन किया जाता है । उनके हाथों में अक्षमाला, कमल, बाण, तलवार, वज्र, गदा चक्र,

शक्तिर्दराडश्चर्म चापं पानपात्रं कमराडलुः ।
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ॥ १२ ॥
सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप ।
पूजयेत् सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥ १३ ॥
गौरीदेहात् समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया ।
साक्षात् सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिर्बर्हिणी ॥ १४ ॥
दधा चाष्टभुजा बाणमुसले शूलचक्रभृत् ।
शङ्खं घराटां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप ॥ १५ ॥
एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति ।
निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिर्बर्हिणी ॥ १६ ॥
इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्तीनां तव पार्थिव ।
उपासनं जगन्मातुः पृथगासां निशामय ॥ १७ ॥
महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती ।

त्रिशूल, फरसा, शंख, घण्टा, फाँसी, शक्ति, दण्ड, ढाल, धनुष, पानपत्र और कमण्डलु शोभित हैं। वह कमल पर बैठी है ॥ १०–१२ ॥

हे राजन् ! जो मनुष्य इस सर्वदेवमयी ईश्वरी महालक्ष्मी की पूजा करता है, वह सब मनुष्यों और देवताओं का स्वामी होता है ॥ १३ ॥

हे नृप ! जो गौरी के देह से उत्पन्न हुई है और केवल सत्वगुण प्रधान है, वह शुम्भासुर को मारनेवाली साक्षात् सरस्वती है ॥ १४ ॥

सरस्वती के आठ भुजाएँ हैं और वह बाण, मुसल, शूल, चक्र, शंख, घण्टा, हल तथा धनुष को धारण करती है ॥ १५ ॥

जो निशुम्भ का मर्दन और शुम्भासुर का संहार करनेवाली सरस्वती हैं, वह भक्तिपूर्वक पूजित होने पर सर्वज्ञता प्रदान करती हैं ॥ १६ ॥

हे राजन् ! मैंने मूर्तियों के इन स्वरूपों को तुमसे कहा। अब जगन्माताओं की अलग-अलग उपासना सुनो। जब महालक्ष्मी का पूजन करें तब दाहिनी ओर

दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम् ॥ १८ ॥
विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे ।
वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम् ॥ १९ ॥
अष्टादशभुजा मध्ये वामे चास्या दशानना ।
दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत् ॥ २० ॥
अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या नराधिप ।
दशानना चाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा ॥ २१ ॥
कालमृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये ।
यदा चाष्टभुजा पूज्या शुम्भासुरनिर्बर्हिणी ॥ २२ ॥
नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्रविनायकौ ।
नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत् ॥ २३ ॥

बायीं ओर क्रम से महाकाली और महासरस्वती का पूजन करना चाहिये और पृष्ठ भाग में तीनों युगल देवताओं की पूजा करनी चाहिये ॥ १७-१८ ॥

मध्य में सरस्वती के साथ ब्रह्मा का, दक्षिण में गौरी के साथ रुद्र का और उत्तर में लक्ष्मी के साथ हृषीकेश का पूजन करे और इनके सामने आगे कही हुई तीन देवियों की पूजा करें ॥ १९ ॥

मध्य में अर्थात् महालक्ष्मी के सामने अष्टादश भुजा लक्ष्मी का और उनके वाम भाग में अर्थात् महाकाली के सामने दशमुखी महाकाली का और दक्षिण भाग में महासरस्वती का पूजन करते हुए इस प्रकार महालक्ष्मी का पूजन करना चाहिये । हे राजन् ! यदि केवल अष्टादशभुजा का अथवा दशमुखी का अथवा अष्टभुजा का पूजन करना हो तो सम्पूर्ण अरिष्ट शान्ति के लिये दक्षिण और उत्तर की ओर काल और मृत्यु का पूजन करे । जब अष्ट भुजावाली शुम्भासुर मर्दिनी का पूजन करना हो तो उसकी नव शक्तियों का तथा रुद्र और गणेश का भी पूजन करे । 'नमो देव्यै' इस स्तोत्र से महालक्ष्मी की स्तुति करे ॥२०-२३॥

अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः ।
अष्टादशभुजा चैषा पूज्या महिषमर्दिनी ॥ २४ ॥
महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती ।
ईश्वरी पुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी ॥ २५ ॥
महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः ।
पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥ २६ ॥
अर्घ्यादिभिरलंकारैर्गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥ २७ ॥
रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप ।
बलिमांसादिपूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता ॥ २८ ॥
तेषां किल सुरामांसैर्नोक्ता पूजा नृप क्वचित् ।
प्रणामाचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥ २९ ॥

देवी के तीनों अवतारो के पूजन के समय उनके चरित्र में जो स्तोत्र और मंत्र आये हैं, उन्हीं का उपयोग करना चाहिये । यह अष्टादशभुजावाली देवी पूजनीय हैं । यही महिषासुर मर्दिनी, महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती हैं । यहीं पुण्यपापों की ईश्वरी और सम्पूर्ण लोकों की महेश्वरी है । जो पुरुष महिषासुर मर्दिनी का पूजन करता है, वह संसार का स्वामी होता है । तीनों लोकों को धारण करनेवाली तथा भक्तों पर दया करनेवाली चण्डिका का आभूषण, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य और अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से पूजन करना चाहिये ॥ २४–२७ ॥

हे राजन्, रुधिर मिले हुए मांस के बलि से तथा मदिरा से भी पूजा करनी चाहिये किन्तु मांस-बलि आदि से देवी पूजन ब्राह्मण को छोड़कर बताया गया है । हे राजन् ब्राह्मण के लिये कहीं भी मांस और मद्य से पूजा विधान नहीं है ॥२८½॥

प्रणाम, आचमनीय, चन्दन, सुगन्ध, कपूर और ताम्बूल से भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये ।

सकर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्तिभावसमन्वितैः ।
वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम् ॥ ३० ॥
पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया ।
दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥ ३१ ॥
वाहनं पूजयेद्देव्या धृतं येन चराचरम् ।
कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्रमानसः ॥ ३२ ॥
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः ।
एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥ ३३ ॥
चारितार्धं तु न जपेज्जपञ्छिद्रमवाप्नुयात् ।
प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥ ३४ ॥
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ।
प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं तिलसर्पिषा ॥ ३५ ॥
जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः ।

देवी के आगे वाम भाग में कटे हुए सिर वाले ईश्वरी द्वारा मोक्ष को प्राप्त हुए महासुर महिष का पूजन करे। दक्षिण की ओर अग्रभाग में समग्र धर्मरूप ईश्वर एवं चराचर को धारण करनेवाली देवी के वाहन सिंह की पूजा करे और बुद्धिमान् पुरुष एकाग्रचित होकर हाथ जोड़कर इन चरित्रों की स्तुति करे। यदि समय न मिले तो केवल मध्यम चरित से ही स्तुति करे, किन्तु केवल प्रथम या उत्तम चरित्र का पाठ न करे। आधे चरित्र का भी पाठ न करना चाहिये।

ऐसा करने से निस्संदेह विघ्न होता है। स्तोत्र और मंत्रों से जगदम्बा की स्तुति करे और प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके हाथ जोड़कर, सावधान होकर जगद्धात्री से बारम्बार क्षमा मांगे। सप्तशती-स्तोत्र के प्रत्येक मंत्र अथवा महालक्ष्मी-स्तोत्र 'देव्या यया तत' मित्यादि से तिल, घी, और खीर की आहुति

भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत्सुसमाहितः ॥ ३६ ॥
प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः प्रणम्यारोप्य चात्मनि ।
सुचिरं भावयेदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत् ॥ ३७ ॥
एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहम् परमेश्वरीम् ।
भुक्त्वा भोगान् यथाकामंदेवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥
यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ।
भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्परमेश्वरी ॥ ३९ ॥
तस्मात्पूजय भूपाल सर्वलोकमहेश्वरीम् ।
यथोक्तेन विधानेन चण्डिकां सुखमाप्स्यसि ॥ ४० ॥

॥ इति वैकृतिकं रहस्यं समाप्तम् ॥

दे । फिर सावधान होकर नाम और पदों से देवी का पूजन करे ॥ २९–३६ ॥

उसके बाद एकाग्रचित होकर हाथ जोड़कर आत्मा में प्राणों को रोककर नम्रता से बहुत देर तक चण्डिका देवी का ध्यान करे और उन्हीं में तन्मय हो जाय । इस प्रकार जो मनुष्य भक्तिपूर्वक परमेश्वरी का प्रतिदिन पूजन करता है; वह अभीष्ट सुख का भोग करके अन्त में देवी के लोक में जाता है ॥ ३७–३८ ॥

जो पुरुष भक्तों पर दया करनेवाली चण्डिका का प्रतिदिन पूजन नहीं करता, परमेश्वरी उसके पुण्यों को विफल करके उसे जन्म भर दुःख शोक में भस्म करती हैं । इसलिए हे राजन् ! तुम सम्पूर्ण लोकों की महेश्वरी चण्डिका का शास्त्रोक्त विधि से पूजन करो । उससे तुम्हें सुख मिलेगा ॥ ३९–४० ॥

अथ मूर्तिरहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा ।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥ १ ॥
कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिकनकाम्बरा ।
देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा ॥ २ ॥
कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलंकृतचतुर्भुजा ।
इन्दिरा कमला लक्ष्मी सा श्री रुक्माम्बुजासना ॥ ३ ॥
या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयानघ ।
तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु सर्वभयापहम् ॥ ४ ॥
रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा ।
रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ॥ ५ ॥

ऋषि ने कहा—हे राजन् ! भगवती नन्दा नामवाली जो नन्द से उत्पन्न होगी, उसकी भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा करने से मनुष्य तीनों लोकों को वश कर लेता है। वह देवी सुवर्ण के उत्तम आभूषणों से शोभित है, उनके अङ्गों की कान्ति कनक के समान उत्तम है, उनके वस्त्र सुवर्ण के समान सुनहरे हैं और वह देवी सुवर्ण के समान दीप्तिमती है ॥ १–२ ॥

कमल अङ्कुश, पाश और शंख से उसकी चारों भुजाएँ शोभित हैं और उसके इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी, श्री और रुक्माम्बुजासना (सुवर्णमय कमल के आसन पर विराजमान) ये नाम हैं ॥ ३ ॥

हे निष्पाप ! मैंने रक्तदन्तिका नाम से जिस देवी का वर्णन किया है, उनके सम्पूर्ण भयनाशक स्वरूप को कहता हूँ, सुनो ॥ ४ ॥

रक्तवस्त्र, रक्तवर्ण, सब अंग रक्तमयी आभूषणों से शोभित, रक्त आयुध, रक्तनेत्र, रक्त केशवाली अति भयंकर रक्त एवं तीक्ष्ण-नखवाली रक्तासन पर

रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका ।
पतिं नारीवानुरक्ता देवीभक्तं भजेज्जनम् ॥ ६ ॥
वसुधेव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी ।
दीर्घौ लम्बावतिस्थूलौ तावतीव मनोहरौ ॥ ७ ॥
कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी ।
भक्तान् सम्पाययेद्देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥ ८ ॥
खड्गं पात्रं च मुसलं लाङ्गलं च बिभर्ति सा ।
आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगेश्वरीति च ॥ ९ ॥
अनया व्याप्तमखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
इमां यः पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम् ॥ १० ॥
भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ।
अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम् ।
तं सा परिचरेद्देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना ॥ ११ ॥

स्थित तथा रक्तदन्तवाली देवी भक्तों के वश में उसी प्रकार रहती हैं जैसे साध्वी स्त्री पति के वश में रहती है। वह देवी पृथ्वी के समान विशाल हैं और उनके दोनों स्तन सुमेरु पर्वत के समान हैं। वे दोनों स्तन बड़े लम्बे, बड़े मोटे, अत्यन्त मनोहर, कठोर, शोभायमान और आनन्द के समुद्र हैं। देवी सब कामनाओं को देनेवाली दोनों स्तनों को अपने भक्तजनों को पिलाती हैं ॥ ५–८ ॥

देवी की चारों भुजाएँ खड्ग, पात्र, हल और मूसल से शोभित हैं। वे देवी रक्तचामुण्डा और योगेश्वरी के नाम से विख्यात हैं और वे स्थावर जंगमरूप सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं। जो पुरुष भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता है, वह भी चराचर में व्याप्त हो जाता है ॥ ९–१० ॥

जो पुरुष रक्तदन्तिका के इस स्तोत्र को पढ़ता है, देवी उसकी ऐसी सेवा करती हैं जैसे स्त्री अपने प्रिय पति की ॥ ११ ॥

शाकम्भरी नीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना ।
गम्भीरनाभिस्त्रिवलीविभूषिततनूदरी ॥ १२ ॥
सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनी ।
मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया ॥ १३ ॥
पुष्पपल्लवमूलादिफलाढ्यं शाकसंचयम् ।
काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृण्मृत्युभयापहम् ॥ १४ ॥
कार्मुकं च स्फुरत्कान्ति बिभ्रती परमेश्वरी ।
शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता ॥ १५ ॥
विशोका दुष्टदमनी शमनी दुरितापदाम् ।
उमा गौरी सती चण्डी कालिका सा च पार्वती ॥ १६ ॥
शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन् ।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम् ॥ १७ ॥

शाकम्भरी देवी का वर्ण नील है, नील कमल के समान उनके नेत्र हैं, गंभीर नाभि है और त्रिवली से भूषित उनका सूक्ष्म उदर है ॥ १२ ॥

कड़े, ऊंचे, गोल, मोटे समान और मांसल स्तन हैं। उनके हाथों में कमल हैं, उनपर भौंरे गूंज रहे हैं और कमल पर ही वे विराजमान हैं ॥ १३ ॥

पुष्प, पल्लव, मूल और फल से युक्त, अनेकों सुन्दर रसोंवाले, क्षुधा, तृष्णा, मृत्यु और वृद्धावस्था को दूर करनेवाले शाकसमूह तथा चमकते हुए धनुष को धारण करती हैं। वह परमेश्वरी, शाकम्भरी, शताक्षी हैं और दुर्गा कही गई हैं। वे ही विशोका, दुष्टदमनी, उमा, गौरी, सती, चण्डी, कालिका और विपत्तियों का विनाश करनेवाली पार्वती हैं ॥ १४–१६ ॥

जो मनुष्य शाकम्भरी का ध्यान, जप, पूजन, स्तुति और नमस्कार करता है, वह शीघ्र ही अन्न, पान और अमृतरूप फल पाता है ॥ १७ ॥

भीमापि नीलवर्णा सा दंष्ट्रादशनभासुरा ।
विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा ॥ १८ ॥
चन्द्रहासं च डमरुं शिरः पात्रं च बिभ्रती ।
एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता ॥ १९ ॥
तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत् ।
चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता ॥ २० ॥
चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते ।
इत्येता मूर्तयो देव्याः याः ख्याता वसुधाधिप ॥ २१ ॥
जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः ।
इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित्त्वया ॥ २२ ॥

भीमा देवी भी नीलवर्ण हैं, उनकी दाढ़ें और दांत बहुत सुन्दर हैं, उनके नेत्र विशाल हैं, गोल और स्थूल कुच हैं ॥ १८ ॥

वे चन्द्रहास, डमरू, कपाल और ढाल-तलवार धारण करती हैं। वे ही एकवीरा कालरात्रि, कामदा नाम से कही जाती हैं ॥ १९ ॥

भ्रामरी देवी की कान्ति विचित्र (अनेक रंग की) है। वे अपने तेजोमण्डल के कारण दुर्धर्ष दिखायी देती हैं। उनका अंगराग भी अनेक रंग का है तथा वे चित्र-विचित्र आभूषणों से सुशोभित हैं ॥ २० ॥

चित्र भ्रमरपाणि और महामारी इन नामों से इनका गान किया जाता है। हे नृप ! देवी की ये मूर्तियाँ शास्त्र में वर्णित हैं ॥ २१ ॥

ये मूर्तियाँ जगन्माता चण्डिका की कामधेनु कहलाती हैं अर्थात् कामधेनु के समान मनोवाञ्छित फल को देती हैं। हे राजन् ! यह चरित्र परम गुप्त है। किसी से कहना नहीं चाहिये ॥ २२ ॥

व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामभीष्टफलदायकम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ॥ २३ ॥
सप्तजन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि ।
पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ २४ ॥
देव्या ध्यानं मया ख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं महत् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम् ॥ २५ ॥
एतस्यास्त्वं प्रसादेन सर्वमान्यो भविष्यसि ।
सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत् ।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम् ॥ २६ ॥

इति मूर्तिरहस्यं सम्पूर्णम्

दिव्य मूर्तियों का आख्यान मनोवाञ्छित फल को देनेवाला है, अतः पूर्ण प्रयत्न करके तुम निरन्तर देवी के अराधन में लगे रहो ॥ २३ ॥

सप्तशती के मंत्रों के पढ़ने मात्र से प्राणी ब्रह्महत्या के समान घोर सात जन्म के पापों से मुक्त हो जाते हैं। हे राजन् ! मैंने अत्यन्त गुप्त से गुप्त देवी का ध्यान तुमसे कहा। विधिपूर्वक यह ध्यान करने से इच्छानुसार फल मिलता है ॥ २४–२५ ॥

उनकी अनुकम्पा से तुम सर्वमान्य हो जाओगे। देवी सर्वरूपमयी है तथा सम्पूर्ण संसार देवीमय है। अतः मैं उन विश्वरूपा परमेश्वरी को नमस्कार करता हूं ॥ २६ ॥

क्षमा-याचना

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि ॥ १ ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ॥ २ ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ ३ ॥
अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत् ।
यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः ॥ ४ ॥
सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके ।
इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ५ ॥

हे परमेश्वरि ! मेरे द्वारा रात-दिन सहस्रों अपराध हुए करते हैं । 'मेरा यह दास है' यह समझकर तुम कृपा कर मेरे उन अपराधों का क्षमा करो ॥ १ ॥

न तो मैं आवाहन करना ही जानता, न तो विसर्जन ही करना जानता और न तो पूजा करना ही जानता हूँ । हे परमेश्वरि ! क्षमा करो ॥ २ ॥

हे सुरेश्वरि ! मैंने जो मंत्रहीन, क्रियाहीन और भक्तिहीन पूजन किया है, वह सब आपकी दया से पूर्ण हो ॥ ३ ॥

सैकड़ों अपराध करके भी भक्त आपकी शरण में आकर 'जगदम्ब' यह कह-कर जिस गति को प्राप्त करता है, उसे ब्रह्मादि देवगण भी पाने में असमर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

जगदम्बिके ! मैं अपराधी हूं, किन्तु तुम्हारी शरण में आया हूँ । इस समय मैं दया का पात्र हूँ । तुम जैसा चाहो, करो । अज्ञानवश या बुद्धिभ्रम होने के

अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥ ६ ॥
कामेश्वरि जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे ।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि ॥ ७ ॥
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥ ८ ॥

॥ श्रीदुर्गार्पणमस्तु ॥

कारण भूल से जो कुछ भी मैंने कम या अधिक कर दिया हो, हे देवि ! परमेश्वरि ! वह सब क्षमा करो और प्रसन्न होओ ॥ ५–६ ॥

हे जगन्मातः कामेश्वरि ! सच्चिदानन्दस्वरूपिणी परमेश्वरि ? तुम प्रेम-पूर्वक मेरी यह पूजा स्वीकार करो और मुझपर प्रसन्न होओ ॥ ७ ॥

तुम गुप्त से भी गुप्त चीजों की रक्षा करनेवाली हो । मेरे किये हुए इस जप को ग्रहण करो । देवि ! महेश्वरि ! तुम्हारी कृपा से मुझे सिद्धि प्राप्त हो ॥ ८ ॥

श्रीदुर्गामानस-पूजा

उद्यच्चन्दनकुङ्कुमारुणपयोधाराभिराप्लाविता
नानानर्घ्यमणिप्रवालघटितां दत्तां गृहाणाम्बिके ।
आमृष्टां सुरसुन्दरीभिरभितो हस्ताम्बुजैर्भक्तितो
मातः सुन्दरि भक्तकल्पलतिके श्रीपादुकामादरात् ॥ १ ॥
देवेन्द्रादिभिरर्चितं सुरगणैरादाय सिंहासनं
चञ्चत्काञ्चनसंचयाभिरचितं चारुप्रभाभास्वरम् ।
एतच्चम्पककेतकीपरिमलं तैलं महानिर्मलं
गन्धोद्वर्तनमादरेण तरुणीदत्तं गृहाणाम्बिके ॥ २ ॥
पश्चाद्देवि गृहाण शम्भुगृहिणि श्रीसुन्दरि प्रायशो
गन्धद्रव्यसमूहनिर्भरतरं धात्रीफलं निर्मलम् ।

भक्तों की अभिलाषाओं को पूरा करनेवाली कल्पलता स्वरूपे हे मातः त्रिपुरसुन्दरी ! यह पादुका आदरपूर्वक तुम्हारे चरणों में समर्पित है, इसे ग्रहण करो । यह उत्तम चन्दन और कुङ्कुम से मिश्रित लाल जल की धारा से धोयी गई है । अनेकों प्रकार के बहुमूल्य मणियों और मूंगों से यह बनाया गया है । बहुत सी देवाङ्गनाओं ने अपने करकमलों से भक्तिपूर्वक साफ करके चारों तरफ सुन्दर सजा दिया है ॥ १ ॥

देवताओं के राजा इन्द्र आदि के द्वारा पूजित इस सिंहासन को देवताओं ने लाया है । यह चमकते हुए सोने के ढेरों से बनाया गया है तथा सुन्दर प्रभाओं से देदीप्यमान हो रहा है । इसमें केतकी और चम्पा की सुगन्ध से युक्त अत्यन्त निर्मल तेल और उबटन लगा हुआ है, जिसे युवतियाँ आदरपूर्वक आपकी सेवा में अर्पण कर रही हैं । माँ ! इसे स्वीकार करो ॥ २ ॥

हे देवि ! इसके बाद निर्मल धात्री के फल को ग्रहण करो । शिवप्रिये ! त्रिपुरसुन्दरि ! इस आमले में सभी सुगन्धित पदार्थ मिला दिया गया है, जिससे

तत्केशान् परिशोध्य कङ्कतिकया मन्दाकिनोस्रोतसि
स्नात्वा प्रोज्ज्वलगन्धकं भवतु हे श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे ॥३॥

सुराधिपतिकामिनीकरसरोजनालीधृतां
सचन्दनसकुङ्कुमागुरुभरेण विभ्राजिताम् ।
महापरिमलोज्ज्वलां सरसशुद्धकस्तूरिकां
गृहाण वरदायिनि त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे ॥ ४ ॥

गन्धर्वामरकिन्नरप्रियतमासन्तानहस्ताम्बुज-
प्रस्तारैर्ध्रियमाणमुत्तमतरं काश्मीरजापिञ्जरम् ।
मातर्भास्वरभानुमण्डललसत्कान्तिप्रदानोज्ज्वलं
चैतन्निर्मलमातनोतु वसनं श्रीसुन्दरि त्वन्मुदम् ॥ ५ ॥

यह अत्यन्त सुगन्धित हो गया है। इसे अपने बालों में लगाकर कंघो से झाड़ लो और गंगाजी की पवित्र धारा में स्नान करो। तब हे श्री सुन्दरि ! इस दिव्यगन्ध को लगा लो, जो कि तुम्हारे आनन्द को बढ़ाने के लिये लाया गया है। हे त्रिपुर सुन्दरि ! तुम सम्पत्ति को देनेवाली हो। सभी प्रकार के वरदानों को पूरा करनेवाली हो। देवराज इन्द्र की पत्नी महारानी शची स्वयं अपने करकमलों में शुद्ध एवं सरस कस्तूरी को लेकर आपकी सेवा में खड़ी हैं। इसे ग्रहण करो। इसमें चन्दन, कुंकुम तथा अगुरु मिलने से इसकी शोभा बहुत ही बढ़ गई है और मनोहर प्रतीत होती है ॥ ३–४ ॥

मा श्री सुन्दरि ! यह केसर में रँगा हुआ परम उत्तम निर्मल पीताम्बर है। इसे गन्धर्व, देवता और किन्नरों की सुन्दर स्त्रियाँ फैलाये हुये अपने कर-कमलों में धारण किये तुम्हारी सेवा में खड़ी हैं। इसे तुम ग्रहण करो। यह तुम्हारे हर्ष को बढ़ाने के लिये हैं। इस वस्त्र से अत्यन्त देदीप्यमान सूर्यमण्डल की शोभामयी कान्ति निकल रही है, जिससे यह अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥५॥

स्वर्णाकल्पितकुण्डले श्रुतियुगे हस्ताम्बुजे मुद्रिका
मध्ये सारसना नितम्बफलके मञ्जीरमङ्घ्रिद्वये ।
हारो वक्षसि कङ्कणौ क्वणरणत्कारौ करद्वन्द्वके
विन्यस्तं मुकुटं शिरस्यनुदिनं दत्तोन्मदं स्तूयताम् ॥ ६॥
ग्रीवायां धृतकान्तिकान्तपटलं ग्रैवेयकं सुन्दरं
सिन्दूरं विलसल्ललाटफलके सौन्दर्यमुद्राधरम् ।
राजत्कज्जलमुज्ज्वलोत्पलदलश्रीमोचने लोचने
तद्दिव्यौषधिनिर्मितं रचयतु श्रीशाम्भवि श्रीप्रदे ॥ ७ ॥
अमन्दतरमन्दरोन्मथितदुग्धसिन्धूद्भवं
निशाकरकरोपमं त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे ।
गृहाण मुखमीक्षितुं मुकुरबिम्बमाविद्रुमै-
र्विनिर्मितमघच्छिदे रतिकराम्बुजस्थायिनम् ॥ ८ ॥

हे देवि ! सोने से बने हुए कुण्डल तुम्हारे कानों में सुशोभित होवें। करकमलों में अंगूठी, कटिभाग में नितम्बों पर करधनी और दोनों चरणों में मंजीर शोभा पावे। वक्षस्थल में हार सुहाये। दोनों कलाइयों में कंगन खनखनाते रहें। मस्तक पर दिव्य मुकुट तुम्हारे आनन्द को बढ़ावे। सभी आभूषण तुम्हारी प्रसन्नता को बढ़ाने योग्य हैं ॥ ६ ॥

सम्पत्ति को देनेवाली शिवप्रिये पार्वति ! तुम अपने गले में अत्यन्त चमकने वाली सुन्दर हँसली पहन लो, मस्तक पर सिन्दूर की बिंदी लगा लो। कमल-पत्र की सुन्दरता को तिरस्कृत करनेवाले अपने नेत्रों में अनेक दिव्य औषधियों से बनाये गये इस काजल को लगा लो ॥ ७ ॥

पापों को दूर करनेवाली एवं सम्पत्ति को देनेवाली हे त्रिपुरसुन्दरि ? तुम अपने मुख की सुन्दरता को देखने के लिए इस दर्पण को ग्रहण करो। यह बहुत ही मनोहर है। जिस समय बहुत जोरों से घूमनेवाले क्षीरसागर को मन्दराचल पर्वत की मथनी से मथा गया था, उसी समय यह दर्पण निकला

कस्तूरीद्रवचन्दनागुरुसुधाधाराभिराप्लावितं
चञ्चच्चम्पकपाटलादिसुरभिद्रव्यैः सुगन्धीकृतम् ।
देवीस्त्रीगणमस्तकस्थितमहारत्नादिकुम्भव्रजै-
रम्भः शाम्भवि संभ्रमेण विमलं दत्तं गृहाणाम्बिके ॥ ९ ॥
कह्लारोत्पलनागकेसरसरोजाख्यावलीमालती-
मल्लीकैरवकेतकादिकुसुमै रक्ताश्वमारादिभिः ।
पुष्पैर्माल्यभरेण वै सुरभिणा नानारसस्रोतसा
ताम्राम्भोजनिवासिनीं भगवतीं श्रीचण्डिकां पूजये ॥१०॥
मांसीगुग्गुलचन्दनागुरुरजः कर्पूरशैलेयजै-
र्माध्वीकैः सह कुङ्कुमैः सुरचितैः सर्पिर्भिरामिश्रितैः ।
सौरभ्यस्थितिमन्दिरे मणिमये पात्रे भवेत् प्रीतये
धूपोऽयं सुरकामिनीविरचितः श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥११॥

था । यह चन्द्रमा की किरणों के समान उज्वल है । इसके चारों ओर मूंगे जड़े हुए हैं । जिसे साक्षात् रतिरानी अपने कर-कमलों में लेकर खड़ी है, तुम इसे स्वीकार करो ॥ ८ ॥

मा पार्वती ! चम्पा और गुलाल आदि बहुत से सुगन्धित द्रव्यों से युक्त इस निर्मल जल को तुम ग्रहण करो । यह जल कस्तूरी रस, चन्दन, अगुरु और अमृत की धारा से युक्त है । अनेकों देवाङ्गनाओं ने अपने मस्तक पर बहुरत्नों से युक्त कलशों में इस जल को गिराने के लिये प्रस्तुत हैं । इसे तुम ग्रहण करो ॥९॥

मैं श्री चण्डिका देवी की पूजा करता हूं । वह देवी कल्हार, उत्पल, नागकेस कमल, मालती, मल्लिका, कुमुद, केतकी और लालकनेर आदि सुगन्धित पुष्पों एवं पुष्पमालाओं से सुशोभित है । एवं अनेकों प्रकार के रसों की धारा से लाल कमल के अन्दर निवास करती है ॥ १० ॥

हे चण्डिके ! देवोचित मधु, कुंकुम एवं घृत से मिश्रित जटामासी, गुग्गुल, चन्दन, अगुरु चूर्ण, कर्पूर, शिलाजीत के द्वारा सुगन्धित के एकमात्र स्थान

घृतद्रवपरिस्फुरद्रुचिररत्नयष्ट्यान्वितो
महातिमिरनाशनः सुरनितम्बिनीनिर्मितः।
सुवर्णचषकस्थितः सघनसारवर्त्यान्वित-
स्तव त्रिपुरसुन्दरि स्फुरति देवि दीपो मुदे ॥ १२ ॥

जातीसौरभनिर्भरं रुचिकरं शाल्योदनं निर्मलं
युक्तं हिङ्गुमरीचजीरसुरभिद्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनैः।
पक्वान्नेन सपायसेन मधुना दध्याज्यसंमिश्रितं
नैवेद्यं सुरकामिनीविरचितं श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥ १३ ॥

लवङ्गकलिकोज्ज्वलं बहुलनागवल्लीदलं
सजातिफलकोमलं सघनसारपूगीफलम्।

मणिमय पात्र में जो तुम्हारे हर्ष के लिये सुराङ्गनाओं के द्वारा विरचित यह धूप तुम्हारी प्रसन्नता के लिए हो ॥ ११ ॥

हे त्रिपुरसुन्दरि! यह दीप द्रवीभूत घी से जलता हुआ सुन्दर रत्न के डण्डे से युक्त है, महान् अन्धकार का नाशक है, सुराङ्गनाओं ने इसे बनाया है और सोने के पात्र में यह स्थित है। कर्पूर के साथ बत्ती से युक्त होकर जल रहा है। जो तुम्हारी प्रसन्नता को बढ़ावे ॥ १२ ॥

हे चण्डिके! देवाङ्गनाओं के द्वारा निर्मित यह नैवेद्य तुम्हारी प्रसन्नता के लिये हो। इसमें अगहनी चावल का स्वच्छ भात है, जो अत्यन्त प्रियकर और चमेली के समान सुगन्धित है। यह नैवेद्य हींग, मिर्च, जीरा तथा सुगन्धित द्रव्यों से तथा नाना प्रकार के व्यञ्जनों से युक्त एवं पकवान, खीर, मधु, दही, और घी से मिश्रित है ॥ १३ ॥

मा! कोमल जावित्री, कर्पूर (पिपरमिण्ट) और सुपारी रखकर बनाये गये यह दिव्य ताम्बूल सुन्दर रत्नमय पात्र में रक्खा हुआ है, इसे अपने मुख में ग्रहण करो। लौंग की कली चुभोकर इसके बीरे तैयार किये गये हैं,

सुधामधुरिमाकुलं रुचिररत्नपात्रस्थितं
गृहाण मुखपङ्कजे स्फुरितमम्ब ताम्बूलकम् ॥ १४ ॥
शरत्प्रभवचन्द्रमःस्फुरितचन्द्रिकासुन्दरं
गलत्सुरतरङ्गिणीललितमौक्तिकाडम्बरम् ।
गृहाण नवकाञ्चनप्रभवदण्डखण्डोज्ज्वलं
महात्रिपुरसुन्दरि प्रकटमातपत्रं महत् ॥ १५ ॥
मातस्त्वन्मुदमातनोतु सुभगस्त्रीभिः सदान्दोलितं
शुभ्रं चामरमिन्दुकुन्दसदृशं प्रस्वेददुःखापहम् ।
सद्योऽगस्त्यवसिष्ठनारदशुकव्यासादिवाल्मीकिभिः
स्वेचित्ते क्रियमाण एव कुरुतां शर्माणि वेदध्वनिः ॥ १६ ॥

अतः यह बहुत ही सुन्दर है। इसमें अनेक पान के पत्तों का उपयोग किया गया है तथा यह मधुमय सुधा (चूर्ण) से परिपूर्ण है ॥ १४ ॥

मा ! महात्रिपुरसुन्दरि ! तुम्हारे लिये यह विशाल एवं शरत्कालीन चन्द्रमा की चाँदनी की तरह सुनहला छत्र प्रकट हुआ है इसे तुम ग्रहण करो। इसके अन्दर मोतियों की झालरें इस प्रकार जान पड़ती हैं मानो देवनदी गंगा की धारायें ऊपर से नीचे की ओर गिरती है। यह छत्र सुवर्णमय दण्डा के कारण अत्यन्त सुन्दरता को पा रहा है ॥ १५ ॥

मा ! चन्द्रमा और कुन्द के समान शुभ्र एवं पसीने के कष्ट से मुक्त करने वाला और सुन्दर स्त्रियों से सदा डुलाये जाने वाला यह चवर आपके आनन्द को बढ़ावे। इसके अलावा महर्षि अगस्त्य, वशिष्ठ, नारद, शुक, व्यास और बाल्मीकि मुनि अपने-अपने मन में जो वेदध्वनि करते हैं, वह वेदध्वनि आपके हर्ष को बढ़ावे ॥ १६ ॥

स्वर्गाङ्गणे वेणुमृदङ्गशङ्खभेरीनिनादैरुपगीयमाना ।
कोलाहलैराकलिता तवास्तु विद्याधरी नृत्यकला सुखाय ॥१७॥

देवि भक्तिरसभावितवृत्ते
प्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते ।
तत्र लौल्यमपि सत्फलमेकं
जन्मकोटिभिरपीह न लभ्यम् ॥ १८ ॥

एतैः षोडशभिः पद्यैरुपचारोपकल्पितैः ।
यः परां देवतां स्तौति स तेषां फलमाप्नुयात् ॥ १९ ॥

इति दुर्गामानसपूजा समाप्ता

स्वर्ग के आङ्गन में वेणु मृदङ्ग, शङ्ख और भेरी के शब्दों से गाये जाने पर शोर-गुल मच गया है। वह विद्याधरी का नृत्यप्रदर्शन तुम्हारे सुख को बढ़ावे ॥ १७ ॥

देवि ! भक्ति रस से युक्त इस स्तोत्र में यदि कुछ भी भक्तिभाव भरा हो तो उसी से प्रसन्न हो जाओ। तुम्हारी भक्ति के लिये ही मन व्याकुल है। वही जीवन का एक मात्र फल है, जो तुम्हारी कृपा के बिना करोड़ो बार जन्म धारण करने पर भी सुलभ नहीं हो सकती ॥ १८ ॥

इन सोलह पद्यों की रचना विभिन्न उपचारों के साथ की गई है। इससे जो भगवती महामाया की वन्दना करता है उसे सभी प्रकार का फल प्राप्त हो जाता है ॥ १९ ॥

अथ दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला

दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गापद्विनिवारिणी ।
दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी ॥
दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा ।
दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोकदवानला ॥
दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी ।
दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता ॥
दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी ।
दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी ॥
दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी ।
दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी ॥
दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी ।
नामावलिमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः ॥
पठेत् सर्वभयान्मुक्तो भविष्यति न संशयः ।

इति दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला समाप्ता

अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः ।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥ १ ॥

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् ।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ २ ॥

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः ।

हे मा ! मैं न तो यंत्र जानता हूँ, न मंत्र, और फिर आश्चर्य की बात है कि स्तुति भी नहीं जानता हूँ । तेरा आवाहन, ध्यान, पूजन, एवं कथा कुछ नहीं जानता हूँ । तेरी मुद्रा नहीं जानता हूँ और न रोना ही जानता हूँ । परन्तु, हे मातः ! इतना तो अवश्य जानता हूँ कि तेरा अनुसरण करने से क्लेशों का नाश होता है ॥ १ ॥

तेरी पूजा की विधि के ज्ञान तथा धन के अभाव, आलस्य एवं विधिवत् पूजा करने में असमर्थ होने से जो तेरे चरणों से अलग रहा हूँ, वह मेरा अपराध क्षमा के योग्य है । हे जननि ? सबका उद्धार करनेवाली शिवे ? पुत्र कुपुत्र हो सकता है परन्तु माता कहीं भी कुमाता नहीं होती ॥ २ ॥

हे मा ! पृथ्वी पर तेरे बहुत से सरल पुत्र हैं, परन्तु उनमें से भी एक विरल चपल तेरा पुत्र हूँ । हे शिवे ! जो मुझे तूने त्याग रक्खा है, यह तेरे

मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिद नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ३ ॥
जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया ।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ४ ॥
परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥ ५ ॥
श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः ।

लिये उचित नहीं है, क्योंकि पुत्र कुपुत्र हो सकता है, परन्तु कहीं भी माता कुमाता नहीं होती ॥ ३ ॥

हे जगज्जननि ! हे मा ! मैंने तेरे चरणों की सेवा कभी नहीं की और हे देवि ! मैं तुझे बहुत धन भी न दे सका, तो भी तू जो मेरे ऊपर निरुपम स्नेह करती है, यह नेक है, क्योंकि पुत्र कुपुत्र तो हो सकता है, परन्तु माता कहीं भी कुमाता नहीं होती ॥ ४ ॥

विविध प्रकार से सेवा करते-करते व्याकुल हुए मैंने अब ८५ वर्ष से भी अधिक आयु हो जाने पर सब देवो को छोड़ दिया है, यदि अब, हे मा ! तेरी भी कृपा नहीं होगी, तो हे गणेशजननि ! मैं निरालम्ब होकर किसको शरण में जाऊँ ॥ ५ ॥

हे अपर्णे ! तुम्हारे मंत्र का एक वर्ण भी कान में पड़ जाने पर जब यह फल है कि बकवास करनेवाला श्वपच भी मधुपाक जैसी मधुर-वाणी का वक्ता हो जाता है और रंक भी करोड़ों सुवर्ण की मुद्राओं से दीर्घ काल तक निर्भय

तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जननीयं जपविधौ ॥ ६ ॥
चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥ ७ ॥
न मोक्षस्याकांक्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः ।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥ ८ ॥
नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रूक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः ।

विहार करता है, तो कौन मनुष्य जान सकता है कि, हे जननि ! जप की विधि के अनुसार जप करने का क्या फल होगा, क्योंकि जपविधि को कौन जानता है ? अर्थात् कोई नहीं जानता ॥ ६ ॥

हे भवानि ! चिता की भस्म लेप करने वाला, हलाहल खानेवाला, दिगम्बर, जटाधारी, कंठ में सर्पों का हार पहिनने वाला, पशुओं का पति, कपाली (हाथ में भिक्षा के लिये खप्पर लिये) भगवान् शिव जगत् का एकमात्र जो शासन करता है, यह तेरे पाणिग्रहण की प्रथा का ही फल है ॥ ७ ॥

हे चन्द्रमुखि जननि ! न तो मुझे मोक्ष की इच्छा है, न तो सांसरिक वैभव की इच्छा है, न तो विज्ञान की ही अपेक्षा है और न सुख की इच्छा है । इसलिये यही याचना करता हूँ कि मेरा जीवन मृडानी, रुद्राणी, शिव-शिव भवानी इस प्रकार जप करते हुए बीते ॥ ८ ॥

हे श्यामे ! अम्बे ! मुझ से न तो विधिपूर्वक विविध सामग्रियों एवं रूखे चिन्तन में लगी वाणी द्वारा तेरी पूजा ही हुई है, फिर भी हे मा ! यदि तू मुझे

श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे ।
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥ ९ ॥
आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥ १० ॥
जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि ।
अपराधपरम्परापरं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥ ११ ॥
मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥ १२ ॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

अनाथ पर जो कुछ कृपा रखती है, वह तेरे लिए उचित है । जो मुझ जैसे कुपात्र पर कृपा तो है ही ॥ ९ ॥

हे दुर्गे ! हे दया के सागरि ! ईश्वरि ! आपत्तियों में डूबा हुआ मैं तेरा स्मरण करता हूँ । मेरी इसमें शठता है, ऐसा मत समझना, क्योंकि क्षुधा और तृषा से दुःखी बालक ही माँ को याद करता है ॥ १० ॥

हे जगदम्ब ! इसमें यहाँ आश्चर्य ही क्या है कि मेरे ऊपर तेरी पूर्ण दया है; अपराधों पर अपराध करते रहने पर भी माता पुत्र की उपेक्षा नहीं करती ॥ ११ ॥

जैसे मेरे समान कोई पापी नहीं है वैसे तेरे समान पापों का नाश करने वाली दूसरी नहीं है, ऐसा जानकर, हे महादेवि ! जैसा योग्य समझो वैसा करो ॥ १२ ॥

अथ सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ।
येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेद् ॥ १ ॥
न कवचं नार्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् ।
न सूक्तं नापि ध्यानं च न न्यासो न च वार्चनम् ॥ २ ॥
कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् ।
अस्ति गुह्यतरं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥ ३ ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वती ।
मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ।
पाठमात्रेण संसिद्धयेत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ॥ ४ ॥

अथ मन्त्रः

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥ ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डाय विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा ॥

नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि ।
नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषार्दिनि ॥ १ ॥
नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ॥ २ ॥
जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे ।
ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ॥ ३ ॥
क्लींकारी कामरूपिण्य बीजरूपे नमोऽस्तु ते ।
चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ॥ ४ ॥
विच्चे चाभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणी ॥ ५ ॥

धां धीं धूर्जटेः पत्नी वां वीं वूं वागधीश्वरी।
क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि शां शीं शूं मे शुभं कुरु ॥ ६ ॥

हुं हुं हुंकाररूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनी।
भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे भवान्य ते नमो नमः॥ ७ ॥

अं कं चं टं तं पं यं सं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं धिजाग्रं
धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा।
पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा ॥ ८ ॥

सां सीं सूं सप्तशती देव्या मन्त्र सिद्धिं कुरुष्व मे।
इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्तिहेतवे॥
अभक्तेनैव दातव्यं गोपितं रक्ष पार्वति।
यस्तु कुञ्जिकया देवि हीनां सप्तशतीं पठेत्॥
न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा॥

इति श्रीरुद्रयामले गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे
सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

अथ दुर्गापदुपद्धारस्तोत्रम्

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वरूपे। नमस्ते जगद्वन्द्यपादारविन्दे नमस्ते जगत्तारिणी त्राहि दुर्गे ॥ १ ॥

नमस्ते जगच्चिन्त्यमानस्वरूपे नमस्ते महायोगिनी ज्ञानरूपे। नमस्ते नमस्ते सदानन्दरूपे नमस्ते० ॥ २ ॥

अनाथस्य दीनस्य तृष्णातुरस्य भयार्तस्य भीतस्य बद्धस्य जन्तोः। त्वमेका गतिर्देवि निस्तारकर्त्री नमस्ते० ॥ ३ ॥

अरण्ये रणे दारुणे शत्रुमध्येऽनले सागरे प्रान्तरे राजगेहे। त्वमेका गतिर्देवि निस्तारनौका नमस्ते० ॥ ४ ॥

शरण में जाने योग्य शिवरूपा दयामयी दुर्गे! तुम्हें नमस्कार है। जगद्व्यापी संसारस्वरूप दुर्गे! तुम्हें नमस्कार है। संसार के द्वारा पूजित चरणकमलवाली! तुम्हें नमस्कार है। जगत् का उद्धार करनेवाली! तुम्हें नमस्कार है। हे दुर्गे! मेरी रक्षा करो ॥ १ ॥

जगत् के द्वारा ध्यान करने योग्य स्वरूपवाली तुम्हें नमस्कार है। ज्ञानरूपी महायोगिनी दुर्गे! तुम्हें नमस्कार है। सत् एवं आनन्दरूपी दुर्गे तुम्हें बार-बार नमस्कार है ॥ २ ॥

असहाय, दीन, तृष्णा से आतुर, भय से पीड़ित, भयभीत एवं बधे हुए प्राणियों की एकमात्र शरण एवं भवसागर से पार करने वाली हे देवि! तुम्हें नमस्कार है ॥ ३ ॥

वन, भयंकर रणस्थल, शत्रुओं के बीच, अग्नि, समुद्र, पर्वत एवं राजभवन में पार करने वाली नौकारूपी हे देवि! तुम्हीं एकमात्र शरण हो, अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार है ॥ ४ ॥

अपारे महादुस्तरेऽत्यन्तघोरे विपत्सागरे मज्जतां देहभाजाम्। त्वमेका गतिर्देवि निस्तारहेतुर्नमस्ते० ॥ ५ ॥

नमश्चण्डिके चण्डदुर्दण्डलीला समुत्खण्डिताखण्डिताशेष-शत्रो। त्वमेका गतिर्देवि निस्तारबीजं नमस्ते० ॥ ६ ॥

त्वमेवाघभावाधृतासत्यवादिनि जाताजिता क्रोधनात् क्रोध-निष्ठा। इडापिङ्गला त्वं सुषुम्णा च नाडी नमस्ते० ॥ ७ ॥

नमो देवि दुर्गे शिवे भीमनादे सरस्वत्यरुन्धत्यमोघस्वरूपे। विभूतिः शची कालरात्रिः सती त्वं नमस्ते० ॥ ८ ॥

शरणमसि सुराणां सिद्धविद्याधराणां मुनिमनुजपशूनां

अगम अतएव महादुस्तर, अत्यन्त भयंकर, विपत्तिरूपी समुद्र में निमग्न, देहधारी प्राणियों को पार करने वाली हे देवि ! तुम्हीं एकमात्र शरण हो, अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार है ॥ ५ ॥

हे चण्डिके ! तुम्हें नमस्कार है। अत्यन्त भयंकर तथा अखण्डित दण्डरूपी लीला के द्वारा अत्यन्त प्रबल अनेक शत्रुओं को चकनाचूर करने वाली हे देवि तुम्हीं एकमात्र शरण हो। निस्तार के हेतुभूत देवि तुम्हें बार-बार नमस्कार है ॥ ६ ॥

तुम ही असत्यवादी मानवों में पापरूप से विद्यमान हो तथा क्रोध के कारण क्रोध रूप से स्थित होते हुए अजिता याने नहीं जीतने योग्य हो। इडा, पींगला एवं सुषुम्ना नाड़ी के रूप से स्थित तुम्हें नमस्कार है ॥ ७ ॥

हे देवि ! दुर्गतिनाशिनी, शिवरूपा, भयंकर नाद करने वाली, सरस्वती एवं सफल रूप धारण करने वाली अरुन्धती तुम्हें नमस्कार है। विभूति, शची, कालरात्रि एवं सतीरूपिणी देवि ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ८ ॥

देवताओं, सिद्धविद्याधरों, मुनियों, मनुष्यों, पशुओं एवं डाकुओं से अत्यन्त भयभीत प्राणियों की एकमात्र तुम शरण हो। अपराधी होकर राजाओं

दस्युभिस्त्रासितानाम् । नृपतिगृहगतानां व्याधिभिः पीडितानां त्वमसि शरणमेका देवि दुर्गे प्रसीद ॥ ९ ॥

इदं स्तोत्रं मया प्रोक्तमापदुद्धारहेतुकम् ।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा पठनाद् घोरसंकटात् ॥ १० ॥
मुच्यते नात्र सन्देहो भुवि स्वर्गे रसातले ।
सर्वं वा श्लोकमेकं वा यः पठेद् भक्तिमान् सदा ॥ ११ ॥
स सर्वं दुष्कृतं त्यक्त्वा प्राप्नोति परमं पदम् ।
पठनादस्य देवेशि किं न सिध्यति भूतले ॥ १२ ॥
स्तवराजमिमं देवि संक्षेपात् कथितं मया ॥ १३ ॥

इति दुर्गापदुद्धारस्तोत्रम्

के घर गये हुए तथा व्याधिओं से पीड़ित मनुष्यों की तुम्हीं एकमात्र शरण हो, अतः हे देवि ! दुर्गति नाशिनी ! प्रसन्न होओ ॥ ९ ॥

मैंने विपत्ति से उद्धार करने वाले इस स्तोत्र को कहा है। पृथ्वी, स्वर्ग एवं पाताल पर तीनों समय अथवा एक समय पाठ करने से मनुष्य घोर संकट से मुक्त हो जाता है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। जो भक्त सभी श्लोक का अथवा एक श्लोक का सदा पाठ करने वाला होता है वह सभी अपने दुष्कर्मों को त्यागकर उच्चतम पद प्राप्त करता है। हे पार्वती इस स्तोत्र का पाठ करने से पृथ्वी पर क्या नहीं होता अर्थात् सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं ॥ १०–१२ ॥

हे पार्वती ! सभी स्तोत्रों के राजा इस स्तोत्र को संक्षेप से मैंने कहा है ॥ १३ ॥

अथ सप्तशतीदलम्

अथ चण्डिकादलप्रारम्भः । ओं नमश्चण्डिकायै । अथातः संप्रवक्ष्यामि चण्डिकादलमुत्तमम् । मन्त्रं विना तु जप्त्वा वै तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ १ ॥ ओं नमो भगवती जय जय चामुण्डे चण्डेश्वरी चण्डायुधे चण्डरूपधारिणी ताण्डवप्रिये कुण्डलीभूत-दिङ्नागमंडलीभूत-गंडस्थिते समस्तजगद्दण्डसंहार-कारिणी परे अनन्तानन्तरूपे शिवे नरमालालंकृतवक्षः-स्थले महाकपालभालोज्ज्वलन्मणिमुकुटचूडावतंसचन्द्रखण्डे महा-भीषणे देवी महामाये षोडशकलापरिवृतोल्लसिते महादेवासुर-समरनिधृतरुधिरार्द्रीकृतलिम्पिततनुकमलोद्भासिते करे सम्पूर्ण-रुधिरशोभितमहाकपाले सूर्यभासिनी दृढतराबद्धमनु ॥ ११४ ॥

धरशोभितमहाकपोले चन्द्रभासिनि दृढतराबद्धमहानादि-सहितहेमकाञ्चिदाभोज्वलीकृतमहामण्डले महाशम्भुरूपे महा-व्याघ्रचर्माम्बरधरे महासर्पयज्ञोपवीतिनी महाश्मशानभस्मोद्धू-लितसर्वगात्रे काली कंकाली महाकाली कालाग्निरुद्रकाली कालसंकर्षिणी ॥ ३०० ॥

कालरात्रि नमो भक्षिणी नानाभूतप्रेतपिशाचगणसहस्र-सञ्चारिणी नानाव्याधिप्रशमनी सर्वदुष्टप्रमथिनी सर्वदारिद्र्य-नाशिनी युगे युगे स्वादितमांसखण्डे गायत्री विक्षिप्तकला कलायमानकंकालधारिणी मधुरमांसरुधिरसन्ततविलासिनी सकलसुरासुरगन्धर्वविद्याधरकिन्नरकिम्पुरुषादिभिः स्तूयमाने सर्वमन्त्राधिभूताधिकारिणी सर्वशक्तिप्रधाने सकललोकपावनी सकलदुरितप्रक्षालिनी सकललोकजननी ब्राह्मी माहेश्वरी

कौमारी वैष्णवी वाराही नारसिंहीन्द्राणी चामुण्डे । महालक्ष्मी-स्वरूपे महाविद्ये योगिनी ।। ५०० ।।

योगीश्वरी चण्डिके महामाये विश्वरूपिणी सर्वाभरणभूषिते अतल-वितल-सुतल-महातल-रसातल-पातालादि चतुर्दशभुवनैक-नाथे, ॐ नमः पितामहाय ॐ नमो नारायणाय ॐ नमः शिवाय इति सकललोकैकजात्यमाने ब्रह्मविष्णुमहेश्वरे दण्डक-मण्डलुधारिणी शङ्खचक्रगदाधारिणी परशुशूलपिनाककण्टकधा-रिणी सरस्वती पद्मालये सावित्री सकलजगत्स्वरूपिणी महाक्रूरे प्रसन्नरूपधारिणी सर्वमङ्गलप्रिये महिषासुरमर्दिनी कात्यायनी दुर्गा निद्रारूपिणी शरचापशूलकपालकरवालखड्गडमरुकाङ्कुश-गदापरशुतोमरभिन्दिपालभुशुंडीमुसलमुद्गरपरिघायुधदोर्दण्डी सह-स्रचन्द्रार्कवह्निनयनेन्द्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरईशानप्रधान-शक्तिभूते सप्तद्वीपसमुद्रोपर्युपरिमहाभ्यासेश्वरी महासचराचर-प्रपञ्चतनूदरे महाप्रधाने महाकैलासपर्वतोद्याने वनक्षेत्रनदीतीर-देवताद्यायतनालङ्कृते मेदिनीनाथे वसिष्ठवामदेवादिमुनिगणस्पृ-ष्टचरणारविन्दे द्विचत्वारिंशद्वर्णमहितो पर्यास्थानेवेदवेदाङ्गानेक-शास्त्रभूते शब्दब्रह्ममये मातृकादेवी शिरस्सन् रक्ष रक्ष मम शत्रून् हुङ्कारेण नाशय नाशय भूतप्रेतपिशाचानुच्चाटयोच्चाटय वशीकुरु वशीकुरु क्षोभय क्षोभय संक्रामय विदारय विदारय दावय सकलचोरान्मूर्ध्नि स्फोटय स्फोटय सकलशत्रून् शीघ्रं मारय मारय हुं फट् स्वाहा ।। १००० ।।

इति रुद्रयामलतन्त्रे सप्तशतीदलं सम्पूर्णम् ।।

अथ दुर्गासप्तसतीहृदयम्

अथ सप्तशत्यङ्गहृदयारम्भः ॥ अस्य श्रीचंडिकाहृदयमालामन्त्रस्य त्रिगुणात्मकऋषिः विराट्छन्दः श्रीमहाचण्डी देवता ऐं बीजम् ह्रीं शक्तिः क्लीं कीलकम् जपे विनियोगः । हृदयादिषडङ्गन्यासः । ब्रह्मोवाच । अथातः संप्रवक्ष्यामि विस्तरेण यथायथम् । चण्डिकाहृदयं गुह्यं शृणुष्वैकाग्रमानसः । ॐ ह्रां ह्रीं हुँ ऐं श्रीं श्रीं ॐ नमो भगवति जय जय ज्वालामालिनी चामुण्डे चण्डिके त्रिदशमणिमुकुटकोटिसद्घटितचरणारविन्दे गायत्रीसावित्री-सरस्वती-महाबाणकृताभरणे भैरवरूपधारिणी प्रकटसुदंष्ट्रोग्रवदने घोरघोरासने नयनोज्ज्वलज्वालासहस्रपरिवृते महाट्टहासधवलीकृतदिगन्तरे दिवाकरसहस्रपरिवृते कामरूपधारिणी महामणिद्योतितशशिप्रभासितसकलदिगन्तरे सर्वायुधपरिपूर्णे कपालहस्ते गजाभिन्योत्तरीये भूतवेतालपरिवृते प्रकम्पितचराचरे मधुकैटभमहिषासुर-धूम्रलोचन-चण्डमुण्ड-रक्तबीज-निशुम्भ-शुम्भादिदैत्यनिष्कण्टकीकालरात्रि महामाये शिवे नित्ये त्रिभुवनधराधरे वामे ज्येष्ठे रौद्रि अम्बिके काली कलंविकारिणी बलप्रमथिनी सर्वभूतदमनी मनोन्मर्या ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही नारसिंहीन्द्राणी चामुण्डे माहेन्द्री शिवदूती महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-त्रिस्थिते नादबन्ध्यास्थिते महोग्रविषोरगफणाफणिमुकुटरत्नज्वालावले महाहारभूषितपादबाहुकर्णोत्तमाङ्गे मालाकुले नवरत्ननिधिकोशे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धाकाशवाक्यानि पादपायूपस्थश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणमध्यस्थिते चक्षुष्मती महाविषोपविघ्ने महाज्वालानले महाभैरवस्तुते सर्वसिद्धिप्रदे निर्मले निष्कले नाभ्याधरादिसंस्थिते परंज्योतिःस्वरूपे सोमसूर्याग्निमंडलपरिवृते ऊर्ध्वविशुद्धांतकप्रभे

कौमारी वैष्णवी वाराही नारसिंहीन्द्राणी चामुण्डे । महालक्ष्मी-स्वरूपे महाविद्ये योगिनी ॥ ५०० ॥

योगीश्वरी चण्डिके महामाये विश्वरूपिणी सर्वाभरणभूषिते अतल-वितल-सुतल-महातल-रसातल-पातालादि चतुर्दशभुवनैक-नाथे, ॐ नमः पितामहाय ॐ नमो नारायणाय ॐ नमः शिवाय इति सकललोकैकजाप्यमाने ब्रह्मविष्णुमहेश्वरे दण्डक-मण्डलुधारिणी शङ्खचक्रगदाधारिणी परशुशूलपिनाककण्टकधा-रिणी सरस्वती पद्मालये सावित्री सकलजगत्स्वरूपिणी महाक्रूरे प्रसन्नरूपधारिणी सर्वमङ्गलप्रिये महिषासुरमर्दिनी कात्यायनी दुर्गा निद्रारूपिणी शरचापशूलकपालकरवालखड्गडमरुकाङ्कुश-गदापरशुतोमरभिन्दिपालभुशुंडीमुसलमुद्गरपरिघायुधदोर्दण्डी सह-स्रचन्द्रार्कवह्निनयनेन्द्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरईशानप्रधान-शक्तिभूते सप्तद्वीपसमुद्रोपर्युपरिमहाभ्यासेश्वरी महासचराचर-प्रपञ्चतनूदरे महाप्रधाने महाकैलासपर्वतोद्याने वनक्षेत्रनदीतीर-देवताद्यायतनालङ्कृते मेदिनीनाथे वसिष्ठवामदेवादिमुनिगणस्पृ-ष्टचरणारविन्दे द्विचत्वारिंशद्वर्णमहितो पर्यास्थानेवेदवेदाङ्गानेक-शास्त्रभूते शब्दब्रह्ममये मातृकादेवी शिरस्सन् रक्ष रक्ष मम शत्रून् हुङ्कारेण नाशय नाशय भूतप्रेतपिशाचानुच्चाटयोच्चाटय वशीकुरु वशीकुरु क्षोभय क्षोभय संक्रामय विदारय विदारय द्रावय सकलचोरान्मूर्ध्नि स्फोटय स्फोटय सकलशत्रून् शीघ्रं मारय मारय हुं फट् स्वाहा ॥ १००० ॥

इति रुद्रयामलतन्त्रे सप्तशतीदलं सम्पूर्णम् ॥

अथ दुर्गाशप्तसतीहृदयम्

अथ सप्तशत्यङ्गहृदयारम्भः ।। अस्य श्रीचंडिकाहृदयमालामन्त्रस्य त्रिगुणात्मकऋषिः विराट्छन्दः श्रीमहाचण्डी देवता ऐं बीजम् ह्रीं शक्तिः क्लीं कीलकम् जपे विनियोगः । हृदयादिषडङ्गन्यासः । ब्रह्मोवाच । अथातः संप्रवक्ष्यामि विस्तरेण यथायथम् । चण्डिकाहृदयं गुह्यं शृणुष्वैकाग्रमानसः । ॐ ह्रां ह्रीं हुँ ऐं श्रीं श्रीं ॐ नमो भगवति जय जय ज्वालामालिनी चामुण्डे चण्डिके त्रिदशमणिमुकुटकोटिसद्घटितचरणारविन्दे गायत्रीसावित्री-सरस्वती-महाबाणकृताभरणे भैरवरूपधारिणी प्रकटसुदंष्ट्रोग्रवदने घोरघोरासने नयनोज्ज्वलज्वालासहस्रपरिवृते महाट्टहासधवलीकृतदिगन्तरे दिवाकरसहस्रपरिवृते कामरूपधारिणी महामणिद्योतितशशिप्रभासितसकलदिगन्तरे सर्वायुधपरिपूर्णे कपालहस्ते गजाजिनोत्तरीयके भूतवेतालपरिवृते प्रकम्पितचराचरे मधुकैटभमहिषा-सुर-धूम्रलोचन-चण्डमुण्ड-रक्तबीज-निशुम्भ-शुम्भादिदैत्यनिष्कण्टकीकालरात्रि महामाये शिवे नित्ये त्रिभुवनधराधरे वामे ज्येष्ठे रौद्रि अम्बिके काली कलंविकारिणी बलप्रमथिनी सर्वभूतदमनी मनोन्मर्या ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही नारसिंहीन्द्राणी चामुण्डे माहेन्द्री शिवदूती महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-त्रिस्थिते नादबन्ध्यास्थिते महोग्रविषोरगफणाफणिमुकुटरत्नज्वालावले महाहारभूषितपादबाहुफणोत्तमाङ्गे मालाकुले नवरत्ननिधिकोशे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धाकाशवाक्यानि पादपायूपस्थश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणमध्यस्थिते चक्षुष्मती महाविषोपविघ्ने महाज्वालानले महाभैरवस्तुते सर्वसिद्धिप्रदे निर्मले निष्कले नाभ्याधारादिसंस्थिते परंज्योतिःस्वरूपे सोमसूर्याग्निमंडलपरिवृते ऊर्ध्वविशुद्धांतकप्रभे

विनिकृतब्रह्मविष्णुरुद्रविनिर्गते परे अपरे प्रभाभासितचरे पञ्चविंशतितत्त्वावबोधिनो महाशून्यागमे पतिबन्धुसंस्थिते अधोर्ध्वसंस्थिते भुक्तिमुक्तिफलप्रदे निर्गुणे ऋग्यजुःसामाथर्वणपठिते एह्येहि भगवति स्थूलसूक्ष्मपरहुँकारनिरूपिते परमकारुणिके महाज्वालामणिमहिषोपरि गन्धर्वविद्याधराश्रिते भुजङ्गमहिमे जम्भिणी मोहनी क्षोभिणी वशीकरणी जम्भे मोहे क्षोभे वशीकरणे बीजपञ्चकमध्यस्थिते महायोगिनी महाज्वरक्षेत्रनायिके यक्षराक्षसमहाज्वरमहाविषोपविघ्ने गन्धर्वविद्याधराराधिते ओङ्कारश्रीङ्कारहस्ते ॐ क्रों अग्निपात्रे द्रां शोषय शोषय प्लूं प्लावय प्लावय क्लीं श्रीं सुकुमारय सुकुमारय प्लुं सतेशय सतेशय सों उन्मादय उन्मादय ग्लौं मोहय ह्रीं आवेशय आवेशय श्रीं प्रवेशय प्रवेशय स्त्रीं कर्षय हुं हुं हुं फट् अतीतानागतवर्तमानन्दिशं विदिशं ऐं ह्रीं श्रीं श्रावय श्रावय सर्वं प्रवेशय प्रवेशय त्रैलोक्यवशवर्ति ऐङ्कारचित्तं वशीकुरुष्व ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं द्रावय द्रावय सर्वं प्रवेशय प्रवेशय ऐङ्कारचित्तं वशंकुरु वशंकुरु ऐं ह्रों श्रीं ह्रीं ह्रों हुं हैं ह्रौं हः ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं स्त्रैं स्त्रौं स्त्रः मम सर्वकार्याणि साधय साधय हुं फट् स्वाहा ॥ १०९०-१८ ॥

एकविंशतिवारन्तु पठेदेवञ्जपेत्तु यः। राजद्वारे श्मशाने च विदेशे शत्रुमंडले ॥ १ ॥ भूताग्निरणमध्ये च सर्वकार्याणि साधयेत्। चण्डिका हृदयङ्गुह्यं त्रिसन्ध्यं कीर्तयेद् द्विजः ॥ २ ॥ सर्वकामप्रदं नृणां भुक्तिं मुक्तिञ्च विन्दति ॥ ३ ॥

इति रुद्रयामले दुर्गासप्तशतीहृदयं सम्पूर्णम् ॥

अथ नित्यचण्डीविधिः

साधक शास्त्रोक्त विधि के अनुसार अपने नित्यकर्मों को करके पूजा स्थान पर जाकर पूर्वाभिमुख हो अपने आसन पर बैठ जाय तथा कुश हाथ में लेकर प्राणायाम करने के बाद अपने इष्ट देवता का स्मरण करते हुए नीचे लिखे मन्त्रों से संकल्प करे—

ॐ तत्सदद्यामुकमासि अमुकराशिगते सवितरि शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां तिथौ विशेषक्षेत्रे चेदमुकक्षेत्रे अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहममुकफलावाप्तये अद्यारभ्य मासमात्रं नित्यचण्डीजपं करिष्ये।

यदि काशी, प्रयाग, विन्ध्याचल आदि विशेष क्षेत्र में पूजा करनी हो तो उस क्षेत्र का नामोल्लेख भी अपने संकल्प में करना चाहिये।

संकल्प के बाद दशदिक्पाल एवं नवग्रहों का भी, पूजन करके मूलमंत्र से न्यास करना चाहिए। तत्पश्चात् देवी के आगे ऋष्यादि न्यास के साथ सरहस्य तीनों चरित्रों का प्रतिदिन केवल एक बार पाठ करे।

'देवीमाहात्म्यस्यादिचरितस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीमहाकाली देवता रक्तदन्तिका बीजं नन्दा शक्तिरग्निस्तत्वं प्रथमचरितजपे विनियोगः'॥

इस मंत्र के द्वारा प्रथम चरित के पाठ के प्रारम्भ में विनियोग करे। एवं—

'मध्यमचरितस्य विष्णुऋषिरुष्णिक्छन्दः श्रीमहालक्ष्मीर्देवता दुर्गाबीजं शाकम्भरी शक्तिर्वायुस्तत्त्वं मध्यमचरितजपेविनियोगः'॥

इस मन्त्र से द्वितीय चरित पाठ के प्रारम्भ में तथा—

'उत्तरचरितस्य रुद्रऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीमहासरस्वती देवता भ्रामरी बीजं भीमा शक्तिः सूर्यस्तत्वमुत्तरचरितजपेविनियोगः'॥

इस मन्त्र से उत्तर चरित के पाठ के प्रारम्भ में विनियोग करना चाहिये।

प्रत्येक चरित के प्रारम्भ में मूल मन्त्र का न्यास करना आवश्यक है। तत्पश्चात् मास की समाप्ति होने पर पूजास्थान में कुण्डादि निर्माण कर अग्नि की स्थापना करे और पायस, घृत एवं तिल से जपे हुए मूल मन्त्र के दशांश

मन्त्रों के द्वारा हवन और उसके दशांश मन्त्रों से तर्पण एवं उसके दशांश मन्त्रों से मार्जन करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मण, कुमारी एवं सुवासिनियों को भोजन कराकर ताम्बूल, दक्षिणा आदि के द्वारा उन्हें सन्तुष्ट कराते हुए अपने पूजन की समाप्ति करनी चाहिये।

यदि किन्हीं विघ्न-बाधाओं के कारण साधक स्वयं अशक्त हो जाय तो किसी सुयोग्य ब्राह्मण के द्वारा अपने संकल्पित पूजन की समाप्ति करावे तथा उस ब्राह्मण को यथोचित दक्षिणा आदि देकर उनसे योग्य आशीर्वाद ग्रहण करे।

इस प्रकार का विधान खिलमार्कण्डेय में लिखा है, जिसका उल्लेख नीचे लिखे के अनुसार है :—

अथ खिलमार्कण्डेयोक्त-नित्यचण्डीविधिः

ऋषिरुवाच

नित्यचण्ड्यादिजापस्य विधानं ते वदाम्यहम्।
क्रमेण सर्वकार्याणां सिद्धये सर्वपुण्यदम्॥ १॥
पूर्वोक्तविधिना कृत्वा चण्डिकातर्पणादिकम्।
शुक्लभूतमवष्टभ्य मासं प्रतिदिनं जपेत्॥ २॥
सकृद्रहस्यसंयुक्तं चण्डिका-चरितत्रयम्।
दशांशहोमसहितं सोच्यते नित्यचण्डिका॥ ३॥
धनपुत्रयशोदात्री महाव्याधिविनाशिनी।
महाभयमहादुःखहन्त्री सौख्यप्रदायिनी॥ ४॥

इति खिलमार्कण्डेये श्रीनित्यचण्डीविधिः।

अथ नवचण्डीविधिः

आश्विन शुक्ल पक्ष के प्रतिपत् को साधक अपने सन्ध्योपासनादि नित्य कर्मों से निवृत्त होने के बाद पूरब मुख होकर बैठे और तिथि आदि का उल्लेख करते हुए नीचे लिखे अनुसार संकल्प करे।

'ॐ तत्सदद्यामुकमासि अमुकराशिगते सवितरि शुक्लपक्षे प्रतिपदि तिथौ विशेषक्षेत्रे (काश्यादिक्षेत्रे) अमुकगोत्रोऽमुकशर्माऽहममुकफलवाप्तये अद्यारभ्य नवमीं तिथिं यावत् नवचण्डीविधानमहं करिष्ये'।

यदि यह विधान दूसरे किसी आचार्य के द्वारा सम्पन्न करवाना हो तो 'अहंकरिष्ये' के स्थान पर 'अहं करिष्यामि' ऐसा आचार्य को पढ़ना चाहिये।

जिस स्थान पर बैठकर साधक को यह विधान करने की इच्छा हो उस स्थान को ध्वजा-वितान आम्रपल्लव आदि अलङ्कारों से सुसज्जित करना चाहिये। पूजा स्थान पूर्व दिशा में कादम्बरी गजवाहना का ध्यान कर 'ॐ कादम्बरि इह आगच्छ' इस मन्त्र को पढकर किसी पीठ पर आवाहन कर देवी की स्थापना करनी चाहिये। 'ॐ कादम्बरि एष ते गन्धो नमः' इस मन्त्र से गन्ध का, 'इमानि ते पुष्पाणि वौषट्' इस मन्त्र से फूलों का, 'एष ते धूपो नमः' इस मन्त्र से धूप और 'एष ते दीपो नमः' इस मन्त्र से दीप का समर्पण करना चाहिये। इस प्रकार और भी जो सामान हो वह देवी को समर्पण करे। इस प्रकार पूजा करके देवी के आगे रखे हुए अन्यपात्र में घृत, शर्करा तथा अनेक प्रकार के व्यञ्जनों के सहित पायस (हविष्यान्न) को 'ॐ श्रीकादम्बरि एष ते बलिर्नमः' इस मन्त्र से देवी को समर्पण करते हुए 'क्षमस्व' यह कहकर प्रणाम करे। पुनः अग्निकोण में उल्का गजवाहना देवी की पूर्वोक्त विधि के अनुसार पूजाकर बलि का समर्पण करना चाहिए। इसके बाद दक्षिणदिशा में 'महिषारूढा कराली,' नैऋत्य कोण में 'प्रेतवाहना रक्ताक्षी' पश्चिम में 'मकरवाहना श्वेता' वायुकोण में 'मृगवाहना हरिता' उत्तर में 'सिंह वाहना यक्षिणी,' ईशान कोण में 'वृषवाहना कंकाली,' पूरब और ईशान कोण के बीच में 'हंसवाहना सुरज्येष्ठा' तथा नैऋत्य और दक्षिणदिशा के बीच 'अतिवाहना सर्पराज्ञी' का अपने-अपने स्थान पर अलग-अलग पूजाकर बलि का समर्पण करना चाहिए।

सूर्यादि पञ्च देवता, नवग्रह, विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश तथा दोनों अश्विनी कुमारों का पूजनकर क्रम से तत्तत् दिशाओं में इन्द्रादि दशदिक्पालों की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् 'आजिघ्रकलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारापयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः' इस मन्त्र से मंडप के बीच में कलश की स्थापना करनी चाहिये। तब द्वारपूजा के स्थान पर उस कलश में महालक्ष्मी का आवाहन कर पूर्णतया पुष्प चन्दनादि से पूजा करे और कलश के आगे तीनों रहस्यों के साथ चरित्रत्रयरूप देवी माहात्म्य का पाठ करना चाहिये। पश्चात् एक कुमारी तथा एक ब्राह्मण का पूजनकर उसे भोजन, ताम्बूल, दक्षिणा एवं नमस्कार से सन्तुष्ट करना चाहिये।

इस प्रकार द्वितीया को दोगुना तथा तृतीया को तिगुना इस क्रम से नवमी पर्यन्त नौगुना चण्डीपाठ, कुमारी भोजन एवं ब्राह्मण भोजन आदि कराना चाहिये। साधक को एक ही प्रकार का आहार प्रतिदिन करना चाहिये। पश्चात् सम्पूर्ण किये हुए चण्डीपाठों के दशांश तिल, घृत एवं हविष्यान्नों से हवनकर विधिवत् समाप्त करना चाहिये। यदि अन्य आचार्य के द्वारा इसे सम्पन्न करवाना हो तो उसे अपने ऐश्वर्य के अनुसार औदार्य भाव से दक्षिणा देकर एवं आचार्य को प्रणाम कर इस विधान की समाप्ति करनी चाहिये। इस प्रकार सभी विधानों को करने वाले साधक सारी कामनाओं को प्राप्त करता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

इस प्रकार का विधान खिलमार्कण्डेय में लिखा है, जिसका उल्लेख नीचे लिखे के अनुसार है :—

अथ खिलमार्कण्डेयोक्त-नवचंडीविधिः

ऋषिरुवाच—

शरदृताविषे मासि शुक्लपक्षे नृपोत्तम।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य नवचण्डीं समापयेत्॥ १॥
तोरणाढ्ये शुभे स्थाने सुवितानाद्यलङ्कृते।
पूर्वादिक्रमयोगेन दिग्देवीभ्यो बलिं हरेत्॥ २॥

गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपैश्चरुभिरुत्तमैः ।
कादम्बरी गजारूढा पुनरुल्काजपृष्ठगा ॥ ३ ॥
कराली महिषारूढा रक्ताक्षी प्रेतसंस्थिता ।
श्वेतकुम्भीरगा श्वेता हरिता मृगवाहना ॥ ४ ॥
यक्षिणी सिंहपृष्ठस्था कङ्काली वृषवाहना ।
हंसपृष्ठे सुरज्येष्ठा सर्पराड्हिवाहना ॥ ५ ॥
अनेन विधिना दत्त्वा दिग्देवीभ्यो बलिं जपी ।
नवग्रहाँल्लोकपालान्दिशापालांश्च पूजयेत् ॥ ६ ॥
विनायकस्तथा दुर्गा वायुराकाशमेव च ।
अश्विनौ च महात्मानौलोकपालाः प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥
कलशं पञ्चरत्नाढ्यं हेमवस्त्रादिकान्वितम् ।
संप्रतिष्ठाप्य सम्पूज्य चण्डिकार्चनमाचरेत् ॥ ८ ॥
पूर्वोक्तेन विधानेन गन्धपुष्पैरनुत्तमैः ।
वस्त्रालङ्कारकस्तूरी-सिन्दूरागरुकुङ्कुमैः ॥ ९ ॥
धूपैर्बहुविधैर्दीपैर्नैवेद्यैर्वर्णसंख्यया ।
कृत्वान्यत् पूर्ववत्सर्वं जपेदेकाग्रमानसः ॥ १० ॥
सकृद्रहस्यसंयुक्तं चण्डिका-चरितत्रयम् ।
कुमारीं विप्रमुख्यांश्च भोजयेद् विधिपूर्वकम् ॥ ११ ॥
यदाद्यदिवसे कुर्याच्चण्डिकापूजनादिकम् ।
द्विगुणं तद्द्वितीयेऽह्नि त्रिगुणं तत्परेऽहनि ॥ १२ ॥
नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम् ।
एकाहारव्रती कुर्यात्सत्यादिनियमैर्युतः ॥ १३ ॥

कृत्वा होमादिकं सर्वं नवदुर्गाविधानवत् ।
वित्तशाठ्यं परित्यज्य कुर्यादाचार्यतोषणम् ॥ १४ ॥

वस्त्राङ्गुलीयभूधेनुवाजिहेम-प्रदानतः ।
अशक्तो निष्कमेकं तु देयमस्मै प्रयत्नतः ॥ १५ ॥

विदधीत विधानेन य एनां नवचण्डिकाम् ।
शृणुष्वास्य फलं भूप यो हि कश्चिदनेन वै ॥ १६ ॥

ऐन्द्रब्राह्मादयो भोगास्तमायान्ति प्रसेवितुम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रानधनः सधनो भवेत् ॥ १७ ॥

व्याधयः संक्षयं यान्ति शत्रवश्च सुदारुणाः ।
न तस्यास्ति भयंकिञ्चिद्राजचोराग्निवारिजम् ॥ १८ ॥

इति श्रीखिलमार्कण्डेये नवचण्डीविधिः समाप्तः ।

अथ नवदुर्गाविधिः

साधक अपने नित्यकर्मों से निवृत्त होकर पूर्व की भाँति तिथि आदि का उल्लेख करते हुए "नवदुर्गा विधानमहं करिष्ये" इस मंत्र से संकल्प करे। यह विधान शुक्लपक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ होकर कृष्णपक्ष की प्रतिपत् को समाप्त होता है, जो कि इस विधान का नवम दिन है। अतः साधक को चाहिये कि नवम दिन में अपने पाठ को समाप्ति करके दशवें दिन कुण्डादि बनाकर हवन आदि करे। किसी पीठ पर देवी की स्थापना कर पूजनादि करना चाहिये। देवी के आगे शालिपुञ्ज (धान्यराशि) पर कलश की स्थापना "आजिघ्रकलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरुर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरु धारापयस्वती पुनर्माविषताद्रयिः" इस मंत्र से करनी चाहिए।

"इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडयत्व।मवस्युराचक्रे॥ तत्वा-यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणे ह वोध्युरुशꣳसमान आयुः प्रमोषीः।"

इस मंत्र से कलश को शुद्ध जल से पुर्ण कर उसमें कुसुम, कर्पूर, चन्दन तथा पुष्पों की माला का प्रक्षेप करना चाहिये। कलश में आम्र-पल्लव देकर उसके ऊपर सुपारी तथा चावल से युक्त कलश के समान धातु वाला पात्र रखना चाहिये। कलश को लाल दो वस्त्रों से वेष्ठित कर कलश को प्रत्येक दिशाओं में पूर्वादि के क्रम से इन्द्रादि दशदिक्पालों का पूजन करना चाहिए। पश्चात् साधक भी कुंकुमादि से सज्जित होकर तथा नये वस्त्र पहनकर मूल मंत्र का न्यास करे। न्यास करने के बाद तीनों रहस्यों के साथ तीनों चरित्रों का प्रत्येक दिन एक आवृत्ति पाठ करे। इस प्रकार नौ दिन तक एक-एक पाठ करके दशवें दिन कुण्ड में अग्नि की स्थापना कर मूल मंत्र से १०८ बार हवन करे। हवन करने के बाद ब्राह्मण कुमारी एवं सुवासिनियों को भोजन, ताम्बूल, दक्षिणा आदि प्रदान कर सन्तुष्ट करावे। यह विधान स्वयं असक्त होने पर किसी दूसरे ब्राह्मण से कराया जा सकता है।

विशेष—नवम दिन में समाप्त होनेवाला यह विधान "नवदुर्गा" तथा कालरात्रि के भेद से दो प्रकार का होता है। कृष्णपक्ष कों अष्टमी से प्रारम्भ

होनेवाला विधान 'कालरात्रि' तथा शुक्लपक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ होनेवाला विधान "नवदुर्गा" कहा जाता है।

नवदुर्गा का विधान खिल मार्कण्डेय में वर्णित है जिसका उल्लेख निम्नलिखित प्रकार है :—

अथ खिलमार्कण्डेयोक्त-नवदुर्गाविधिः

ऋषिरुवाच

शुक्लाष्टमीमथारभ्य यावत्कृष्णा च नन्दिनी।
नवदुर्गा विधातव्या सर्वाभीष्टफलार्थिना ॥ १ ॥
संपूज्य विधिवद्देवीं चण्डिकां कृततर्पणाम्।
कलशं पञ्चरत्नाढ्यं सहकारहलान्वितम् ॥ २ ॥
सवक्त्रं संप्रतिष्ठाप्य चण्डिकाग्रेऽम्भसा भृतम्।
समन्तात्पूजयेद्दिक्षु दिशापालान्यथाक्रमम् ॥ ३ ॥
चन्दनेन विलिप्ताङ्गः स्रग्वी न्यासपरायणः।
नवाहं भूप एकैकं मौनी बद्धासनो जपेत् ॥ ४ ॥
प्रणवादिरहस्यान्तं चण्डिका-चरितत्रयम्।
नवदुर्गेति विख्याता पापतापप्रणाशिनी ॥ ५ ॥
सर्वैश्वर्यप्रदा भूप कुर्वतामविलम्बितम्।

इति श्रीखिलमार्कण्डेये नवदुर्गाविधिः समाप्तः।

अथ चशतचण्डीविधि:

देश में अकाल पड़ने से, भूकम्प आदि के आतंक होने से, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि होने से, शत्रुभय होने से तथा क्षय आदि असाध्य रोग होने से उसकी शान्ति के लिये शतचण्डो महायज्ञ किया जाता है। आवश्यकता के अनुसार यह यज्ञ अन्य फल को भी देनेवाला है। यह महायज्ञ शिवालय या अन्य मन्दिर के समोप किया जाता है। इसके अभाव में अपने घर के ईशान कोण में मण्डप बनाना चाहिये। जिस भूमि की मिट्टी काले रंग की हो उस भूमि पर यज्ञ-मण्डपादि बनाना अनुचित है। इसलिये, उजली, लाल, अथवा पीली मिट्टी वाली भूमि में मण्डप बनाना शास्त्रीय विचार के अनुसार उचित है। मण्डप १६ या १४ या १२ हाथ का विहित है। यह मण्डप समचतुर्भुज होना चाहिए। जिसमें १६ हाथवाला उत्तम, १४ हाथ वाला मध्यम तथा १२ हाथ वाला अधम है। मण्डप के मध्य में वेदी का निर्माण करना चाहिये। यह वेदी एक हाथ ऊँची और उतनी ही लम्बी चौड़ी चौकोर हो।

आचार्य के साथ नौ ब्राह्मणों का वरण शास्त्रोक्त विधि से करना चाहियें। अर्थात् "ओमद्येत्यादिशतचण्डीमखयथाविहितकर्मसम्पादनार्थं ब्राह्मणानामृत्विजां वरणमहं करिष्ये"। इस मन्त्र से उन ब्राह्मणों को वरण देना चाहिये। "ओमद्येत्यादिशतचण्डीमखयथाविहितकर्मसम्पादनार्थम् आचार्यत्वेन त्वामहं वृणे" इस मन्त्र से आचार्य को वरण देना चाहिये। वरण ब्राह्मणों को अपेक्षा आचार्य का द्विगुणित होना चाहिये। सपत्नीक यजमान सुन्दर आसन पर बैठकर ब्राह्मणों के द्वारा उच्चारित स्वस्तिवाचक मन्त्रों का श्रवण करते हुए अपने बान्धव के साथ मण्डव के समीप जाकर द्वारपूजा करके पश्चिम द्वार से मण्डप में प्रवेश करे। अञ्जलिबद्ध होकर चण्डिका पूजन के निमित्त आचार्य को आज्ञा दे। पश्चात् आज्ञा पाकर आचार्य स्नानादि कर्म करके आचमन एवं प्राणायाम करने के पश्चात् संकल्प करे। "ओमद्येत्यादि अस्य यजमानस्य सकुटुम्बस्य मनोवाञ्छिता सिद्ध्यर्थमाधिव्याधिमहामृत्युभयशोकनिवृत्यर्थं भूतभव्यभविष्यत्रिविधोत्पातशान्त्यर्थं परमैश्वर्यसम्पत्तिप्राप्त्यर्थं शतचण्डीकर्ममहं करिष्यामि"। इस मंत्र से संकल्प करे।

पश्चात् नवचण्डी विधान की भाँति देवियों की पूजा करके एवं बलि देकर, मण्डप पर किसी पीठ पर ग्रहमण्डल का निर्माण करके वहाँ अपनी शाखा के अनुसार नवग्रह एवं दशदिक् पालों का पूजन करके वेदी पर नवचण्डी विधान की भाँति प्रधान कलश की स्थापना करनी चाहिये। तत्पश्चात् मण्डप के बाहर पूर्वादि क्रम से चारों दिशाओं में भूतादिओं को बलि देकर मण्डप के पूर्वादि प्रत्येक द्वारों पर दो दो जलपूर्ण कलशों की स्थापना करनी चाहिये। पश्चात् आचमन करके वेदी पर अपने आसन को बिछाकर तथा उसकी पूजा कर उस पर बैठ जाना चाहिए। आसन पर पद्मासन के रूप से स्थित होकर चण्डिका का ध्यान करके भूत शुद्धयादि करना चाहिए। पश्चात् मूलमन्त्र से तीन बार प्रणाम करके ऋष्यादिन्यास, करादिन्यास, षडङ्गन्यास और व्यापकन्यासादि मूलमंत्र से करना चाहिये। पुनः प्रधान कलश में पीठपूजा के साथ चण्डिका का सचक्र सांग सावरण ध्यान करना चाहिये। पुनः अर्घ्यादि समर्पण के द्वारा उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। पूजन सामग्री के लिये अस्सी गुञ्जा कस्तूरी, उतना ही कुमकुम, जायफल तथा उतना ही कपूर को एक पल चन्दन में घीसना चाहिये। जिससे दो पल चन्दन तैयार होता है। बीस से लेकर तीस गुञ्जा तक को पल कहते हैं। इन सामग्रियों में पहनने योग्य अत्युत्तम साड़ी की भी आवश्यकता होती है तथा तीन गद्यानक सुवर्णों से निर्मित अलङ्कार की आवश्यकता होती है। आधे तोले का नाम गद्यानक है। एवं पचीस हजार पुष्प, दो पल गुग्गुल, घृतपूर्ण बीस दीप, नैवेद्य के लिये दो कुटुब हविष्यान्न की आवश्यकता होती है। एक कुटुब बीस तोले का होता है। इसके अलावा दो सौ पान के पत्ते, तदनुशार सामग्री जुटाकर नौ ब्राह्मणों से साङ्ग सावरण महालक्ष्मी को पूजा करवानी चाहिये। आचार्य आदर के साथ ब्राह्मणों को सप्तशती पाठ के लिये आज्ञा दे। जब तक देवी का पूजन हो तबतक सभी ब्राह्मण "चय चण्डि" इसे उच्चारण करते हुए उनका ध्यान करे। पश्चात् वे ब्राह्मण वेदी पर आचार्य के समीप पूजित अपने-अपने आसन पर बैठकर भूतशुद्धि एवं मूलमंत्र का न्यास करते हुए प्रसन्नचित होकर चण्डिका का ध्यान करते हुए तीनों रहस्यों के साथ तीनों चरित्रों का पाठ कर पुनः उठकर महालक्ष्मी की प्रदक्षिणा आदि कार्यों से उन्हें सन्तोष कर अपने आसनों पर बैठे। तत्पश्चात् प्रार्थना श्लोक पढ़ते हुए आचार्य यजमान के इष्ट-फलों की प्राप्ति के लिये देवी से पुनः प्रार्थना करे।

यजमान भक्ति के साथ दशकुमारियों तथा दश ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें ताम्बूल दक्षिणा आदि के द्वारा सन्तुष्ट करे। पश्चात् उसी प्रकार आचार्य के साथ नौ ऋत्विजों को भी भोजन आदि कराकर सन्तुष्ट करे। बाद में अपने कुटुम्बों के साथ भोजन कर रातभर भजन-कीर्तन करते हुए जागरण करे। इस प्रकार प्रथम दिन के विधान को समाप्त करके दूसरे दिन पूर्व दिन के अनुसार आचार्य एवं ब्राह्मण सभी पूजन आदि का सम्पादन करे। किन्तु पूर्व दिन की अपेक्षा जप एवं पाठ दो गुने होना चाहिये। इसलिये यजमान को भी प्रथम दिन की अपेक्षा दूसरे दिन दक्षिणादि द्विगुणित देना चाहिये। कुमारियों एवं ब्राह्मणों का भोजन भी द्विगुणित होना चाहिये। इस प्रकार पूजा, जप, पाठ, कुमारी भोजन, ब्राह्मण भोजन आदि तीसरे दिन तीन गुने, चौथे दिन चार गुने करना चाहिये। पश्चात् पाँचवें दिन अग्नि की स्थापना कर पायस, घृत एवं तिल से होम करे। हवन जप के दशांश संख्या के द्वारा तीनों रहस्यों के साथ तीनों चरित्रों के प्रत्येक श्लोक से अथवा "नमो देव्यै महादेव्यै" इस श्लोक से अथवा नवाक्षर मंत्र से हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् दिग्देवियों के तत्तत् मंत्रों से सौ सौ बार हवन करना चाहिये। पुनः नवग्रहों के वेदोक्त मंत्र से उन सब ग्रहों के लिये समिध, घृत एवं तिल से सौ सौ बार हवन करना चाहिये। इस प्रकार होम की समाप्ति करके यजमान देवी को प्रणाम करे। तब दोनों स्तम्भों पर श्रुव को रखकर घृतकुम्भ से दशांश घृत को लेकर "मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिवा वैश्वानरमृत आजातमग्निम्। कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः॥ इस मंत्र से अविच्छिन्न धारा से पूर्णाहुति करनी चाहिये। तत्पश्चात् संस्रवप्राशन और प्रणीता मार्जन करके जप एवं होम को महालक्ष्मी को समर्पण कर अपनी अभिलाषा की पूर्ति की प्रार्थना करनी चाहिए। यजमान ब्राह्मणों को अपने ऐश्वर्य के अनुसार कार्पण्य दोष से विमुक्त होकर सुवर्णमयी गौ आदि का दान देना चाहिये। पश्चात् शान्तचित्त होकर अपने आसन पर बैठे हुए आचार्य एवं ऋत्विज कुंकुम, दुर्वाक्षत, चन्दन एवं दधि को लेकर वेदोक्त स्वस्तिवाचन मंत्रों के द्वारा यजमान को आशीर्वाद दे। पश्चात् सपत्नीक यजमान रत्नमयी पुष्पांजलि देवियों को समर्पण कर तब देवी का विसर्जन करके ब्राह्मणों को अधिक से अधिक दान दक्षिणा देकर गायन वादन के साथ अपने कुटुम्बियों एवं ब्राह्मणों

के सहित तोरणादि से अलङ्कृत अपने घर में प्रवेश करे। यह विधान खिल-मार्कण्डेय के अनुसार विहित है, जिनका उल्लेख निम्नलिखित प्रकार से है:—

अथ खिलमार्कण्डेयोक्त-शतचण्डीविधिः

शतचण्डीविधानं ते यथावत् कथयाम्यहम्।
सुघोरायामनावृष्ट्यां भूकम्पे च सुदारुणे ॥ १ ॥
परचक्रभये तीव्रे क्षयरोग उपस्थिते।
राज्यावाप्त्यादिकार्येषु स्वायुष्यसुतजन्मनि ॥ २ ॥
महोपघातनाशाय पञ्चविंशतियोजने।
देशे सर्वत्र शान्त्यर्थं शतचण्डीमखं चरेत् ॥ ३ ॥
शिवाभ्यासे समे देशे चतुर्द्वारं सतोरणम्।
पताकासंस्कृतं कुर्यान्मण्डपं वेदिभूषितम् ॥ ४ ॥
तत्र कुण्डं प्रकर्त्तव्यमुक्तलक्षणसंयुतम्।
सदाचाराः कुलीना ये श्रीमन्तः सत्यवादिनः ॥ ५ ॥
चण्डीपाठसंपूर्णा दयावन्तो जितेन्द्रियाः।
ईदृग्लक्षणसंयुक्ता दम्भमोहविवर्जिताः ॥ ६ ॥
दश विप्राः समभ्यर्च्या महालक्ष्मीस्वरूपिणः।
मधुपर्कविधानेन यथावत्तद् वदाम्यहम् ॥ ७ ॥
श्रीपर्णीवृक्षपीठानि हस्तमानानि मानतः।
अष्टाङ्गुलसमुच्छ्रायसहितानि समानि च ॥ ८ ॥
स्रुवः स्रुचा समायुक्तः खादिरो लक्षणान्वितः।
सप्तविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रग्रन्थिभूषिता ॥ ९ ॥
विष्टरे सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्तितम्।
शुद्धोष्णोदकसंपूर्णाः पाद्यार्थे ताम्रगण्डुकाः ॥ १० ॥

शङ्खा अर्घ्यप्रदानाय गन्धपुष्पजलान्विताः ।
पूर्वोदकसमायुक्ताः स्थापनीयाः पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥
सुताम्रस्य कमण्डल्व आचमनोदकपूरिताः ।
सम्पुटा मधुपर्कार्थाः कांस्या दध्यादिपूरिताः ॥ १२ ॥
महान्त्यर्घाणि वस्त्राणि मुद्रिकाद्यं सुभूषणम् ।
मयूरपत्रच्छत्राणि सोष्णीषाणि समाहरेत् ॥ १३ ॥
पादुकाश्चाहरेत्तत्र ताम्रभूषणभूषिताः ।
अन्यत्सर्वं यदस्त्युक्तं मधुपर्कस्य पूजने ॥ १४ ॥
शतचण्डीमखे कर्त्ता प्रयत्नेन समाहरेत् ।
स्मार्तोक्तविधिना सम्यङ्मधुपर्कस्य पूजनम् ॥ १५ ॥
कृत्वा फलमवाप्नोति महायज्ञार्णवोपमम् ।
अन्येभ्यो मधुपर्कस्य विप्रेभ्यः पूजनं समम् ॥ १६ ॥
विद्यात्तद्द्विगुणं दद्यादाचार्याय सुभक्तिमान् ।
अन्यैर्द्विजैः समं यत्र भवेद्देशिकपूजनम् ॥ १७ ॥
तस्मिन् यज्ञे फलं स्वल्पमनावृष्टौ यथा क्षितौ ।
अर्चितास्ते द्विजश्रेष्ठाः संतुष्टाः पूर्णमानसाः ॥ १८ ॥
यजमानं सपत्नीकं सुतबन्धुसमन्वितम् ।
उपवेश्यासने कुण्डकलशाग्रविभूषितम् ॥ १९ ॥
वेदमन्त्राक्षतैः पूर्णं कुर्वन्ति स्वस्तिवाचनम् ।
कृतस्वस्त्ययनैर्विप्रैर्वेदवादित्रनिस्वनैः ॥ १० ॥
चण्डिकामण्डपं यायात् परिवारविभूषितः ।
पश्चिमद्वारमार्गेण प्रविश्य क्रतुमण्डपम् ॥ २१ ॥

ददाति पूजनेऽनुज्ञां देशिकाय कृताञ्जलिः ।
देशिकः सर्वमन्त्रज्ञो नवभिर्ब्राह्मणैः सह ॥ २२ ॥
दिग्देवता ग्रहांश्चैव लोकपालसमन्वितान् ।
दिशापालांश्च संपूज्य कलशं स्थाप्य पूज्य च ॥ २३ ॥
मण्डपस्य चतुर्दिक्षु दत्त्वा भूतबलिं बहिः ।
मण्डपे कलशौ द्वौ द्वौ द्वारे द्वारे निवेशयेत् ॥ २४ ॥
गलितोदकसम्पूर्णावाम्रपल्लवशोभितौ ।
उपस्पृश्योदकं ध्यात्वा चण्डिकां देववन्दिताम् ॥ २५ ॥
उपवेश्यासने वेद्यां बद्धा पद्मासनं दृढम् ।
प्रणायामविशुद्धात्मा दशक-न्यासभूषितः ॥ २६ ॥
चण्डिकापूजनं कुर्याद्विशेषेण समन्वितम् ।
कस्तूरी कुंकुमं जात्यं सकर्पूरं च चन्दनम् ॥ २७ ॥
पलद्वयं तु संपूर्णमनुलेपनमाहरेत् ।
दिव्यवस्त्रमलङ्कारं हेमगद्याणकत्रयम् ॥ २८ ॥
लक्षपुष्पचतुर्थांशं गुग्गुलस्य पलत्रयम् ।
दीपानां विंशतिः श्रेष्ठं मण्डपे जपसाधनम् ॥ २९ ॥
कुडवौ द्वौ हविष्यान्नं नैवेद्यं सरसं शुचि ।
ताम्बूलानां सकर्पूरं शतद्वयमनुत्तमम् ॥ ३० ॥
नवचण्डीविधानोक्तं महालक्ष्म्याः प्रपूजनम् ।
नवभिर्ब्राह्मणैः सार्धं कृत्वाचार्यो द्विजोत्तमः ॥ ३१ ॥
ददाति नव विप्रेभ्य आचार्यश्चण्डिकामयः ।
कार्यं जाप्यप्रसिद्ध्यर्थमतुलं मानपूर्वकम् ॥ ३२ ॥

ततोऽनुज्ञामनुप्राप्य वेद्यामाचार्यसंनिधौ ।
सुखासने सुसंतुष्टा उपविष्टाः सुनिश्चलाः ॥ ३३ ॥
न्यासध्यानसमायुक्ता नासाग्रमवलोकिनः ।
सुगन्धपुष्पमालाढ्याश्चण्डिकाचरितत्रयम् ॥ ३४ ॥
सरहस्यमृषिश्छन्दो देवताशक्तिसंयुतम् ।
बीजतत्त्वसमायुक्तमुपांशुगुणसंयुतम् ॥ ३५ ॥
जपेयू रूपमेकैकं मौनिनस्त्यक्तमत्सराः ।
समुत्थाय ततः कुर्युः सर्वे देव्याः प्रदक्षिणाम् ॥ ३६ ॥
चण्डिकां तु नमस्कारैः परितोष्य पुनः पुनः ।
उपविश्यासनेषूक्तश्लोकैः सर्वार्थसाधकैः ॥ ३७ ॥
प्रार्थयेयुः प्रार्थ्यफलं महालक्ष्मीं दृढव्रताः ।
कुमार्यो दश संभोज्या विप्रा भोज्याा दशोत्तमाः ॥ ३८ ॥
महाकाल्याश्च लक्ष्म्याश्च सरस्वत्या जपं जपन् ।
भोजयेत्परया भक्त्या देशिकादिदशद्विजान् ॥ ३९ ॥
ततो भक्तिसमायुक्तो भुञ्जीयाद्यज्ञकृत् पुमान् ।
सत्कथाभिः सुगीतैश्च सर्ववादित्रनिःस्वनैः ॥ ४० ॥
पूजनैः प्रोक्षणीयैश्च वेदपाठैर्निशां नयेत् ।
द्वितीये दिवसे स्नात्वा विधिवत्ते द्विजा दश ॥ ४१ ॥
चण्डिकातर्पणं कुर्युः सम्पूर्णं ध्यानतत्पराः ।
सर्वं पृथक् पृथक् कृत्वा दिग्देवीपूजनादिकम् ॥ ४२ ॥
बहिर्भूतबलिं दत्त्वा कृत्वा देवी-प्रदक्षिणम् ।
पुष्पागारे महारम्ये स्वे स्वे च स्वासने स्थिताः ॥ ४३ ॥

जपन्ति जय चण्डीति यावद् दुर्गाप्रपूजनम् ।
पूर्वस्मात् पूजनात् कुर्याद् द्विगुणं पूजनं क्रमात् ॥ ४४ ॥
आचार्यः सुस्थिरः शांतश्चण्डिकायाः प्रतोषणम् ।
सुकृते पूजने विप्रा जपेयुर्द्विगुणं जपम् ॥ ४५ ॥
द्विगुणं च प्रकर्तव्यं कुमारीद्विजतोषणम् ।
कार्यं जागरणं रात्रावुक्तैः सर्वैर्महोत्सवैः ॥ ४६ ॥
चण्डिकापूजनं जप्यं कुमारीद्विजपूजनम् ।
तृतीयेऽहनि कर्त्तव्यं त्रिगुणं च सजागरम् ॥ ४७ ॥
चतुर्थे दिवसे सर्वं सम्यक्कुर्याच्चतुर्गुणम् ।
महाजागरणोपेतं होमः स्यात्पञ्चमेऽहनि ॥ ४८ ॥
पायसं सर्पिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम् ।
जुहुयादुक्तविधिना दशांशेन नृपोत्तम ॥ ४९ ॥
रुद्राध्याये यथा होमं मन्त्रेणैकेन साधयेत् ।
तथा स्तोत्रजपे होमं श्लोकेनैकेन साधयेत् ॥ ५० ॥
चण्डीसप्तशतीजापे होममन्त्रो नवाक्षरः ।
कथितः पूजनाध्याये तस्माद्धोमे भवेदसौ ॥ ५१ ॥
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ ५२ ॥
अथवाऽयं भवेद्धोमे श्लोकः स्तोत्रनिरूपतः ।
जपहोमे सुसंपूर्णे दिग्देवीनां शतं शतम् ॥ ५३ ॥
होतव्यं नाममन्त्रैश्च हविष्यान्नेन सादरम् ।
शतं शतं क्रमाद्देयं समिदाज्यचरूँस्तिलान् ॥ ५४ ॥

ग्रहेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैः फलं पुष्पं शतं शतम् ।
लोकपालदिशापालहोमे सर्पिश्चरुस्तिलाः ॥ ५५ ॥
आचार्यादिद्विजाः सर्वे जुहुयुश्च शतं शतम् ।
होमे सम्पूर्णतां प्राप्ते नमस्कृत्वेष्टदेवताम् ॥ ५६ ॥
चण्डिकां देवदेवानामृषीणां वन्दितां पराम् ।
स्तम्भद्वये स्रुचं कृत्वा यजमानः स्वलङ्कृतः ॥ ५७ ॥
घृतकुम्भदशांशेन दद्यात्पूर्णाहुतिं स्वयम् ।
मूर्द्धानिमन्त्रपाठेन नवाक्षरजपेन वा ॥ ५८ ॥
प्राशनं मार्जनाद्यं च नवदुर्गाविधानवत् ।
जपं हुतं समावेद्य चण्डिकायै मनोरथम् ॥ ५९ ॥
ब्रह्मणे निष्कषट्काढ्यं दद्याद् गोमिथुनद्वयम् ।
यस्याः प्रभावमतुलं श्लोकमुक्त्वा कृताञ्जलिः ॥ ६० ॥
दद्याद्गोमिथुनान्यष्टावाचार्याय सुभक्तिमान् ।
चतुर्विंशतिसंख्याकैर्हेमनिष्कैः सहान्वितम् ॥ ६१ ॥
एकैकमष्टविप्रेभ्यो दद्याद्गोमिथुनं स्वयम् ।
निष्कत्रयसमायुक्तं वस्त्रालङ्कारभूषितम् ॥ ६२ ॥
सुस्थितं स्वासने शान्तं यजमानं महोत्सवम् ।
कुङ्कुमाक्ताक्षतान् दूर्वाः सुगन्धं चन्दनं दधि ॥ ६३ ॥
आदाय दीयते विप्र आचार्यादिसुपूजितः ।
स्तोत्राणां च चतुर्णां च महालक्ष्मीपरायणः ॥ ६४ ॥
एकैकं श्लोकमुच्चार्य दद्युराशिषमुत्तमम् ।
सभार्यः ससुतः पूर्णो लब्धाशीर्वादमङ्गलः ॥ ६५ ॥

रक्तपुष्पाञ्जलिं दद्याच्चण्डिकायै विसर्जनम् ।
भूरिदानं ततो दद्यात् पुण्यवादित्रनिःस्वनैः ॥ ६६ ॥
प्रविशेच्छान्तिपाठैश्च तोरणाढ्यं स्वमालयम् ।
शतचण्डीविधानेन कृतेन सुकृतेन हि ॥ ६७ ॥
महालक्ष्मीर्ददात्यस्मै त्रैलोक्यसुखमुत्तमम् ।
यद्यत्कार्यं समुद्दिश्य क्रियते शतचण्डिका ॥ ६८ ॥
तत्तत्तस्य महालक्ष्मीः स्वयमाशु प्रयच्छति ।
चरितत्रयजाप्यस्य चण्डिकाया नृपोत्तम ॥ ६९ ॥
सरहस्यस्य नामानि ब्रह्मोक्तानि वदाम्यहम् ।
महाविद्या महामन्त्रश्चण्डीसप्तशतीति च ॥ ७० ॥
मृतसंजीवनी नाम चतुर्थं परिकीर्तितम् ।
पञ्चमं च महाचण्डी चतुःषष्टिपदी परा ॥ ७१ ॥
रूपचण्डी परा दुर्गा कथिता वेदपारगैः ।
महाविद्या सप्तशती सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ ७२ ॥
आद्यन्तमध्यान्तचरितं महामन्त्रमुदीरितम् ।
आदिमध्यान्तचरितं क्रमाच्चण्डीमहामनुः ॥ ७३ ॥
मध्यमाद्यन्तचरितं क्रमात्सप्तशती स्मृता ।
मध्यमाद्यन्तचरितं मृतसंजीवनी स्मृता ॥ ७४ ॥
अन्त्यादिमध्यचरितं महाचण्डीति कथ्यते ।
योगिनीनां चतुःषष्टियोगात्सप्तशतीमनोः ॥ ७५ ॥
चतुःषष्टिपदी प्रोक्ता योगसिद्धिप्रदायिनी ।
रूपं देहीति योगेन रूपचण्डीति सा स्मृता ॥ ७६ ॥

पराबीजसमायोगात् परा चण्डीति कथ्यते ।
एतानि योविजानाति नामानि नृपनन्दन ॥ ७७ ॥
जपं विना भवेच्चण्डी वरदाऽस्य तु सर्वदा ।
पाठभेदफलं राजञ्छृणु वक्ष्याम्यनुक्रमात् ॥ ७८ ॥
महाविद्यां च शान्त्यर्थं पठेच्च सततं नरः ।
चण्डीपाठं हि राजेन्द्र पुष्ट्यर्थं च सदा जपेत् ॥ ७९ ॥
मोहनार्थं सप्तशतीपाठं भवति सिद्धिदम् ।
विषरोगाल्पमृत्युघ्नपाठे संजीवनीक्रमः ॥ ८० ॥
स्तम्भने च महाचण्डी सततं सिद्धिदायिनी ।
तथैव मारणे ज्ञेया महाचण्डी च चण्डिका ॥ ८१ ॥
उच्चाटने च विद्वेषे कृत्याशान्त्यादिकर्मणि ।
रूपचण्डी शुभकरी पराचण्डी च मोक्षदा ॥ ८२ ॥
शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवाक्षरम् ।
चण्डीं सप्तशतीं मध्ये संपुटोऽयमुदाहृतः ॥ ८३ ॥
सकामः संपुटो जाप्यो निष्कामः संपुटं विना ।
एतद् गोप्यतरं तत्त्वं चण्डिका जपसिद्धिदमिति ॥ ८४ ॥

इति श्रीखिलमार्कण्डेये शतचण्डीविधिः समाप्तः ।

अथ सहस्रचण्डीविधिः

ऋषिरुवाच

सहस्रचण्डीं विधिवच्छृणु राजन् महामते ।
राज्यभ्रंशो ह्यकस्माच्चेज्जनमारे महाभये ॥ १ ॥
गजमारेऽश्वमारे च परचक्रभये तथा ।
इत्यादिविविधे दुःखे क्षयरोगादिजे भये ॥ २ ॥
सहस्रचण्डिकापाठं कुर्याद् वा कारयेत वा ।
जापकास्तु शतं प्रोक्ता विंशद्धस्तश्च मण्डपः ॥ ३ ॥
भोज्याः सहस्र विप्रेन्द्रा गोशतं दक्षिणां दिशेत् ।
गुरवे द्विगुणं देयं शय्यादानं तथैव च ॥ ४ ॥
सप्तधान्यं च भूदानं श्वेताश्वं च मनोहरम् ।
पञ्चनिष्कमिता मूर्तिः कर्त्तव्या वर्धमानतः ॥ ५ ॥
अष्टादशभुजां देवीं सर्वायुधविभूषिताम् ।
अन्नं वारि च दातव्यं सहस्रं प्रत्यहम् विभो ॥ ६ ॥
शतं वा नियताहारः पयोमानेन वर्तयेत् ।
एवं यश्चण्डिकापाठं सहस्रं तु समाचरेत् ॥ ७ ॥
तस्य स्यात्सर्वत्र सिद्धिस्तु नात्र कार्या विचारणा ।

इति श्रीखिलमार्कण्डेये सहस्रचण्डीविधिः समाप्तः ।

अथ सप्तशतीपाठफलम्

चण्डीपाठफलं राजन् शृणुष्व गदितो मम ।
एकावृत्त्यादिपाठानां प्रत्यहं पठतां नृणाम् ॥ १ ॥
संकल्पपूर्वं सम्पूज्य न्यस्यांगेषु मनून् सकृत् ।
पश्चाद् बलिप्रदानेन फलमाप्नोति मानवः ॥ २ ॥
उपसर्गोपशान्त्यर्थं त्रिरावृत्तिं पठेन्नरः ।
ग्रहदोषोपशान्त्यर्थं पञ्चावृत्तिं वरानने ॥ ३ ॥
महाभये समुत्पन्ने सप्तावृत्तिमुदीरयेत् ।
नवावृत्त्या भवेच्छान्तिर्मुच्यते चार्त्तिजाद् भयात् ॥ ४ ॥
राजवश्याय भृत्यै च रुद्रावृत्तिमुदीरयेत् ।
अर्कावृत्त्या काम्यसिद्धिर्वैरिनाशश्च जायते ॥ ५ ॥
मन्वावृत्त्या रिपुर्वश्यस्तथा स्त्रीवश्यतामियात् ।
सौख्यं पञ्चदशावृत्त्या श्रियं प्राप्नोति मानवः ॥ ६ ॥
कलावृत्त्या पुत्रपौत्रधनधान्यागमं विदुः ।
राजभीतिविनाशाय वैरस्योच्चाटनाय च ॥ ७ ॥
कुर्यात् सप्तदशावृत्तिं तथाऽष्टादशकं प्रिये ।
महार्णवविमोक्षाय विंशावृत्तिं पठेन्नरः ॥ ८ ॥
पञ्चविंशावर्त्तनाच्च भवेद् बन्धविमोक्षणम् ।
संकटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्सामये तदा ॥ ९ ॥

जातिध्वंसे कुलच्छेदे चायुषो नाश आगते ।
वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये ॥ १० ॥
तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैवातिपातके ।
कुर्याद् यत्नात् शतावृतिं ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ११ ॥
विपदस्तस्य नश्यन्ति चान्ते याति परां गतिम् ।
श्रियो वृद्धिः शतावृत्त्या राज्यवृद्धिस्तथा भवेत् ॥ १२ ॥
मनसा चिन्तितं देवि ! सिद्धयेदष्टोत्तराच्छतात् ।
शताश्वमेधयज्ञानां फलं प्राप्नोति सुव्रते ॥ १३ ॥
सहस्रावर्त्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा ।
भुक्त्वा मनोगतान् कामान् नरो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥
यथाऽश्वमेधः क्रतुषु देवानाञ्च यथा हरिः ।
स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशतीस्तवः ॥ १५ ॥
नातः परतरं स्तोत्रं किञ्चिदस्ति वरानने ।
भुक्ति-मुक्तिप्रदं पुण्यं पावनानाञ्च पावनम् ॥ १६ ॥
अथवा बहुनोक्तेन किमेतेन वरानने ।
चण्डिकायाः शतावृत्त्या सर्वाः सिद्धयन्ति सिद्धयः ॥ १७ ॥

इति प्रयोगसारे सप्तशतीपाठफलम्

अथ एकादशशक्तिध्यानम्

१. दुर्गा—सिंहस्कन्धसमारूढां नानाऽलङ्कारभूषिताम् ।
चतुर्भुजां महादेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥
रक्तवस्त्रपरीधानां बालार्कसदृशीं तनुम् ।
नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां भवगेहिनीम् ॥
त्रिवलीवलयोपेतनाभिनालसुवेशिनीम् ।
रत्नद्वीपे महाद्वीपे सिंहासनसमन्विते ॥
प्रफुल्लकमलारूढां ध्यायेत्तां भवगेहिनीम् ॥

२. काली—शवारूढ़ां महाभीमां घोरदंष्ट्रां हसन्मुखीम् ।
चतुर्भुजां खड्गमुण्डवराभयकरां शिवाम् ॥
मुण्डमालाधरां देवीं ललज्जिह्वां दिगम्बराम् ।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं श्मशानालयवासिनीम् ॥

३. सरस्वती—घण्टाशूलहलानि शंखमुशले चक्रं धनुः सायकं,
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिनयनामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥

४. बगलामुखी—

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेदींसिंहासनोपरि गतां परिपीतवर्णाम् ।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवीं स्मरामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥
जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम् ।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि ॥

५. त्रिपुरभैरवी—उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां,
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वराम् ।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं,
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्दे समन्दस्मिताम् ॥

६. धूमावती—विवर्णा चञ्चला दुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा ।
विमुक्तकुन्तला रूक्षा विधवा विरलद्विजा ॥
काकध्वजा रथारूढा विलम्बितपयोधरा ।
शूर्पहस्तातिरूक्षाक्षा धूतहस्ता वरान्विता ॥
प्रवृद्धघोणा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा ।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहास्पदा ॥

७. तारा—प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासापरा,
खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परभुजा हुंकारबीजोद्भवा ।
खर्वानीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता,
जाड्यन्न्यस्य कपालकर्तृजगतां हन्त्युग्रतारास्वयम् ॥

८. षोडशी—बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे ॥

९. भुवनेश्वरी—उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशां भीतिकरां प्रभजे भुवनेश्वरीम् ॥

१०. छिन्नमस्ता—प्रत्यालीढपदां सदैव दधतीं छिन्नं शिरः कर्त्रिकां,
दिग्वस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधारां पिबन्तीं मुदाम् ।
नागाबद्धशिरोमणिं त्रिनयनां हृद्युत्पलालंकृतां,
रत्यासक्तमनोभवोपरि दृढां ध्यायेज्जवासन्निभाम् ॥
दक्षे चातिसिताविमुक्तचिकुरा कर्त्रीं तथा खर्परं,
हस्ताभ्यां दधती रजोगुणभवा नाम्नापि सा वर्णिनी ।
देव्याश्छिन्नकबन्धतः पतदसृग्धारां पिबन्ती मुदा,
नागाबद्धशिरोमणिर्मनुविदा ध्येया सदा सा सुरैः ॥

११. कमलात्मिका—कान्त्या काञ्चनसन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै-
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम् ।
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बवलितां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

———

अथ सिद्धसम्पुटमन्त्राः

[१] यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ् नित्यम्—(अ० १२, श्लोक ९) इस मंत्रके द्वारा सम्पुट करने से सम्पूर्ण बाधा दूर हो जाती है।

[२] स्मरन्ममैतच्चरितम्—(अ० १२, श्लोक २९) इस मन्त्रके द्वार सम्पुट करने से शत्रु का मुख स्तंभन होता है। या यदि पुत्र की भावना से सम्पुट किया जाय तो पुत्र की प्राप्ति होती है।

[३] ज्वालाकरालमत्युग्रम्—(अ० ११, श्लोक २६) इस मन्त्र के द्वारा संपुट करने से भय से छुटकारा पाता है।

[४] सृष्टिस्थितिविनाशानाम्—(अ० ११, श्लोक ११) इस मन्त्रके द्वारा संपुट करने से उनकी लोक में बड़ी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है और उच्चपदाधिकारी होता है।

[५] ततो निशुम्भः संप्राप्य चेतना—(अ० ९, श्लोक २९) इस मंत्र के द्वारा संपुट करने से शत्रुओं द्वारा चलाये प्रयोग निष्फल हो जाते हैं।

[६] या देवी सर्वभूतेषु—(अ० ५, श्लोक २०–२२) इस मंत्र द्वारा सम्पुट करने से शत्रुओं का अपमान होता है।

[७] तयास्माकं वरो दत्तो—(अ० ५, श्लोक ६) इस मंत्र से संपुट करने से शत्रुओं का नाश होता है।

[८] भगवत्या कृतं सर्वं—(अ० ४, श्लोक ३४) इस मंत्र द्वारा सम्पुट करने से धन की प्राप्ति होती है।

[९] मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा—(अ० ४, श्लोक ११) इस मंत्र से सम्पुट करने से वाणी से निकले हुए शब्दों का प्रभाव समाज में पड़ता है।

[१०] परितुष्टा जगद्धात्री—(अ० १३, श्लोक १३) इस मंत्र से संम्पुट करने से अनेक तरह के फल मिलते हैं और देवी की सिद्धि होती है।

[११] स च वैश्यस्तपस्तेपे—(अ० १३, श्लोक १०) इस मन्त्र द्वारा संपुट करने से भगवती प्रसन्न होकर अनेकों मनोवाञ्छित फल देती हैं।

[१२] देव्या यया ततमिदं—(अ० ४, श्लोक ३) सामूहिक कल्याण के लिये इस श्लोक से संपुटित पाठ करना चाहिए।

[१३] उपसर्गाः शमं यान्ति—(अ० १२, श्लोक १७) इस मन्त्र द्वारा सम्पुट करने से दुःस्वप्नजन्य क्लेश नाश होता है।

[१४] त्रैलोच्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन—(अ० ४, श्लोक २३) इस मंत्र से सम्पुट करने से शत्रुओं का विनाश होता है।

[१५] धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव—(अ० ४, श्लोक १६) इस मंत्र द्वारा सम्पुट करने से सम्पूर्ण किये हुए कर्म सफल होते हैं।

[१६] शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानम्—(अ० ४, श्लोक १०) इस मंत्र द्वारा सम्पुट करने से सुख की प्राप्ति होती है तथा दरिद्रता, दुःख, भय आदि से छुटकारा मिलता है।

[१७] त्वयैतद् धार्यते विश्वम्—(अ० १, श्लोक ७५) इस मंत्र द्वारा सम्पुट करने से सारे कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जाते हैं।

[१८] बालदाकृष्य मोहाय—(अ०१, श्लोक ५६) इस मंत्र द्वारा सम्पुट करने से सर्वजन संमोहन होता है।

[१९] महामाया हरेश्चैषा—(अ० १, श्लोक ५५) इस मंत्र से सम्पुट करने से जन वश्य होता है।

[२०] ममास्य च भवत्येषा—(अ० १, श्लोक ४५) इस मन्त्र द्वारा सम्पुट करने से राजवश्य होता है।

[११ सैषा प्रसन्ना वरदा—(अ० १, श्लोक ५७) इस मंत्र से सम्पुट करने से बन्दिमोचन होता है।

[२२] इत्थं निशम्य देवानाम्—(अ० २, श्लोक ९) इस मन्त्र से सम्पुट करने या तीस हजार जपनेमात्र से ही सम्पत्ति की वृद्धि होती है।

[२३] मम वैरिवशं यातः—(अ० १, श्लोक १४) इस मंत्र द्वारा सम्पुटित पाठ करने से शत्रुओं का उन्मूलन होता है।

[२४] देवि प्रपन्नार्ति हरे प्रसीद—(अ० ११, श्लोक ३) इस मन्त्र द्वारा सम्पुट करने से मनुष्य आपत्तियों से दूर हो जाता है।

[२५] भगवत्या कृतं सर्वम्—(अ० ४, श्लोक ३४) इस मन्त्र से संपुट करने से सारे कार्यों में सफलता होती है और आपत्तियों से छुटकारा मिलता है।

[२६] इत्युक्ता सा तदा देवी—(अ० ५, श्लोक ११) इस मंत्र से सम्पुटित पाठ करने से विद्या प्राप्ति होती है और वाणीजन्य दोष दूर होता है।

[२७] रोगानशेषान्—(अ० ११, श्लोक २९) इस मन्त्र से सम्पुटित करने से रोगों का नाश होता है।

[२८] ज्ञानिनामपि चेतांसि—(अ० १, श्लोक ५५) इस मन्त्र से सम्पुट करने से सम्मोहन होता है।

[२९] एवमुक्त्वा समुत्पत्य—(अ० ३, श्लोक ४०) इस मन्त्र से सम्पुटित पाठ किया जाय तो मारण कार्य होता है। वाराही तन्त्र के अनुसार दस लाख जप कर सरसों और कडुआ तेल से दशांशहवन करे तो अवश्य ही मारण कार्य में सफलता मिलती है।

[३०] हिनस्ति दैत्यतेजांसि—(अ० ११, श्लोक २७) इस मन्त्र से संपुट करने से बालकों की बिमारी नाश होती है तथा पापों का नाश होता है।

[३१] ततो वव्रे नृपो राज्यम्—(अ० १३, श्लोक १७) इस मन्त्र से सम्पुट करने से स्वराज्य का लाभ होता है।

[३२] इत्थं यदा यदा बाधा—(अ० ११, श्लो० ५४) इस मन्त्र से सम्पुटित किया जाय तो महामारी दूर हो जाती है।

[३३] सर्वाबाधा प्रशमनम्—(अ० ११, श्लोक ३९) इस मन्त्र से सम्पुट करने से सारी बाधायें दूर हो जाती हैं और पुत्र, धन धान्य से सुखी होता है।

[३४] दुर्गे स्मृता हरसि—(अ० ४, श्लोक १७) इस मन्त्र से सम्पुट करने से दारिद्रय दुःखादि नाश हो जाते हैं तथा सभी आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं।

[३५] एवं देव्या वरं लब्ध्वा—(अ० १३, श्लोक २८) इस मन्त्र से सम्पुटित पाठ करने से सकल मनोरथ की पूर्ति होती है।

[३६] करोतु सा नः शुभ—(अ० ५, श्लोक ८१) इस आधे मन्त्र से सम्पुट करने से सब कार्य बन जाते हैं।

[३७] शरणागतदीनार्त—(अ० ११, श्लोक १२) इस मन्त्र से सम्पुट करे तो विपत्ति का नाश होता है और सब कार्य पूर्ण हो जाते हैं।

[३८] त्वं वैष्णवी शक्ति—(अ० ११, श्लोक ५) इस मन्त्र से सम्पुट करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

[३९] शूलेन पाहिनो देवि—(अ० ४, श्लोक २४) इस मन्त्र से सम्पुट करने पर सभी तरह से रक्षा होती है।

[४०] सर्वस्य बुद्धि रूपेण जनस्य—(अ० ११, श्लोक ८) इस मंत्र से सम्पुटित पाठ करने पर स्वर्ग और मुक्ति मिलती है।

[४१] विद्याः समस्तास्तव देवि—(अ० ११, श्लोक ६) इस मन्त्र से संपुट करने से समस्त विद्याओं की और समस्त स्त्रियों में मातृभाव की प्राप्ति होती है।

[४२] नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या—(अर्गला, श्लोक ९) इस मन्त्र से सम्पुट करने से पाप का नाश और भक्ति की प्राप्ति होती है।

[४३] सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिव—(अ० ११, श्लोक १०) इस मन्त्र से सम्पुट करने पर सब प्रकार के कल्याण की प्राप्ति होती है।

[४४] विधेहि देवि कल्याणं—(अर्गला, श्लोक १४) इसके द्वारा सम्पुट करने से मुक्ति तथा भुक्ति की प्राप्ति होती है।

[४५] रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च—(अ० ११, श्लोक ३२) इस मन्त्र के द्वारा सम्पुट करने से विविध उपद्रवों का विनाश हो जाता है।

[४६] प्रणतानां प्रसीद त्वं—(अ० ११, श्लोक ३५) इस मन्त्र का सम्पुट करने से देवी की प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

[४७] विश्वेश्वरि त्वं परिपासि—(अ० ११, श्लोक ३३) इस मन्त्र से सम्पुट करके पर विश्व का अभ्युदय होता है।

[४८] पत्नीं मनोरमां देहि—(आर्गला, श्लोक २४) इस मन्त्र से सम्पुट करने पर सुलक्षणा पत्नी की प्राप्ति होती है।

[४९] करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी—(अ० ५, श्लोक ८१) इससे संपुट करने पर विपत्ति का नाश और सुख की प्राप्ति होती है।

[५०] दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं सर्वकामार्थसाधिके।
मम सिद्धिमसिद्धिं वा स्वप्ने सर्वं प्रदर्शय ॥

इस मन्त्र से सम्पुट करने से स्वप्न में सिद्धि और असिद्धि जानने की क्षमता आ जाती है।

[५१] सर्वभूता यदा देवि—(अ० ११, श्लो० ७) इस मन्त्र से सम्पुट पाठ करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति है।

[५२] ते सम्मता जनपदेषु धनानि—(अ० ४, श्लोक १५) इस मन्त्र से सम्पुट करने पर सभी प्रकार से जीवन में अभ्युदय होता है।

[५३] देहि सौभाग्यमारोग्यं—(अर्गला, श्लोक १२) इस मन्त्र से सम्पुट करने से महामारी का विनाश होता है।

[५४] जयन्ती मंगला काली—(अर्गला, श्लोक १) इस मन्त्र से सम्पुट करने से महामारी का विनाश होता है।

[५५] सर्वस्वरूपे सर्वेशे—(अ० ११, श्लोक २४) इस मन्त्र से सम्पुटित पाठ करने से भय का नाश होता है।

[५६] देव्या यया ततमिदं—(अ० ९, श्लोक ३) इस मन्त्र से सम्पुट करने से सामूहिक कल्याण होता है।

[५७] यस्याः प्रभावमतुलं—(अ० ४, श्लोक ४) इस मन्त्र से सम्पुट करने से विश्व के अशुभ सभी भय का विनाश होता है।

[५८] या श्रीः सुकृतिनां—(अ० ४, श्लोक ५) इस मन्त्र से सम्पुट करने से विश्व की रक्षा होती है।

[५९] हे देवि जगतां मातः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि। नन्दगोपसुतं कान्तमस्मभ्यं देहि सुव्रते ॥ इस मन्त्र से सम्पुट करने से पुत्र की प्राप्ति होती है।

[६०] "ऐं" इससे विद्या प्राप्ति करने के लिए सौ आवृत्ति सम्पुट पाठ करे।

[६१] उच्चाटन में सात दिन तक तेरह आवृत्ति प्रतिदिन इस "ह्रौं" बीज से सम्पुट पाठ करे।

[६२] लक्ष्मी प्राप्ति के लिये उनचास दिन तक "श्रीं" इस बीज का सम्पुट पाठ पन्द्रह या दो आवृत्ति रोज करे।

[६३] अपने इष्ट देव को प्रसन्न करने के लिये अपने इष्ट बीज मन्त्र से सम्पुट पाठ करना चाहिये।

—:o:—

अथ दुर्गासप्तशतीपाठभेद:

[श्रीदुर्गा सप्तशती की हस्तलिखित एवं छपी पुस्तकों को ध्यानपूर्वक देखने से अनेक पाठभेद दिखाई पड़ते हैं। सभी पाठभेदों का संग्रह यहाँ प्रकाशित किया जाता है जिससे भक्तजनों को पाठ करने में सुविधा मिल सके]

प्रथमोऽध्याय:

श्लोका:	मान्यपाठा:	पाठभेदा:
५	कोलाविध्वंसिनस्तदा	कोलाविध्वंसिनस्तथा
८	तत्रापि स्वपुरे ततः	तत्रापि स्वपुरे सतः
१०	(१) द्विजवर्यस्य मेधसः	द्विजवर्यैः सुमेधसः
	(२) मुनिशिष्योपशोभितम्	मुनेः शिष्योपशोभितम् ।
१२	ममत्वाकृष्टचेतनः	ममत्वाकृष्टमासनः
१७	ददर्श सः	ददर्श ह
२२	(१) विहीनश्च धनैर्दारैः	विहीनः स्वजनैर्दारैः
	(२ (आदय	आदायि
३०	भवानस्मद्गतं वचः	भवाम्यस्मद्गतं वचः
३२	पतिस्वजनहार्दञ्च	प्रीतिस्वजनहार्दञ्च
३३	निःश्वासः	निश्वासा
४१	गतराज्यस्य	मम राजस्य
४२	निकृतः	(१) निष्कृतः
		(२) निःकृतः
४३	स्वजनेन च	स्वजनैरपि
४४	किमेतन्महाभाग	केनेतन्हाभाग
४८	(१) विषयश्च महाभाग	विषयाश्च महाभाग
	(२) याति चैव पृथक्-पृथक्	यातिश्चैवं पृथक्-पृथक्
४९	किंतु ते	किंनु ते
५१	(१) तुल्यमन्यत्	न तदन्यत्
	(२) पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु	पतगाञ्छावञ्चुषु

श्लोकाः		
५२	कणमोक्षादृतान्	कणमोक्षाहितान्
५३	नन्वेतान्	१ नन्वेतानि २ नन्वेते
५४	संसारस्थितिकारिणा	संसारस्थितिकारिणः
५५	हरेश्चैषा	१ हरेश्चैतत् २ हरेश्चैव
५६	जगदेतच्चराचरम्	त्रैलोक्यं सचराचरम्
६१	यत्प्रभावा च	यत्स्वभावा च
६२	ब्रह्मविदां वर	ब्रह्मन् विदां वर
६६	एकार्णवीकृते	एकार्णवे कृते
७०	विबोधनार्थाय	प्रबोधनार्थाय
७१	तेजसः प्रभुः	तेजसां प्रभुः
७३	वषट्कारः स्वरात्मिका	वषट्कारस्वरात्मिका
७५	(१) सन्ध्या सावित्री	सां त्वं सावित्री
	(२) त्वं देवि जननी	१ त्वं देवी जननी, २ त्वं वेदजननी, त्वं देवजननी
	(३) त्वयैतद्धार्यते सर्वं	त्वयैतद्धार्यते विश्वं
७७	जगन्मये	जगन्मयि
७८	(१) महामोहा च भवती	महामोहा भगवती
	(२) महासुरी	महेश्वरी
८१	बाणभुशुण्डीपरिघायुधा	बाणा भुसुण्डीपरिघायुध
८३	(१) स्तूयसे तदा	स्तूयसे मया
	(२) जगत्पात्यत्ति	जगत्पातत्ति
८७	बोधश्च	भावश्च
९२	मधुकैटभौ	मधुकैटौ
९३	क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं	क्रोधरक्तेक्षणणै हन्तुं
९८	एतावद्धि वृतं मम	एतावद्धि वृतं मया

द्वितीयोऽध्यायः

८	शरणं वः प्रपन्नाः स्मो	शरणञ्च प्रपन्नाः स्मः

श्लोकाः

९ भ्रुकुटी कुटिलानना	भृकुटी कुटिलानना
११ तच्चैक्यं समगच्छत्	तच्चैक्यं समपद्यत
१५ (१) मध्यञ्चैन्द्रेण चाभवत्	मध्यमैन्द्रेण चाभवत् ।
(२) जङ्घोरू	जंघोरु
१८ श्रवणावनिलस्य च	श्रवणे अनिलस्य च
२० समुत्पाद्य	समुत्पाठ्य
२१ बाणपूर्णे	बाणपूर्णौ
२२ समुत्पाद्य	समुत्पाठ्य
२४ तस्याश्चर्म	तस्यै चर्म च
२६ शुभ्रं	दिव्यं
२७ अङ्गुलीयकरत्नानि	अंगुरीयकरत्नानि
३४ जयेति देवाश्च मुदा	जयेति च मुदा देवास्तामूचुः
तामूचुः सिंहवाहिनीम्	सिंहवाहनम्
४० शस्त्रास्त्रैः	शास्त्रस्त्रैरति
४१ चामरश्चान्यैः	चामराश्चान्यः
४३. गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारित	गजवाजिसहस्रौघैरनेकैरुग्रदर्शनः
४४ विडालाख्योऽयुतानाञ्च	विडालाक्षो महादैत्यः
४८ केचिच्च चिक्षुपुः	केचिच्चचिक्षिपुः
५१ शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी	(१) शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका
	(२) ,, चाम्बिका
५४ देवी शक्त्युपबृंहिताः	देवीशक्त्युबृंहितान्
अवादयन्तः	(१) अवादयंतः, (२) आवादयन्तः
५७ अकर्षयत्	अकर्षत्
५८ विपोथिता	विपुस्थिता
५९ निरन्तराः	निरकृताः निरन्तरं निरन्तर
६० (१) श्योनानुकारिणः	(१) शैलानुकारिणः (२) श्येनानु-
(२) त्रिदशार्दनाः	कारिणः, (३) शल्यनुकारिणः त्रिदशार्द्दिनः
६३ तूर्यलयाश्रिताः	तुर्यलयान्विताः
६४ खड्गशक्त्यृष्टिपाणायः	खड्गं शक्त्यष्टपाणयः

श्लोकाः		
६९	(१) महासुरैः	तथासुरैः
	(२) यथैषां तुतुपुर्देवाः	यथैनां तुष्टुवुर्देवाः

तृतीयोऽध्यायः

६	अभ्यधावत तां देवीं	अभ्यधावत् ततो देवीं
८	ततो जग्राह शूलं स	ततो जग्राह तच्छूलं
९	जाज्वल्यमानं तेजोभीरविबिम्ब	जाज्वल्यमानं तेजोभिरविबिम्ब
१०	तच्छूलं शतधा तेन नीतं	तेन तच्छतवा नोतं शूलं
१४	गजकुम्भान्तरे स्थित:	गजकुम्भान्तरस्थितः
१७	दन्तमुष्टितलैः	दत्तमुष्टितलैः
१९	त्रिनेत्रा च	त्रिनेत्रं च
२५	पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप	पर्वतानुच्चैश्चिक्षेप
२७	(१) खण्डं-खण्डं ययुर्घनाः	(१) खण्डखण्डं, ययु०
		(२) खण्ड-खण्डमयुः
	(२) श्वासानिलास्ताः शतशो	(१) श्वासानिलाहताः शीर्णाः
		(२) श्वासानिलास्ताऽविशीर्णा
३२	कर्षतस्तु करं देवो	कर्षतस्तत् करं देवी
३३	वपुरास्थितः	वपुराश्रित
४१	अर्द्धनिष्क्रान्त एवासीत्	अर्द्धनिष्क्रान्त एवाति
४२	शिरश्छित्वा निपातितः	महाकाल्या निपातितः

चतुर्थोऽध्यायः

२	सुरारिले च देव्या	सुरारिबले च देवाः
४	नाशाय चाशुभभयस्य	नाशाय चासुरभयस्य
६	(१) किंचाहवेषु चरितानि	किंचाहवे सुचरितानि
	तवाद्भुतानि	तवाति यानि
	(२) देव्यसुरदेवगणादिकेषु	अमरदैत्यगणादिकेषु
७	(१) दोषैः	देवैः
	(२) अव्याकृता हि	अव्याकृतासि

श्लोकाः

९ (१) महाव्रता त्वं	महाव्रता च
(२) अभ्यस्यसे	अभ्यस्यते
(३) विद्यासि	विद्यास्ति
१० उद्गीथ	उद्‌गीत
१२ (१) कनकोत्तमकान्तिकान्तम्	कनकोत्तमकान्ति-कान्ति
(२) आत्तरुषा	रुषा
१४ (१) प्रसीद परमा	प्रसादपरमा
(२) भवती भवाय	भव-भावनाय
(३) विनाशयसि	विनाशयति
१५ धर्मवर्गः	बन्धुवर्गः
१६ लोकत्रयेऽपि	लोकद्वयेऽपि
१८ (१) उपैति	उपैतु
(२) नाम	नाम्ब
१९ (१) शास्त्रपूता	शस्त्रपूतान्
(२) तेष्वपि तेऽतिसाध्वी	(१) तेष्वपि तेषु साध्वी
	(२) तेष्वहितेषु साध्वी
२१ हृतदेवपराक्रमाणां	हृतदेवपराक्रमाणां
२२ दृष्ट्वा	दृष्ट्वा
२६ यानि चात्यर्थघोराणि	यानि चात्यन्तघोराणि
३० दिव्यैर्धूपैश्च धूपिता	(१) दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता,
	(२) दिव्यैर्धूपैः सुधूपिता
३२ यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम्	यत्तन्मत्तोभिवाञ्छितम्
३५ यदि चापि	यदि वापि
३७ अस्मत्प्रसन्ना	अस्मत्प्रपन्ना
४१ गौरीदेहात्सा समुत्भूता	गौरीदेहा सा समुद्भूता
४२ तच्छृणुष्व	तच्छृणुस्व

पंचमोऽध्यायः

५ संस्मरन्त्यपराजिताम्	स्मरन्ति स्मापराजिताम्

श्लोकाः	
९ नियताः प्रणताः स्म ताम्	नियत्यै प्रणतात्मनाम्
११ (१) प्रणतां वृद्धयै; कुर्मो (२)	प्रणता वृद्धयै; कूर्म्यै
१२ सारायै सर्वकारिण्यै	सारायै सर्वकारिणि
१३ कृत्यै	कृत्यै
७७ (१) भूतानां चाखिलेषु	भूतानामखिलेषु
(२) व्याप्तिदेव्यै	व्याप्त्यै देव्यै
७८ चितिरूपेण	चित्तिरूपेण
८१ (१) अभीष्टसश्रयात्	अभीष्टसंश्रया
(२) सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता	सुरेन्द्रेश-दिनेश-सेविता
८४ एवं स्तवादियुक्तानाम्	एवं स्तवाभियुक्तानाम्
८६ समेतैः	समस्तैः
८८ तस्यां विनिर्गतायान्तु	तस्यां विनिर्गता या तु
कृष्णाभूत्	कृष्णाभूत
८९ सुमनोहरम्	सुमनोहराम्
९० अतीवसुमनोहरा	सातीव सुमनोहरा
९९ (१) वह्निरपि	वह्निश्चापि
(२) अग्निशौचे च वाससी	अग्निशौचेयवाससी
१०२ महासुरम्	महासुरः
१०४ सा देवी तां ततः प्राह	तां च देवीं ततः प्राह
१०६ त्रैलोक्ये परमेश्वरः	त्रैलोक्यपरमेश्वरः
१०९ (१) त्रैलोक्ये वररत्नानि	(१) त्रैलोक्यवररत्नानि
(२) गजरत्नं च हृत्वा	(२) गजरत्नानि च हृत्वम्
११९ कृतापुरा	कृता मया
१२९ (१) स त्वं गच्छ मयोक्तं ते	(१) स त्वं गच्छमयैवोक्तं
(२) यदेतत्सर्वमादृतः	यदेतत्सर्वमादितः

षष्ठोऽध्यायः

२ समाचष्ट	समाचष्टे

श्लोकाः	
९ ततो बलान्नयाम्येष	(१) ततो बलान्नयाम्यद्य,
	(२) ,, नयाम्येष्य
१३ भस्म सा चकाराम्बिका	भस्मसाच्चकाराम्बिका
१४ अम्बिका	अम्बिकाम्
१५ स्ववाहनः	(१) सवाहनः, (२) स्ववाहनम्
१६ (१) आक्रम्य चाधरेण	(१) आक्रान्त्या चाधरेण
	(२) आक्रम्य चरणेन
	(३) आक्रान्त्या चरणेन
(२) स जघान महासुरान्	(१) जघान सुमहासुरान्
	(२) जघान स महासुरान्
१७ कोष्ठानि	कोष्ठांश्च
२० बलञ्च क्षयितं	(१) बलं च क्षपितम्,
	(२) बलस्य क्षयणम्
२२ (१) बहुभिः, (२) तत्र गच्छत	(१) बहुलैः, (२) गच्छतं तत्र

सप्तमोऽध्यायः

२ आज्ञप्तास्ते	आज्ञासास्तु
११ चर्वयन्त्यति	चर्वयत्यति
१२ अपोथयत्	(१) असूदयत्, (२) अपोटयत्
१४ (१) दुरात्मनाम्. (२) तथा	(१) महात्मनाम् (२) तदा
१५ हतास्तथा	हता रणे
१६ अतिभीषणाम्	अतिभीषणम्
१७ मुण्ड. क्षिप्तैः	मुण्डक्षिप्तैः
२० उत्थाय च महासिहं देवि	उत्थाय च महासि सा
२१ अथ मुंडोऽभ्यधावत्तां	अथ मुण्डोऽप्यधावत्तां
२३ मुण्डमेव च	मौण्डमेव च
२७ ख्याता देवि	ख्याता देवी

श्लोकाः

अष्टमोऽध्यायः

२ क्षयितेष्व	क्षपितेष्व
४ चतुरशीतिः	(१) चतुराशीतिः (२) चतुरशीति
५ (१) कोटिवीर्याणि	कोटिसंख्यानि
(२) धौम्राणां	आयातं
८ आयन्तं	आयातं
९ (१) सिंहो महानादमतीव	(१) सिंहो महानादान्
	(२) स च सिंहो महानःदं
(२) तान् नादाम्	(१) तन्नादन्, (२) तन्नादान्
(३) अम्लिका चोपवृंहयत्	अम्बिका चाप्यवृंहयत्
१० (१) नादापूरितदिङ्मुखा	(१) शब्दापूरितदिङ्मुखा
(२) जिग्ये	(२) जिज्ञे
११ सरोषैः	शरोघैः
१२ भवायामरसिंहानाम्	भवायासरसैन्यानाम्
१३ तथेन्द्रस्य च शक्तयः	तथैवेन्द्रस्य शक्तयः
१५ हंसयुक्तविमानागे	हंसयुक्तविमानस्था
१९ यज्ञवाराहमतुलं रूपं	जज्ञे वाराहमतुलं रूपं
या बिभ्रतो हरेः	या बिभ्रती हरेः
२२ (१) परिवृतस्ताभिरीशानो	परिवृता ताभिरीशाना
(२) चण्डिकाम्	चण्डिका
२३ भीषणा	पाशिनी
२८ (१) दौत्येन, (२) शिवदूतीति	(१) दूत्येन, (२) शिवदूता
२९ यत्र	यतः
३० ववर्पुः	ववृपुः
३१ सा च तान् प्रहितान्	सा च तत्प्रहितान्
३२ (१) तस्याग्रतस्तथा	तस्यास्तथाग्रतः
(२) खट्वांगपोथितांश्चारीन्	खट्वांगपोथितांश्चान्यान्

श्लोकाः	
३३ जलाक्षेपहतवीर्यान्	(१) जलाक्षेपाद्धतवीर्यान्
	(२) जलक्षेपहतवीर्या
३५ पेतुर्विदारिता पृथ्व्यां	पेतुर्विदारित भूमौ
३६ वराहमूर्त्या	वाराहमूर्त्या
३७ नादापूर्णसिगम्बरा	नादापूर्णदिङ्मुखा
३८ शिवदूत्यभिदूषिताः	शिवदूत्याभिदूषिताः
४१ (१) मेदिन्यां तत्प्रमाणः	मेदिन्यास्तत्प्रमाणः
(२) तत्प्रमाणस्तत्रासुरः	तत्प्रमाणो महासुरः
४३ वह सुस्राव शोणितम्	तस्य सुस्राव शोणितम्
५३ (१) प्राह सत्वरा	प्राहसत्तदा
(२) विस्तीर्ण वदनं	विस्तरः वदनं
५४ वक्त्रेणानेन वेगिना	वक्त्रेणानेन वेगिता
५९ (१) यतस्ततस्तद्वक्त्रेण	(१) यतस्ततः स्ववक्त्रेण
	(२) इतस्ततस्तद्वक्त्रेण
६० वज्रेण	चक्रेण
६१ शस्त्रसंघसमाहतः	(१) शस्त्रसंहतितो हतः
	(२) शस्त्रसंहतिमाहतः
६३ तेषां मातृगणो जातो	हते मातृगणस्तस्मिन्

नवमोऽध्यायः

६ मुद्वहन्	मुद्वमन्
९ ततो युद्धमतीवासीत्	तयोर्युद्धमतीवासीद्
१० चण्डिका स्वशरोत्करैः	चण्डिकाशु शरोत्करैः
१२ क्षुरप्रेण	खुरप्रेण
१४ तच्चाप्यचूर्णयत्	तञ्चाप्यचूर्णयत्
१५ आविध्याथ गदां	(१) अथादाय गदां,
	(२) आविध्याघ गदां
१७ प्रययौ हन्तुमम्बिकाम्	प्रययौ योद्धुमम्बिकाम्

श्लोकाः

२१ गां तथैव दिशो दश	गां तथोपदिशो दश
२३ अट्टाट्टहासम्	अट्टट्टहासम्
२८ तदाभिहतो	तदा निहतो
३० चक्रायुधेन	चक्रायुतेन
३४ निशुम्भममरार्दनम्	निशुम्भमरिमर्दनम्
३७ (१) ततः सिंहश्चखादोग्रंदंष्ट्रा	(१) ततः सिंहश्चखादोग्रदंष्ट्रा
	(२) ततः सिंहश्चखादोग्रान्
(२) क्षुण्णशिरोधरान्	क्षुण्णमहीतलाम्
(३) तथा काली	तदा काली
४० खण्डं-खण्डञ्च	खण्डं-खण्डञ्च

दशमोऽध्यायः

३ (१) बलावलेपाद् दुष्टे	बलावलेपदुष्टे
(२) यातिमानिनी	अतिमानिनी
११ (१) तथास्त्रैश्चैव दारुणैः	तथास्त्रैश्च सुदारुणैः
(२) भूयः	भूप
१३ लीलयैवोग्र	लीययैवोग्रम्
१५ (१) शक्तिमथाददे	शक्तिं समाददे
(२) करे स्थिताम्	करस्थिताम्
१६ अभ्यधावत् तदा देवीं	अभ्यधावत तां देवीं
१८ हताश्वः	हतासिः
२३ चक्रतुः प्रथमं सिद्ध	(१) चक्रतुः प्रथमं युद्धं, (२) चक्रतुःप्रधनं
२४ (१) उत्पाट्य	(१) उत्पात्य, (उत्क्षिप्य
(२) भ्रामयामास	भ्रमयामास
२५ वेगितः	(१) वेगतः, वेगवान्
२७ विक्षतः	विक्षितः
२८ स्वास्थ्यमतीवाप	सुस्थमतीवासीत्
२९ तथासंस्तत्र पातिते	देव्या शुम्भे निपातिते
३२ शान्ता दिग्	शान्तदिग्

श्लोकाः

एकादशोऽध्यायः

२ (१) इष्टलाभात्	इष्टलम्भाद्
(२) विकासिवक्त्राब्ज-विकासिताशाः,	(१) विकासिवक्त्रास्तुविकासिताशाः (२) विकासिवक्त्राः सुविकासिताशाः, (३) विकासिवक्त्रांशुविकासिताशाः
४ आप्यायते	आप्याययते
७ स्वर्गमुक्ति	भुक्तिमुक्ति
९ (१) कलाकाष्ठादि	काष्ठकलादि
(२) परिणाम	परिमाण
(३) शक्ते	सक्ते
१० (१) मंगल्ये	मांगल्ये
(२) त्र्यम्बके	त्र्यम्बिके
११ गुणमये	गुणमयि
१५ कुक्कुटवृते	कुक्कुटघृते
१६ गृहीतपरमायुधे	गृहीतविविधायुते
१९ सहस्रनयनोज्ज्वले	सहस्रनयने ज्वले
२० हतदैत्यमहाबले	हतदैत्ये महाबले
२२ (१) लक्ष्मि लज्जे	लक्ष्मी लज्जे
(२) पुष्टिस्वधे	पुष्टे स्वधे
(३) महारात्रि	महारात्रे
२३ भूति	भूते
२५ सर्वभीतिभ्यः	सर्वभूतेभ्यः
२७ पापेभ्यो नः सुतानिव	पापेभ्यः स्वसुतानिव
३१ विभ्रामयत्येतद्	विभ्रामस्येतद्
३३ (१) विश्वेश्वरि	विश्वेश्वरी
(२) भवती भवन्ति	भवती भवाय
३४ (१) सर्वजगतां प्रशमं	सर्वजगताञ्च शर्म
(२) उत्पात	ह्युत्पात

श्लोकाः	
३७ वृणुध्वम्	वृणीध्वम्
३९ सर्वाबाधा	सर्वबाधा
४२ नन्दगोपगृहे	नन्दगोपकुले
४३ वैप्रचित्तांस्तु	वैप्रचित्तांश्च
४६ संस्तुता	संस्मृता
४७ निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्	निरीक्षिष्ये यतो मुनीन्
४९ बधिष्यामि	हनिष्यामि
५१ भक्षयिष्यामि	क्षयिष्यामि

द्वादशोऽध्यायः

२ नाशयिष्यामि	शमयिष्यामि
३ घातनम्	सूदनम्
७ परं स्वस्त्ययनं हि तत्	परं स्वस्त्ययनं महत्
११ (१) बलिपूजां	बलि पूजां
(२) प्रीत्या	प्रीता
१३ (१) सर्वाबाधा-विनिर्मुक्तो	सर्वबाधा-विनिर्मुक्तो
(२) धनधान्यसुतान्वितः	धनधान्यसमन्वितः
१४ (१) तथा चोत्पत्तयः शुभाः	(१) तथोत्पत्तीः पृथक् शुभाः
(२) पराक्रमञ्च	(२) तथा चाधीत्य भक्तितः
१५ उपपद्यते	पराक्रमांश्च उपजायते
१७ दुःस्वप्नञ्च नृभिर्दृष्टं	दुस्वप्नञ्च नृभिर्दृष्टः
सुस्वानमुपजायते	सुस्वान उपजायते
२० सन्निधिकारकम्	सान्निध्यकारकम्
२१ प्रोक्षणीयैः	प्रेक्षणीयैः
२२ सकृत् सुचरिते	सकृदुच्चरिते, सकृच्च चरिते
२३ जन्मनां	जन्मिनां
२५ (१) ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु	ब्रह्मणा च कृता यास्ताः
(२) प्रयच्छन्ति शुभां मतिम्	प्रयच्छन्तिं शुभां गतिम्

श्लोका:

२७ (१ चाज्ञप्तो	च ज्ञप्त:
(२) पोते महार्णवे	पोते सुदुस्तरे
२८ (१) पतत्सु चापि	पतत्सु वापि
(२) सर्वा बाधासु	सर्वबाधासु
३४ जगद्विध्वंसिनि	जगद्विध्वंसके
३७ (१) सा याचिता च	सा याचितार्थ
(२) तुष्टा ऋद्धि प्रयच्छति	तुष्टा वृद्धि प्रयच्छति
४१ गतिं शुभाम्	तथा शुभम्

त्रयोदशोऽध्यायः

३ तथैव	तयैव
४ तामुपैहि	तामुपेहि
७ स नराधिप:	क्षत्रियर्षभ
९ संस्थित:	मास्थित
११ (१) निराहारी यताहारो	यताहारो यतात्मानो
(२) तन्मनस्को समाहितो	तन्मनस्कौ जितेद्रियो
१५ (१) प्राप्यतां	प्रार्थ्यतां
(२) ददामि तत्	(१) ददामि वाम्, (२) ददामि ते
१७ अत्रैव च	(१) अत्रापि च, (२) अत्र चैव
२० स्वं राज्यं प्राप्स्यते	स्वं राज्यं प्राप्यते

दुर्गासप्तशती-श्लोकानुक्रमणिका